उपहार

विषय-सूची

उसकी चाह में वे अपना सर्वस्व लुटा रहे हैं। जिस सुख की कामनामात्र से हम सहस्रों अनाथों और दीनों का हृदय कुचल देते हैं, उसी सुख में हम अपना श्रेय समझते हैं। जिस गौरव की धारणामात्र से हम संसार में इस प्रकार पद्दलित समझे जाते हैं, उस गौरव को हम सत्य मान रहे हैं। क्या यह अन्धेर नहीं है?

मनुष्य कैसा सुन्दर प्राणी है! सृष्टि का मुकुट है, शोभा का साम्राज्य है। ईश्वरीय सत्ता के विकास के लिए ही मनुष्य-जन्म हुआ है। किसे मालूम है, इस सुन्दर प्राणी के हृदय में वह विष भरा है, जिसके स्पर्शमात्र से ही नाश हो जायगा? कौन जानता है कि जिस मनुष्य-प्राणी पर प्रकृति-नियम के अनुकूल सृष्टि के कार्य-क्रम सञ्चालन का सारा भार है, वही मनुष्य अपना सत्यानाश कर बैठेगा? किसे ज्ञात था कि दया, क्षमा, प्रेम और सहानुभूति का साक्षात् अवतार मनुष्य-प्राणी, भयङ्कर पाशविक अत्याचार भी कर सकता है? किसे ख़बर थी कि समाज की इस सुन्दर शोभा के अन्तर्गत विष-कालिमा भरी हुई है। यह विडम्बना क्यों?

आज अपने उस समाज का दर्शन कीजिए, जिसे छोड़ कर मनुष्य क्षण भर स्थिर नहीं रह सकता। कोमल हृदय मानव के कर्कश कार्यों का दर्शन कीजिए। देखिए, कैसा अनाचार और अत्याचार है!

गगन-भेदी भयङ्कर हाहाकार से कान फूटे जाते हैं। करुणोत्पादक, भयानक और वीभत्स दृश्यों ने हृदय को जर्जर सा कर दिया है। पीड़ितों की पुकार और पतितों की आवाज़ ने श्रवण-शक्ति को क्षीण कर दिया है, तभी तो हम सब कुछ देख कर भी चुप हैं, हृदय होते हुए भी उससे हीन हैं, श्रवण होते भी बधिर हैं। यह आनन्द है या अट्टहास!

सुख की खोज है, सम्पत्ति की चाह है और यश की कामना है। किन्तु, उन्हीं करीलों से आम पैदा करेंगे या इन्हीं कामों से नाम पैदा करेंगे! क्यों है न? चाहे जो हो कोई मरे या जिए, पर हम न जिएँगे और न मरेंगे। कैसी धमकी है? न तो जीवित रह कर कुछ करेंगे और न मर कर कुछ छोड़ेंगे। हाँ, सहज ही में वह सारा रहस्य दिखा देंगे, जिसे देख कर आप काँप उठेंगे। उस समय आप कहेंगे कि यह कोमलता और इतनी बरबरता, यह मानवता और इतनी दानवता!

यह तो होता आया है और होता रहेगा; तब उन्नति की कामना क्यों? सुधार की अभिलाषा कैसी? क्यों यह चाह है और क्यों यह आशा है? यह तो केवल बहाना है, कर्त्तव्य की प्रेरणा के विमुख एक धारणा है।

अच्छा, तो आज यह प्रलाप क्यों? इस रोदन का क्या अर्थ? समझिए !संसार में रह कर, मनुष्य कहला कर और सामाजिक जीवन व्यतीत कर, जो व्यक्ति अपनी श्रेष्ठता, अपनी सर्वोपरिता तथा उच्चता का दावा करते हैं, जो अपने अङ्ग को सुखकारक एवं उपयोगी समझते हुए भी उसे काँटों से छेदते हैं, उन्हीं के विरुद्ध आज यह आवाज़ उठ रही है। बाहर से लीप-पोत कर समाज-मन्दिर को श्मशान बनाने वाले व्यक्तियों को उनकी करतूतों का दृश्य दिखलाने के लिए ही आज इस पुस्तक की अवतारणा की गई है।

—जी० एस० पथिक

भूमिका

स्तुत पुस्तक के सुयोग्य लेखक ने भारतीय महिलाओं की वास्तविक परिस्थिति पर प्रकाश डालने का यथाशक्ति प्रयत्न किया है। पुरुषों द्वारा स्त्री-जाति पर होने वाले अन्यायों का भी उल्लेख किया गया है। इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं कि अधिकांश भारतीय स्त्रियों की दशा बड़ी ही दयनीय और शोचनीय हो रही है। आज भारतवासी राजनैतिक अधिकार प्राप्त करने की जी-जान से चेष्टा कर रहे हैं, पर उनके घरों की वास्तविक दशा क्या है, इसकी ओर बहुत कम लोगों का ध्यान आकर्षित हुआ है। नागरिकों की जन्मदात्री, जब तक भारतीय माताओं की दशा पर उचित ध्यान नहीं दिया जायगा तब तक देशोन्नति की आशा दुराशामात्र है। सारे ब्रह्माण्ड का इतिहास हमारी इस धारणा की पुष्टि करेगा। हम कुछ उदाहरण उपस्थित करके यह बात और भी स्पष्ट-रूप से यहाँ अङ्कित किया चाहते हैं कि देशोन्नति से स्त्रियों का क्या सम्बन्ध है, तथा स्त्रियों के निरादर और अपमान से किसी देश को कैसी हानि पहुँचती है? इससे पाठकों को यह समझने में सुविधा होगी कि यदि हम अपना खोया हुआ गौरव पुनः प्राप्त करना चाहते हैं तो हमें अपनी माँ-बहिनों, बहू-बेटियों की दशा सुधारनी होगी। अस्तु;

स्त्रियों का निरादर देश अथवा समाज को नष्ट कर देता है। संसार

का इतिहास ऐसे प्रमाणों से भरा पड़ा है। देवकी के निरादर ने महाराजा कंस जैसे पराक्रमी राजा को बात की बात में नष्ट कर डाला। सीता के अपमान ने रावण जैसे शक्तिशाली राजा का राज्य और उसके समस्त परिवार का नामोनिशान मिटा दिया। रावण की बहिन सूर्पणखा के अपमान करने का ही फल यह हुआ कि राम को अपनी प्राण-प्यारी सीता से हाथ धोना पड़ा, और समस्त झगड़े का कारण उसका, राम के उसकाने पर, लक्ष्मण द्वारा नाक काटा जाना ही कहा जाता है। द्रौपदी के अपमान ने केवल कौरवों को ही नष्ट नहीं किया, प्रत्युत उसी काल से भारतवर्ष की अवनति का इतिहास आरम्भ होता है, जैसा कि हम आगे कहेंगे।

यह बातें तो हुईं बहुत प्राचीन काल की और केवल भारत की, किन्तु अन्य देशों के बारे में भी यही सच है। ग्रीस के राजा की स्त्री हेलेन सौन्दर्य में सर्व-श्रेष्ठ गिनी जाती थी। एक बार ट्रॉय (ट्रॉय आधुनिक एशिया माइनर में था) का युवराज वहाँ गया और उसकी सुन्दरता पर मोहित हो उसको ले भागा। जब ग्रीसवासियों को यह ज्ञात हुआ तो उन्होंने ट्राय पर आक्रमण किया। ट्रायवासियों ने भी वीरतापूर्वक अपनी रक्षा की। कई आक्रमण असफल हुए। दस वर्ष तक नगर घिरा रहा। अन्त में चालाकी से भीतर घुस कर ग्रीसवासियों ने ट्रॉय (Troy) में आग लगा दी। इधर नगर भस्मीभूत हो गया और दूसरी ओर सब नगरवासी—राजा और प्रजा लड़ कर कट मरे। नगर का चिन्ह भी शेष न रहा। हेलेन वापस ले जाई गई। अब उसका ग्रन्थों में वर्णन रह गया है। इतिहास-प्रिय विद्वान कभी वहाँ जाकर अपनी अन्वेषण-तृष्णा को शान्त कर लेते हैं।*

---

* ग्रीस की सभ्यता किसी समय में बहुत बढ़ी-चढ़ी थी। किन्तु, उसके प्रागैतिहासिक समय का वर्णन भी होमर कवि ने उसी प्रकार किया है जिस

इस लेख में हम यह सिद्ध किया चाहते हैं कि प्राचीन काल में अथवा यों कहिए कि समस्त संसार के असभ्यावस्था में स्त्रियों का क्या स्थान रहा है? उनका कैसा निरादर हुआ है? इस अनादर का परिणाम कैसा हुआ? स्त्रियों के आदर करने से प्रत्येक राष्ट्र का उत्थान किस प्रकार हुआ? और अन्त में वे ही राष्ट्र जो किसी समय भारी असभ्य थे, आज कितने सभ्य हैं? आज उनका क्या स्थान है? भारतवर्ष के पतन का मुख्य कारण और इस समय हमारा क्या कर्त्तव्य है?........इत्यादि।

दुनिया भर के किसी भी राष्ट्र के उत्थान का इतिहास यदि उलट कर देखा जाय तो स्पष्ट-रूप से सिद्ध होता है कि स्त्रियों की सहायता बिना आज तक कोई भी जाति अपना सुधार नहीं कर सकी है। नागरिकों की जन्मदात्री माताओं का जहाँ कहीं भी निरादर रहा है, वह जाति सदा जङ्गली और असभ्य रही है। कुछ ऐतिहासिक प्रमाण हम नीचे दे रहे हैं:—

सभ्यता के आगार रोमन-जाति के प्राचीन इतिहास का अवलोकन करने से एक बार सहम जाना पड़ता है। रोमन क़ानून के अनुसार स्त्री बिलकुल ही परतन्त्र थी। अविवाहित अवस्था में उसे ठीक एक दासी के समान अपने पिता और कुटुम्ब वालों की सेवा करनी पड़ती थी। पिता के

प्रकार श्री वाल्मीकि जी ने हमारे भारत का। ओडिसी और ईलियड उसके दो बड़े ग्रन्थ हैं। सबसे मुख्य वर्णन है इसमें ट्रॉय के युद्ध (Trojan war) का है। ट्रॉय भी उसी प्रकार जलाया गया था, जिस प्रकार लङ्का। इस युद्ध की लङ्का-युद्ध से अधिक समानता देख कर किसी-किसी पाश्चात्य लेखक ने तो यहाँ तक कहने की धृष्टता की है कि वाल्मीकि जी ने अपनी कथा होमर के ग्रन्थों से ली है। किन्तु, इतिहास द्वारा यह सिद्ध हो गया है कि सिद्धान्त सर्वथा निर्मूल है।

का इतिहास ऐसे प्रमाणों से भरा पड़ा है। देवकी के निरादर ने महाराजा कंस जैसे पराक्रमी राजा को बात की बात में नष्ट कर डाला। सीता के अपमान ने रावण जैसे शक्तिशाली राजा का राज्य और उसके समस्त परिवार का नामोनिशान मिटा दिया। रावण की बहिन सूर्पणखा के अपमान करने का ही फल यह हुआ कि राम को अपनी प्राण-प्यारी सीता से हाथ धोना पड़ा, और समस्त झगड़े का कारण उसका, राम के उसकाने पर, लक्ष्मण द्वारा नाक काटा जाना ही कहा जाता है। द्रौपदी के अपमान ने केवल कौरवों को ही नष्ट नहीं किया, प्रत्युत उसी काल से भारतवर्ष की अवनति का इतिहास आरम्भ होता है, जैसा कि हम आगे कहेंगे।

यह बातें तो हुई बहुत प्राचीन काल की और केवल भारत की, किन्तु अन्य देशों के बारे में भी यही सच है। ग्रीस के राजा की स्त्री हेलेन सौन्दर्य में सर्व-श्रेष्ठ गिनी जाती थी। एक बार ट्रॉय (ट्रॉय आधुनिक एशिया माइनर में था) का युवराज वहाँ गया और उसकी सुन्दरता पर मोहित हो उसको ले भागा। जब ग्रीसवासियों को यह ज्ञात हुआ तो उन्होंने ट्राय पर आक्रमण किया। ट्रायवासियों ने भी वीरतापूर्वक अपनी रक्षा की। कई आक्रमण असफल हुए। दस वर्ष तक नगर घिरा रहा। अन्त में चालाकी से भीतर घुस कर ग्रीसवासियों ने ट्रॉय (Troy) में आग लगा दी। इधर नगर भस्मीभूत हो गया और दूसरी ओर सब नगरवासी—राजा और प्रजा लड़ कर कट मरे। नगर का चिन्ह भी शेष न रहा। हेलेन वापस ले जाई गई। अब उसका ग्रन्थों में वर्णन रह गया है। इतिहास-प्रिय विद्वान कभी वहाँ जाकर अपनी अन्वेषण-तृष्णा को शान्त कर लेते हैं।*

---

* ग्रीस की सभ्यता किसी समय में बहुत बढ़ी-चढ़ी थी। किन्तु, उसके प्रागैतिहासिक समय का वर्णन भी होमर कवि ने उसी प्रकार किया है जिस

इस लेख में हम यह सिद्ध किया चाहते हैं कि प्राचीन काल में अथवा यों कहिए कि समस्त संसार के असभ्यावस्था में स्त्रियों का क्या स्थान रहा है? उनका कैसा निरादर हुआ है? इस अनादर का परिणाम कैसा हुआ? स्त्रियों के आदर करने से प्रत्येक राष्ट्र का उत्थान किस प्रकार हुआ? और अन्त में वे ही राष्ट्र जो किसी समय भारी असभ्य थे, आज कितने सभ्य हैं? आज उनका क्या स्थान है? भारतवर्ष के पतन का मुख्य कारण और इस समय हमारा क्या कर्त्तव्य है?.........इत्यादि।

दुनिया भर के किसी भी राष्ट्र के उत्थान का इतिहास यदि उलट कर देखा जाय तो स्पष्ट-रूप से सिद्ध होता है कि स्त्रियों की सहायता बिना आज तक कोई भी जाति अपना सुधार नहीं कर सकी है। नागरिकों की जन्मदात्री माताओं का जहाँ कहीं भी निरादर रहा है, वह जाति सदा जङ्गली और असभ्य रही है। कुछ ऐतिहासिक प्रमाण हम नीचे दे रहे हैं:—

सभ्यता के आगार रोमन-जाति के प्राचीन इतिहास का अवलोकन करने से एक बार सहम जाना पड़ता है। रोमन क़ानून के अनुसार स्त्री बिलकुल ही परतन्त्र थी। अविवाहित अवस्था में उसे ठीक एक दासी के समान अपने पिता और कुटुम्ब वालों की सेवा करनी पड़ती थी। पिता के

प्रकार श्री वाल्मीकि जी ने हमारे भारत का। ओडिसी और ईलियड उसके दो बड़े ग्रन्थ हैं। सबसे मुख्य वर्णन है इसमें ट्रॉय के युद्ध (Trojan war) का है। ट्रॉय भी उसी प्रकार जलाया गया था, जिस प्रकार लङ्का। इस युद्ध की लङ्का-युद्ध से अधिक समानता देख कर किसी-किसी पाश्चात्य लेखक ने तो यहाँ तक कहने की धृष्टता की है कि वाल्मीकि जी ने अपनी कथा होमर के ग्रन्थों से ली है। किन्तु, इतिहास द्वारा यह सिद्ध हो गया है कि सिद्धान्त सर्वथा निर्मूल है।

मर जाने पर घर का जो भी बड़ा हो, उसे उसकी सेवा-टहल भी ठीक उसी भाँति करनी पड़ती थी। विवाहित हो जाने पर कन्या तथा उसकी समस्त जायदाद का उत्तराधिकारी पति समझा जाता था और फिर भी एक दासी के समान उसे पति के घर में जीवन निर्वाह करना पड़ता था। पति की निगाह में उसकी स्त्री ठीक एक मोल ली हुई वस्तु के समान थी। उस समय के रोमन-क़ानून की दृष्टि में किसी भी स्त्री को, चाहे ग़रीब हो अथवा अमीर, एक .गुलाम से ज़्यादा अख़्तियार नहीं था। रोमन-क़ानून के अनुसार यदि कोई पुरुष अपनी स्त्री को मार भी डाले तो आम तौर से वह कोई जुर्म नहीं समझा जाता था। यदि कोई स्त्री किसी पुरुष को अपने हाथ से शराब पिला देती, किसी को ज़हर देती अथवा किसी दूसरे वंश के लड़के को गोद बिठाने का सङ्कल्प भी करती, तो उसके पति को क़ानून-द्वारा इस बात का अधिकार था कि वह अपनी स्त्री को जान से मार डाले! रोमन लोग स्त्रियों का कभी विश्वास नहीं करते थे। अदालतों में रोमन-स्त्रियाँ किसी मामले में गवाही देने के योग्य विश्वसनीय नहीं समझी जाती थीं। यदि अमीर से अमीर स्त्री भी किसी की ज़ामिन होना चाहती तो नहीं हो सकती थी। अपने पास किसी प्रकार की जायदाद रखने का स्त्रियों को कोई अधिकार नहीं था। स्त्री अपनी इच्छा के अनुसार न तो किसी प्रकार की वसीयत कर सकती थी और न क़ानूनी इक़रार। यदि पति चाहे तो अपनी स्त्री को बेच सकता था। यदि पति ज़रा भी रूठ जावे तो स्त्री को अपने घर से अथवा उस शहर से बाहर निकाल सकता था जिसमें वह रहता हो। यह सब बातें आज की नहीं, बल्कि उस समय की हैं जब कि वह असभ्य था।

सीरिया और फ़िनोशिया आदि प्रदेशों में भी स्त्रियों का घोर अनादर

होता और स्त्रियाँ बिलकुल पशु के समान समझी जाती थीं। वे केवल काम-चेष्टा को शान्त करने की एक जीती हुई प्रतिमा समझी जाती थीं और यहाँ की स्त्रियों को भी पति की दासी और अन्य कुटुम्बियों की सेविका-मात्र समझा जाता था। एक स्त्री के कई पति हो सकते थे। वहाँ के पुरुषों को अपनी स्त्रियों को जुवे के दाँव पर लगाने का भी पूरा-पूरा अधिकार था, और हार जाने से एक पुरुष की स्त्री को दूसरे पुरुष की दासी बन कर रहना पड़ता था। यह सब बातें भी इन देशों की असभ्यावस्था की हैं।

इटली वालों का तो यह सिद्धान्त था कि जिस प्रकार घोड़े के लिए, चाहे वह अच्छा हो अथवा बुरा, एड़ लगाने की आवश्यकता होती है ठीक उसी प्रकार स्त्रियों को भी—चाहे वह सुशील हों अथवा फूहड़, कुटम्मस की ज़रूरत होती है। इटली की स्त्रियाँ प्रायः किसी न किसी अपराध के कारण रोज़ ही ठोकी-पीटी जाती थीं। शायद ही कोई अभागा दिन ऐसा जाता हो जब उनकी पीठ-पूजा न होती हो !! याद रहे, यह भी इटली का उस समय का इतिहास है जब वह असभ्य था।

चीनियों का यह अटल सिद्धान्त था कि अपनी स्त्री की बात सुनो ज़रूर, किन्तु कार्य सदा उसके ख़िलाफ़ करो। चीन देश की स्त्रियों को मन्दिरों में जाने की मनाही थी। उनको देवताओं की पूजा अथवा उन्हें स्पर्श तक करने का अधिकार नहीं था!

रूसी लोगों का सिद्धान्त बड़ा ही विलक्षण था। वे इस बात को मानते थे कि दस स्त्रियों में एक जीव होता है, अर्थात् दस स्त्रियों को क़त्ल करना एक जीव-हत्या करने के बराबर समझा जाता था!

जापान का प्राचीन इतिहास बतलाता है कि उस समय वहाँ की स्त्रियों

को भी चीन ही के समान किसी धार्मिक कार्य में भाग लेने का अधिकार नहीं था। वे महा नीच और अपवित्र समझी जाती थीं।

अरब-निवासी अपनी स्त्रियों को बहुत ही बुरी तरह रखते थे। लड़की के पैदा होने पर वे उसे ज़िन्दा ही दफ़न कर दिया करते थे! जिसके यहाँ लड़की पैदा हो वह समाज में बड़ा कम्बख़्त व्यक्ति समझा जाता था और लोग उससे घृणा करते थे। अपने देवताओं के सामने अरब के लोग लड़कियों की क़ुर्बानी कर दिया करते थे। जो लड़कियाँ लावारिस होती थीं, उन्हें जवान होने पर, उस व्यक्ति से अवश्य ही विवाह करना पड़ता था, जो उनका आश्रयदाता अर्थात् सर-परस्त होता था। एक पति की कई स्त्रियाँ और एक स्त्री के कई पति हुआ करते थे!!

स्पार्टा देश में जो स्त्री दुर्बल समझी जाती थी अथवा जिसके बच्चे मोटे-ताज़े पैदा नहीं होते थे, उसे उसका पति जान से मार दिया करता था! स्त्रियों को बात-बात में जान से मार देने की प्रथा वहाँ अधिक प्रचलित थी। इस कुप्रथा के कारण स्त्रियों की वहाँ इतनी अधिक कमी हो गई थी कि, एक स्त्री को कई पुरुषों की पत्नी बन कर रहना पड़ता था। और उसके निकम्मी हो जाने पर वह मार दी जाया करती थी। स्पार्टन लोग अपनी स्त्री को अपने मित्रों को उधार दे देना कोई असाधारण बात नहीं समझते थे। समय पड़ने पर वे लोग स्त्रियों को किसी महाजन के यहाँ गिरवी रख कर क़र्ज़ भी ले सकते थे।

स्पार्टा में यह भी अनुचित नहीं समझा जाता था कि यदि अतिथि इस योग्य समझा जावे, तो पति को अधिकार था कि वह अपनी पत्नी द्वारा भी उसकी सेवा करे!! जब कोई पुरुष वृद्धावस्था को प्राप्त होता था तो वह अपनी पत्नी के लिए एक सुन्दर और जवान सज्जन को अपने स्थान

पर नियुक्त कर देता था। जनता के विचार में यह कार्य बहुत ही सच्चरित्रता का होता था !!

ईरान के पुरुष इतने कामी थे कि ये स्त्रियों को काम-वासना के सन्तुष्ट करने के अलावा और किसी क़ाबिल समझते ही नहीं थे। हर एक बड़े आदमी के यहाँ सैकड़ों औरतें रहा करती थीं। वहाँ तो अन्य चीज़ों की भाँति स्त्रियाँ भी बाज़ारों में बिका करती थीं। दाम देकर कोई भी पुरुष उन्हें ख़रीद कर, जो चाहे कर सकता था। पूरी छः सदियों तक वहाँ स्त्रियाँ बिका करती थीं और उनकी भयङ्कर दुर्गति होती थी।

एथिन्स में भी स्त्रियों की कोई कम दुर्गति नहीं होती थी। वहाँ के निवासी स्त्रियों को कलह और कष्ट की साक्षात् प्रतिमा समझते थे। घर-गृहस्थी वाली स्त्रियों की, अन्य बाज़ारू स्त्रियों से भी अधिक लज्जापूर्ण दुर्गति होती थी। वे शिक्षा से सर्वथा वञ्चित रक्खी जाती थीं। वहाँ एक अजीब बात यह थी कि घर-गृहस्थी वाली स्त्रियों का जितना ही अनादर होता था उतना ही वेश्याओं का मान। वेश्याओं को शिक्षा भी दी जाती थी। कारण यही था कि ईरान की भाँति इस देश के पुरुष भी काम-वासना के पुतले थे।

बिलकुल ही असभ्य तथा जङ्गली जातियों के इतिहास पर दृष्टि डालने से पता चलता है कि वे लोग स्त्रियों को अपनी जायदाद का एक हिस्सा समझते थे। अनेक जङ्गली लोगों में स्त्रियों की स्थिति बड़ी रोमाञ्चकारी थी। पढ़ कर एक बार सहम जाना पड़ता है। इन नर-पशुओं को जब कभी अपना पेट भरने को कोई शिकार न मिलता, तो अपनी क्षुधा शान्त करने के लिए यह लोग अपने घर की वृद्धा स्त्रियों को मार कर खा जाते थे। इतिहासों में तो यहाँ तक कहा गया है कि कुत्तों को मारने के पहिले

यह लोग वृद्ध स्त्रियों को मार कर खा जाते थे। इन लोगों का कहना था कि कुत्ता तो शिकार भी कर सकता है, किन्तु यह बुढ़ियाएँ तो बैठे-बैठे ही खाती हैं, इनके जीने से क्या लाभ होगा ?

इस सम्बन्ध में एक बार सभ्यता के गुरु इङ्गलैण्ड के प्राचीन इतिहास पर दृष्टि डालना अनुचित न होगा। स्त्रियों के निरादर के सम्बन्ध में केवल इतना ही कहना काफ़ी होगा कि यहाँ की स्त्रियों की दशा भी रोम से बहुत कुछ मिलती-जुलती थी, जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है। इसी देश के सुप्रसिद्ध विद्वान डॉक्टर जान्सन के मत का एक उदाहरण दे देने से ही असल बात पाठकों की समझ में आ सकती है।

इङ्गलैण्ड में भी स्त्रियों को धार्मिक मामलों से परे ही रक्खा जाता था और उन्हें इसमें भाग लेने का कोई अधिकार नहीं था। वे महा नीच और अपवित्र समझी जाती थीं। कालान्तर इस देश में, क्वेकर लोगों का एक धार्मिक सम्प्रदाय अलग ही पैदा हो गया था। इसने स्त्रियों को भी धर्म-सम्बन्धी उपदेश देने का अधिकार दे दिया था। जब डॉक्टर जान्सन को यह अशुभ समाचार मिला तो वे तिलमिला गए। उसने लिखा है:—
"The preaching of woman is like a dog's standing on its hind legs.
अर्थात्—"स्त्रियों का उपदेश अथवा व्याख्यान देना ठीक कुत्ते के पिछली टांगों पर खड़े होने के समान है।"

सुप्रसिद्ध अङ्गरेज़ कवि मिल्टन ने तो परमेश्वर की भक्ति और पूजा करने का निसर्ग-सिद्ध नियम भी स्त्रियों से छीन लिया है। उसका कहना है—"He to God and She through h'm" भावार्थ यह है कि 'यदि स्त्री परमात्मा को प्रसन्न करना चाहे तो पुरुष द्वारा ही उसे ऐसा करना चाहिए।'

'स्त्रियाँ केवल बच्चे जनने के लिए ही जनमती हैं, इसलिए उन्हें पुरुष के समान पढ़ना-लिखना सिखाना लाञ्छनीय है'। यह एक ऐसा विचार है जो प्रत्येक असभ्य देश में प्रचलित रहा है; और बहुत जगह तो आज भी पाया जाता है*। इन्हीं विश्वासों का यह फल था कि इङ्गलैण्ड की सर्व-श्रेष्ठ उपन्यास लेखिका जेन आस्टन अपने उपन्यास कई वर्षों तक प्रकाशित न करा सकी।

ऊपर जो दो-एक उदाहरण हमने अपने पाठकों के सामने रक्खे हैं, वे हैं इङ्गलैण्ड के महान पुरुषों की स्त्री-सम्बन्धी व्यवस्था। साधारण जनता के विचार उस समय कैसे घृणित होंगे, इस पर कुछ टीका-टिप्पणी करना केवल कागज़ काला करना होगा।

स्थानाभाव के कारण हम अन्य देशों के उदाहरण न देकर अब संक्षिप्त-रूप से इस बात पर प्रकाश डालना चाहते हैं कि स्त्रियों का आदर कहाँ से आरम्भ हुआ और उसका फल क्या हुआ?

स्त्रियों के निरादर और उनके अपमान के जो नमूने ऊपर दिए गए हैं ये सब ऐतिहासिक बातें हैं, किन्तु उन्हीं देशों के इतिहासों पर दृष्टि डालने से, जिनका ब्योरा ऊपर दिया गया है, यह स्पष्ट-रूप से सिद्ध होता है कि ज्यों-ज्यों समाज और राजकीय व्यवस्था में सुधार होता गया, त्यों-त्यों स्त्रियाँ दासत्व से मुक्त होती गईं और स्त्रियों के सुखी होने पर तथा उनकी आत्मिक, मानसिक और शारीरिक उन्नति की ओर जब उचित ध्यान दिया गया तब वे ही माताएँ अच्छी, दृढ़, बलवान और बुद्धिमान प्रजा उत्पन्न करने में समर्थ हुईं, और तभी उस देश अथवा राष्ट्र का

---

* उदाहरण के लिए भारतवर्ष ही काफ़ी है।

उत्थान हो सका। सुप्रसिद्ध विद्वान अरस्तू का ज़ोरों के साथ कहना है—"स्त्रियों की उन्नति या अवनति पर किसी भी राष्ट्र की उन्नति अथवा अवनति सर्वथा अवलम्बित है। यूनानी लोग (Greeks) अपनी स्त्रियों को दासी के समान नहीं रखते थे वरन् उन्हें राष्ट्र की उन्नति का सहायक समझते थे। वे लोग अपनी स्त्रियों की शारीरिक, मानसिक और आत्मिक उन्नति में दत्तचित्त रहते थे। यही कारण था कि यूनानी लोग बारबेरियन जाति को अपने आधीन कर सके थे।"

सुप्रसिद्ध इतिहासकार टैसिरिस का कहना है कि जर्मन-जाति के पुरुष स्त्रियों के साथ सदा अच्छा व्यवहार करते थे और उन्हें अपनी उन्नति का सहायक समझते थे। यही कारण था कि जर्मन-जाति ने रोमन लोगों को दबा डाला था। जङ्गलों में रहते हुए भी जर्मनों की कुटुम्ब-संख्या बहुत अच्छी थी।

रोमन-जाति की भयङ्कर अवनति हो चुकने पर उसकी आखें खुलीं और तब स्त्रियों के सुधार की ओर दृष्टि फेरी गई। उनमें दुराचार, अज्ञान और कलह आदि जो दुर्गुण घुसे हुए थे उन्हें नष्ट किया गया और पुरुष लोग स्त्रियों को सम्मान की दृष्टि से देखने लगे। जब स्त्रियाँ दासत्व से मुक्त की गईं और उनकी शिक्षा आदि का उचित प्रबन्ध हुआ तब कहीं रोमन-जाति पनप सकी। सुप्रसिद्ध इतिहासकार ग्रीवन महोदय का कहना है—"उस समय ग्रीस जाति की स्त्रियों की भयङ्कर अवनति थी, और रोमन लोग अपनी स्त्रियों के साथ अच्छा सलूक करने लग गए थे। एकमात्र यही कारण था कि रोम-ग्रीस से अधिक बलवान हो गया और ग्रीस को रोम के आगे सिर झुकाना पड़ा।

स्थानाभाव के कारण प्रत्येक जाति के उत्कर्ष के इतिहास को तूल न

देकर हम अपने पाठकों को इस बात का विश्वास दिलाते हैं कि चाहे वे जिस जाति का इतिहास खोल कर देख लें, उन्हें स्पष्टतया सिद्ध हो जायगा कि बिना स्त्रियों का सङ्गठन किए कोई भी जाति अब तक उन्नति नहीं कर सकी है और न कर ही सकती है।

यदि हम भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास पर दृष्टि डालते हैं तब भी यही सिद्ध होता है कि जिस समय हमारी सभ्यता का सिक्का संसार पर जमा था उस समय भारत की स्त्रियाँ पूजी जाती थीं। सभा-सोसाइटियों में, राज-दर्बार में, घर में अथवा घर के बाहर—सब जगह उनकी प्रतिष्ठा होती थी और उन्हें 'देवी' के नाम से सम्बोधन किया जाता था। मनुष्य ही नहीं, देवता भी उन्हें श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे और उनका सम्मान करते थे। स्त्रियाँ इतनी पवित्र और पूजनीया समझी जाती थीं कि पहिले स्त्री तब कहीं पुरुषों का नाम लिया जाता था, जैसा कि उनका नाम आज भी पहिले लिया जाता है। सीता-राम, गौरी-शङ्कर, राधा-कृष्ण आदि शब्दों से भारतवासी आज भी देवताओं का स्मरण करते हैं। हिन्दू-धर्म के अनुसार धन की आगार 'लक्ष्मी' विद्या का भण्डार 'सरस्वती' और सृष्टि के सञ्चालन करने वाली शक्ति को 'शक्ति' माना गया है।

किन्तु, भारतवर्ष के पतन तथा स्त्रियों की अवनति का इतिहास महाभारत के युग से आरम्भ होता है। द्रौपदी का एक साथ पाँच पुरुषों की स्त्री बनाया जाना, उसे युधिष्ठिर जैसे धर्मात्मा द्वारा जुए के दाँव पर लगाया जाना, कुन्ती के कुमारीपन में कर्ण का जन्म और नदी में बहाया जाना, इस घटना को गुप्त रख कर फिर राज-कुल में उसका विवाह होना, धीवर की कुमारी कन्या सत्यवती के साथ महर्षि पाराशर का सम्भोग, वेदव्यास का जन्म और यह सब हो चुकने पर फिर राज-कुल में उसका

विवाह होना, कुमारीपन में भीष्म की माता (गङ्गादेवी) का पुत्र-विसर्जन, अपने सौतेले भाई विचित्रवीर्य के विवाह के लिए भीष्म का बलपूर्वक काशी-नरेश की पुत्रियों—अम्बा, अम्बिका और अम्बालिका को हर लाना और उनका अनादर करना आदि-आदि ऐसी अनेक कलुषित घटनाएँ उस समय के राज-वंश में पाई जाती हैं। जब स्वयँ राज-वंश की यह हालत थी तो सामान्य प्रजा किस स्थिति में होगी, यह बात ज़रा ध्यानपूर्वक सोचने और विचारने की है। चरित्र-हीन जाति कभी भी अपना अस्तित्व क़ायम रखने में समर्थ नहीं हो सकती, उसका नाश एक निश्चित विषय हो जाता है, भूमण्डल की प्रत्येक जाति का इतिहास इस बात का प्रमाण है।

क्रमशः भारतवासियों का चरित्र-बल घटता गया और वह समय उपस्थित हो गया जब स्त्रियाँ केवल भोग-बिलास की सामग्री मात्र समझी जाने लगीं। राजपूताने के राज-वंशों के नष्ट होने का भी एकमात्र यही कारण था। सैकड़ों राज-वंश केवल इसलिए लड़ कर नष्ट हो गए कि वह किसी राजकुमारी से विवाह करना चाहते थे, किन्तु दूसरा भी उसे पाने का इच्छुक था। अनेक सर्वगुण-सम्पन्ना राजकुमारियों को इन कामी पुरुषों की पापेच्छा पर बलि हो जाना पड़ा है। समस्त राजपूताने का इतिहास ऐसे उदाहरणों से भरा पड़ा है। यही कारण था कि यवनों का सिक्का भारत में शीघ्र ही जम सका और यहीं से हमारी दासता का 'श्रीगणेश' आरम्भ हुआ।

यह एक मानी हुई बात है कि वैदिक काल में भारतीय महिलाओं का बहुत ही ज़्यादा आदर और सत्कार होता था और वे पूजनीया समझी जाती थीं। धार्मिक ग्रन्थों के पढ़ने वाले पाठक तथा पाठिकाएँ इस विषय

के एक नहीं, अनेक प्रमाण देख चुकी होंगी। जिस समय अन्य जाति के लोग असभ्य थे उस समय भारतवासी आध्यात्मिकता का अध्ययन कर रहे थे और दूर देशों में जा-जाकर सभ्यता का पाठ सिखा रहे थे।

पौराणिक काल से ही स्त्रियों की अवनति और भारतवर्ष के पतन का इतिहास आरम्भ होता है। मनु महाराज ने स्त्रियों के प्रति बहुत ही दुराग्रह का परिचय दिया है। मनु महाराज की आज्ञा है कि स्त्री को हमेशा अपने आधीन रक्खो "स्त्रियाँ वस्त्र और आभूषण पसन्द करती हैं, उनकी समस्त कामनाएँ पापपूर्ण होती हैं और उनका स्वभाव बहुत बुरा होता है। उनका चरित्र दुर्बल, अदृढ़ और कर्कश होता है, इसलिए उन्हें सदा बन्धन में ही रखना चाहिए'........इत्यादि।

ये जो ऊपर मनु महाराज के विचार दिए गए हैं वे केवल मनुस्मृति के एक श्लोक का भावार्थ है। ऐसे अनेक श्लोक मनुस्मृति के नवें अध्याय में पाए जाते हैं। बाज़ बाज़ तो इतने सम्मान-शून्य हैं कि जिन्हें हम यहाँ लिखना भी स्त्रियों का अपमान करना समझते हैं। किन्तु, एक बात विचारणीय भी है, वह यह कि कहीं-कहीं ऐसे श्लोक भी पाए जाते हैं जिनसे स्त्रियों को हद दर्जे का ऊँचा स्थान प्रदान किया गया है—

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः................"

इत्यादि। ऐसी हालत में मनु महाराज के वास्तविक उद्देश्य का पता चलाना कठिन ही नहीं, बल्कि असम्भव है। कारण यह है कि शुद्ध धर्म-ग्रन्थ, कम से कम हमारे देखने में आज तक नहीं आए हैं, किन्तु मामूली बुद्धि के अनुसार हम ही नहीं, कोई भी इस बात को सुगमता से समझ सकता है कि मनुष्य ही नहीं, बल्कि देवता तक स्त्रियों का बड़ा सम्मान करते थे, जैसा कि हम ऊपर कह आए हैं। अन्य देशों की

असभ्यावस्था तथा उनके उत्कर्ष का इतिहास भी बड़ी खोज के बाद इसी लिए ऊपर दिया गया है ताकि पाठकों को समझने में सुगमता हो और वे अपना कर्त्तव्य निर्धारित कर सकें।

अन्त में हम केवल इतना ही कहना चाहते हैं कि यदि भारतवासी देश को स्वाधीन बनाना चाहते हैं, यदि वे अच्छे नागरिक उत्पन्न करना चाहते हैं, और चाहते हैं कि भारत-भूमि भी प्राचीन काल के समान रत्नगर्भा होकर बुद्धिमान, शक्तिमान, योद्धा, संयमी और वीर सन्तान उत्पन्न कर सके तो उन्हें स्त्रियों का आदर-सत्कार करना चाहिए। उनकी धार्मिक, मानसिक और शारीरिक उन्नति की ओर उचित ध्यान देना चाहिए और उन्हें दासत्व से मुक्त करना चाहिए। बिना स्त्रियों की उन्नति किए देश के उत्थान की कल्पना करना भी आकाश-कुसुम पाने की आशा के समान दुराशा-मात्र है।

"चाँद" कार्यालय,
इलाहाबाद

—रामरख सिंह सहगल

अबलाओं पर अत्याचार

विषय प्रवेश

जाति का कोई भी प्रश्न जब हमारे सम्मुख आता है तब हमारी दृष्टि उस ओर सहसा आकर्षित हो जाती है। हमारे हृदयों में एक प्रकार की लालसा और उत्सुकता का भाव आ जाता है और हम उस प्रश्न को बड़े विचित्र ढङ्ग से देखते हैं। स्त्रियाँ हमारे लिए खेल हैं; वे हमारी लालसा-पूर्ति की साधन हैं; उनके द्वारा हम गृहस्थी का चक्र सञ्चालित करते हैं और अपनी इच्छानुकूल उन्हें जिस ओर चाहें, ले जाते हैं। अवश्य ही यह स्त्री-जाति की दुर्बलता का चिन्ह है। इसके अन्तर्गत वह भाव भरा हुआ है जिसका समझना प्रत्येक के लिए सरल नहीं।

जिस उत्साह और उमङ्ग के साथ हम स्त्री-जाति के प्रश्न पर विचार करते हैं; वह उत्साह और उमङ्ग तत्काल ही काफ़ूर हो जाता है जब हम देखते हैं कि यह प्रश्न तो हमारे ही प्रतिकूल

परिणाम-दायक है; इससे तो हमारे ही स्वत्वों पर आघात पहुँचेगा; हम स्वेच्छापूर्वक स्त्रियों पर शासन कैसे कर सकेंगे; हम अपनी मानसिक विचार-तरङ्गों को स्त्रियों के प्रति किस प्रकार कार्यरूप में परिणत करेंगे और इस प्रकार हमारे आमोद-प्रमोद, आहार-विहार, स्वेच्छा-स्वाधीनता और कार्याकार्य का क्रम कैसे स्थिर रह सकेगा?

कुछ भी हो, इतना हम स्पष्ट-रूप से कह सकते हैं कि पुरुष-जाति स्त्रियों के प्रश्न को अत्यन्त स्वार्थ की दृष्टि से देखती है। कोई भी कारण उपस्थित होने पर पुरुष प्रायः स्वार्थ-सिद्धि को पहला स्थान देते हैं। कहीं कुछ भी उनकी इच्छा के प्रतिकूल हुआ तो पुरुषों के क्रोध का पारा बहुत ऊँचा चढ़ जाता है। स्त्रियों का कोई भी विचार स्वतन्त्र नहीं होता है। यदि हो भी तो वह कार्य-रूप में परिणत नहीं होता। जो कुछ भी वे कहती या करती हैं, वह सब पुरुषों के लिए या पुरुषों की ओर से। पुरुषों का आदेश ही उनके लिए ब्रह्म-वाक्य है। चाहे घर हो या बाहर, सदा पुरुषों की तूती स्त्रियों पर बोला ही करती है।

हम चाहते हैं सुख, आनन्द और अनुपम जीवन; किन्तु जिस स्त्री-जाति की उत्तमता और उपयोगिता पर इनकी सार्थकता निर्भर है, उसके सम्बन्ध में हम सोचते ही नहीं—उसका विचार तक नहीं करते। हम बाहर न जाने क्या-क्या कर आते हैं, घर में भी न जाने क्या-क्या करने को तैयार रहते हैं; किन्तु स्त्री-जाति का उसमें कौन सा भाग रहता है? सच तो यह है कि विवाह कर स्त्रियों

को घर में रखना पुरुषों के जीवन के कार्य-क्रम का एक अङ्ग मात्र रह गया है। जिस प्रकार अन्यान्य सुखों की प्राप्ति के लिए विशेष साधनों की आवश्यकता पड़ती है; जिस प्रकार जीवन-निर्वाह तथा वहन के लिए भोजन, वस्त्र इत्यादि की उपयोगिता प्रतीत होती है उसी प्रकार स्त्री को गृह में लाकर उससे मशीन की तरह इच्छानुसार कार्य लेना ही पुरुष-जाति का उद्देश्य-सा हो गया है। पुरुष यह भूल गए कि जिस मानव-जाति में उन्होंने जन्म लिया है उसी में स्त्रियों का भी समावेश है—वे भी मानव हैं, उनके भी हृदय है और वे भी सुख-दुख तथा अन्य मानसिक विकारों का अनुभव करती हैं। परन्तु, पुरुष तो यह नहीं समझते। उनकी दृष्टि में तो स्त्रियाँ हृदय ही नहीं रखतीं। वे तो स्त्रियों को पालित पशुओं की कोटि में रखना चाहते हैं। देखिए, स्त्रियों के हृदय के सम्बन्ध में श्रीमती उमा नेहरू ने कैसे चुभते हुए वाक्य लिखे हैं। वे लिखती हैं—"संसार-निवासियो! हमारे भी एक हृदय है और यह हृदय उन सारी उमङ्गों से परिपूर्ण है, जो तुम्हारे हृदयों में तरङ्गें ले रही हैं। इसमें सन्देह नहीं कि यह विचित्र वाणी तुम्हें आश्चर्य-जनक और अविश्वसनीय प्रतीत होती होगी, परन्तु यह सत्य है। यह वाणी शताब्दियों से सताए हुए एक जीव की अन्तिम रोदन-ध्वनि है। इसे सुन कर क्रोध करने से कुछ लाभ नहीं। पीड़ा से व्याकुल जीव को, क्रोध की आँख दिखा, चुप कर देने की चेष्टा करना बड़ी कठोरता है। इसे छोड़ो! यदि इस दुखभरी वाणी में सत्य का कोई अंश हो तो उसे स्वीकार करना तुम्हारा मानवी-कर्तव्य है। नहीं,

नहीं, यह क्रूर दृष्टि, यह परम्परा-पूजन और धर्म की मोहिनी-लोरियाँ अब इस व्याकुल आत्मा को शान्त नहीं कर सकतीं।"

स्त्रियों के हृद्गत भावों का, एक स्त्री ही द्वारा दिया गया परिचय, बतलाता है कि स्त्रियों का हृदय क्या है, और कैसा है। ऊपर हम कह चुके हैं कि पुरुषों का यह कार्य स्वार्थपूर्ण है। यह ठीक है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने स्वार्थ-साधन के लिए विविध उपायों का अवलम्बन लेता है और ऐसा करने में वह कोई दोष भी नहीं समझता। यह बात वहीं तक ठीक है, जहाँ तक उस स्वार्थ-साधन से किसी अन्य व्यक्ति के हित में हानि नहीं पहुँचती। स्वार्थ-साधन कदापि बुरा नहीं है, यदि उसका उद्देश्य शुद्ध और कल्याणकारी है। किन्तु, जहाँ स्वार्थ की लालसा, एक व्यक्ति ही नहीं, तमाम जाति और समाज के हित का सर्वनाश करती है; जहाँ स्वार्थ की अग्नि समस्त मानवीय सद्गुणों को भस्म करती है वहाँ स्वार्थ का रूप बड़ा भयङ्कर हो जाता है। हमारा समाज भी आज ऐसे ही स्वार्थ के फेर में पड़ा है। इस स्वार्थान्धता ने यहाँ तक पैर फैलाया है कि भारतीय हिन्दू-समाज इस आपत्ति से त्राहि-त्राहि कर रहा है—उसका जीवन घोर सङ्कट में पड़ गया है!

अच्छा, तो यह मोह और अज्ञान की निशा कब तक अन्धकार से प्रच्छन्न बनी रहेगी? कब तक शैतानों की तरह हम स्त्री-जाति पर घोर अत्याचार करते रहेंगे? कब तक हम यह न समझेंगे कि स्त्री और पुरुष दोनों को ही बलयुक्त और सङ्गठित होना चाहिए?

चाहे जो हो, स्त्रियों पर आए हुए सङ्कट का निवारण करना

ही होगा। उन पर रात दिन होने वाले अत्याचारों को दूर करना ही पड़ेगा। जिस जाति को हम सर्वश्रेष्ठ समझते हैं; जिसमें जन्म लेकर हम परमात्मा के अत्यन्त अनुग्रहीत होते हैं; जिसमें अपना अहोभाग्य समझते हैं और जिस जाति के प्राणियों का स्थान संसार में सर्वश्रेष्ठ माना जाता है उसी मनुष्य-जाति में जन्म लेने वाली ये स्त्रियाँ भी हैं। वे भी उन्हीं मनोविकारों के आधीन हैं जिनके आप वश में हैं। इनकी दया-माया, मोह-ममता, स्नेह-सौहार्द, प्रेम और अनुराग एक से एक बढ़ कर हैं; पुरुष इन बातों में स्त्रियों से कहीं पीछे हैं। फिर भी न जाने क्यों स्त्रियों की इतनी दुर्दशा हो रही है।

संसार में सैकड़ों प्रकार के आन्दोलन हो रहे हैं। मनुष्य-जाति अपने स्वत्वों के लिए लड़-झगड़ रही है। कहीं आर्थिक स्वाधीनता का प्रश्न है तो कहीं राजनैतिक स्वाधीनता का प्रश्न; कहीं आनुमानिक स्वराज्य की दरकार है तो कहीं पूर्ण स्वातन्त्र्य की फटकार। किन्तु, आश्चर्य तो यह है कि जो पुरुष-जाति सबल कहलाती है वह अपने अर्द्धाङ्ग पर इतना घोर अत्याचार करे और उसे इस तरह दबाए कि शताब्दियों की ग़ुलामी से उसमें स्वाधीनता के बीज नष्ट हो जायँ, उसकी वह सत्ता और अधिकार-शालीनता नष्ट-भ्रष्ट हो जाय और गहरी ग़ुलामी के कारण स्त्री-जाति की यह दुर्गति हो जाय कि आज वह अबला कहलाई जाय, केवल शोभा ही के लिए नहीं, प्रत्युत् प्रत्यक्ष ही कार्य के लिए।

इसी से हम जब कभी स्त्री-जाति की इस अवस्था पर विचार

करते हैं तो भविष्य की गहरी चिन्ता से हमारा हृदय द्रवित हो-जाता है। हम सोचते हैं—क्या मनुष्य-जाति इतनी बर्बर होती है कि वह अपनी ही माँ, बहिनों और बालिकाओं पर इतना भीषण अत्याचार करती है? क्या मनुष्य-जाति इतनी हृदय-हीन है कि वह कोमल हृदयों पर पैशाचिक अनाचार करते हुए तनिक भी नहीं हिचकिचाती?

हम न तो स्त्री-जाति के अन्ध-पक्षपाती हैं और न पुरुष-जाति के ही अनन्य विरोधी। समय की प्रगति के साथ मनुष्य का ध्यान सब प्रकार की आवश्यकताओं, त्रुटियों और सुधारों की ओर जाता है। जब हम देखते हैं कि उन्नति और अभ्युदय की तो हम अभिलाषा करते हैं और हृदय ऐसा तुच्छ रखते हैं कि क्षणिक विचार से मनुष्य से पशु हो जाते हैं—ज़रा से उत्तेजन से हम नर से पिशाच हो जाते हैं—तो अपनी इस आडम्बरपूर्ण स्थिति से हमें बड़ा भय होता है। नित्य-प्रति अपनी आँखों से यह दुर्व्यवहार देखते-सुनते हम इस अनुभव पर पहुँच गए हैं कि पुरुष-जाति की यह प्रवृत्ति केवल स्वार्थपूर्ण ही नहीं, किन्तु निन्द्य भावों से भरी हुई भी है। उसमें झूठी सहानुभूति और मिथ्या प्रेम है। पुरुष-समाज एक अङ्ग के नाश से बलिष्ठ होना चाहता है—एक शक्ति के ह्रास से वह स्वाधीन होना चाहता है—क्या यह आश्चर्य नहीं है?

स्त्रियाँ और समाज

माज-सुधार-परिषद् के अध्यक्ष पद से श्रीमती मेहता ने एक बार कहा था कि सामाजिक व्यवहार में स्त्रियों का इतना अधिक हाथ है कि यदि पुरुष अकेला कुछ करना चाहे, तो कदापि नहीं कर सकता। लोग यह बात भूल जाते हैं कि व्यवहार में स्त्रियों का अधिक भाग है। स्त्रियाँ तो सन्तान उत्पन्न करने का साधन और पुरुषों की इच्छा के अनुकूल टहल करने वाली नौकरानी समझी जाती हैं। यही तो कारण है कि पुरुषों को अपने कार्य में सफलता नहीं प्राप्त होती। तुम जो कुछ करते हो, सभाओं में जाकर व्याख्यान देते हो, गहन विषयों पर विचार करते हो—उन सब पर तुम्हारी माँ-बहिनों का कितना ध्यान रहता है; उन्हें तुम्हारे कार्यों से कितना परिचय रहता है? तुम व्याख्यान देते समय शास्त्रों से श्लोकों का अवतरण देकर लोक-प्रशंसा के पात्र होते हो; लोग उन्हें सुनकर तालियों की तुमुल-ध्वनि द्वारा अपना हर्ष प्रकट करते हैं। मनु और नेपोलियन के शब्द कह सुन कर थक गए, परन्तु जिस आदर्श को व्याख्यान देते या लेख लिखते समय हम अपने सम्मुख रखते हैं हमारा वह आदर्श व्यवहार के समय काफ़ूर हो-

जाता है। स्त्रियाँ कुछ जानना चाहती हैं, तुम उन्हें रोक देते हो। वे मस्तक ऊँचा करना चाहती हैं, तुम उन्हें दवा देते हो। तुम यह बात भूल जाते हो कि स्त्रियाँ भी मनुष्य हैं। तुम तो उन्हें दवा देने और कुचल डालने में ही अपनी प्रशंसा समझते हो। सत्ता का अभिमान इसी प्रकार बढ़ जाता है—एक बार अधिकार पाकर फिर छोड़ने को जी नहीं चाहता।

यह सब क्यों होता है ? कारण यह है कि हम लोग स्त्रियों की वस्तु-स्थिति तथा वास्तविक उपयोगिता को नहीं समझते। स्त्रियों का होना केवल आवश्यक है, हम इतना ही जानते हैं। स्त्रियों का सहयोग हमारे सुख के लिए है, हम केवल इसी बाह्य तत्त्व के अनुरागी हैं। स्त्रियों का महत्त्व, समाज में उनका स्थान और व्यवहार में उनकी क्या आवश्यकता है—इन बातों का हमें कदाचित् ही ध्यान रहता है। कविवर रामचरित उपाध्याय ने एक स्थान पर स्त्रियों की आवश्यकता और उपयोगिता का कैसा सुन्दर वर्णन किया है—

यदि बादल का रूप तुम्हें सुख-धाम है।
तो क्या, विद्युच्छटा नहीं अभिराम है?
वृक्षों से तुम हरे-भरे होते यथा।
कान्ति-दायिनी तुम्हें लताएँ हैं तथा ॥ १ ॥
देखा! ज्ञान है, भक्ति बिना किस काम का ?
साहस भी है, शक्ति बिना किस काम का ?
बिना प्रकृति के, पुरुष कार्य करता नहीं।
बिना चन्द्रिका, चन्द्र चित्त हरता नहीं ॥ २ ॥

तुम्हें पत्र से अधिक मञ्जरी है प्रिया।
पूर्ण न हो सङ्कल्प, न होवे जो क्रिया ॥
शोणभद्र से न्यून सुरधुनी है नहीं।
या वैभव से न्यून हुई, विद्या कहीं ? ॥ ३ ॥

शुक्ति न हो यदि देश! मिले मोती कहाँ ?
कार्य वहीं है सिद्ध, युक्ति होती जहाँ ॥
मुक्ति न हो तो ज्ञान छाँटना व्यर्थ है।
निर्णायत्री वेद मानना व्यर्थ है ॥ ४ ॥

कैसा सुन्दर सम्बन्ध है! कोई भी समझदार व्यक्ति, जिसे सामाजिक हिताहित का थोड़ा भी ज्ञान है, स्त्रियों के समाज में समान स्थान की अवहेलना नहीं कर सकता। क्या समाज और क्या देश— स्त्रियों की आवश्यकता, उनका बल और सहयोग निरन्तर उपयोगी तथा अनिवार्य है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि जहाँ देश की माताओं तथा भगिनियों ने अपने प्राणों की परवाह न करते हुए पुरुषों का अन्त तक साथ दिया है, वहाँ के पुरुषों ने शताब्दियों का कार्य केवल कुछ ही समय में कर डाला है। दूर जाने की क्या आवश्यकता है, राजस्थान का ही इतिहास यदि उठाकर देखा जाय तो मालूम होगा कि वीर राजस्थानी भाइयों के लाख प्रयत्न करने पर भी आज उसे वह गौरव न प्राप्त होता, यदि वहाँ की महिलाओं ने उनका साथ न दिया होता। वहाँ की शूर माताओं ने, सच्ची भगिनियों ने और वीर पत्नियों ने जब तक शरीर में रक्त का एक बूँद भी शेष रहा, तब तक अपने पुत्र, बन्धु तथा पति का

साथ दिया। समय आने पर वे जीती जल गईं, किन्तु ग़ैरों के सम्मुख सिर नहीं झुकाया। किसी सज्जन का यह कथन बिल्कुल ठीक है कि समाज तथा देश की उन्नति की जड़ देश का स्त्री-वर्ग ही है। स्त्रियाँ ही पुरुषों को जन्म देती हैं और वे ही उनमें कायरता अथवा वीरता के बीज बोती हैं। यह कहना कदापि अत्युक्तिपूर्ण न होगा कि समाज तथा देश के अभ्युत्थान में स्त्री-वर्ग की सहायता अत्यन्त आवश्यक है।

स्वामी सत्यदेव जी ने एक बार भाषण देते हुए कहा था कि स्त्रियों को सहायता के बिना राष्ट्र का उद्धार होना असम्भव है। इस कथन में ज़रा भी अत्युक्ति नहीं है। ज़रा विचार पूर्वक देखने से ही इस बात की यथार्थता प्रतीत हो जायगी। इसी भाव को प्रकट करने के लिए अङ्गरेज़ी में एक कहावत है—"The hand that rocks the cradle rules the world" अर्थात् जिसके हाथ में पालने की डोरी है वही संसार का उद्धार करने वाली है—वही संसार पर शासन करने वाली है। हमारे शास्त्रों में भी स्त्रियों के महत्त्व का बहुत कुछ वर्णन किया गया है। स्त्रीत्व तथा मातृत्व का भी बहुत सम्मान प्रदर्शित किया गया है। यह वर्णन केवल कवि की कोरी कल्पना हो, यह बात नहीं है। अब इस बात के मानने में तनिक भी सन्देह नहीं रह गया है कि स्त्री सुराष्ट्र-निर्माता और राष्ट्र-जननी है। वर्णन का प्रसङ्ग आ गया है, अतः ज़रा विस्तारपूर्वक इस विषय की विवेचना करना उपयुक्त प्रतीत होता है। हमारी इच्छा केवल यही दिखाने की है कि स्त्रियों का वास्तविक

महत्त्व कितना है और देश या समाज में उनका कौन सा स्थान है।
सभी स्त्रियों के सौन्दर्य, प्यार और स्नेह के प्रेमी हैं; सभी स्त्रियों की भावुकता के आशिक़ हैं; सब जानते हैं कि स्त्रियों में कौन-कौन से सद्गुण हैं; सब लोग जानते हैं कि स्त्रियों से हमारे समाज का व्यापार किस परिमाण में चल रहा है, तथापि जो बातें कवि की कल्पना की हैं उनसे हमारा यहाँ सम्बन्ध नहीं। हम काव्य के आदर्श को न मान कर वस्तु-स्थिति पर ही विचार करना चाहते हैं।

'स्त्री सुराष्ट्र-निर्माता राष्ट्र-जननी है' इस कथन पर यदि हम तात्त्विक दृष्टि से विचार करें, वर्तमान परिस्थिति को भूल कर केवल तत्त्व-ज्ञान की दृष्टि से देखें तो निस्सन्देह यह कथन यथार्थ प्रतीत होता है। किन्तु, जब तत्त्व-ज्ञान के मण्डल से निकल कर हम नीचे की ओर दृष्टि डालते हैं तो क्या दीख पड़ता है? कहाँ तो इस वाक्य के अन्तर्गत उच्चतम तत्त्व और कहाँ संसार की वर्तमान परिस्थिति! राष्ट्र-जननी का सम्मान प्राप्त करने वाली स्त्री-जाति की यह कैसी दीनावस्था है! वह स्वयँ ही अपनी स्थिति सुधार कर ऊँचे तक पहुँचने के योग्य नहीं और न किसी अन्य का उसकी ओर ध्यान ही है। वास्तव में स्त्री का जो 'अबला' नाम कहा गया है उसी को सार्थक करने की ही उसकी प्रवृत्ति रहती है। ऐसी विकट परिस्थिति में जब हम उपर्युक्त आदर्श वाक्य की ओर ध्यान देते हैं तो उक्त कथन की सत्यता मन में धारण करने के विरुद्ध हम यही समझते हैं कि इस समय हमारी जो कुछ स्थिति

है वही सच्ची योग्यता की सूचिका है। जब हम राष्ट्र शब्द की व्यापकता पर विचार करते हैं और स्त्रियों के साथ उसका यह उच्च सम्बन्ध दिखलाते हैं तो हम एक बड़े दायित्व को सम्मुख रखते हैं। राष्ट्र-निर्माण करने वाली प्रजा को जन्म देकर राष्ट्रीयता के उपयुक्त बनाने के लिए जितने साधनों और प्रयोजनों की आवश्यकता पड़ती है, स्त्रियों को वह सब करना पड़ता है। इस कार्य की कठिनता का अनुमान केवल कल्पना से या दो-चार वाक्य लिख देने ही से नहीं हो जाता। क्षणिक कल्पना द्वारा कर्त्तव्य की ओर ध्यान देने पर यह तत्काल प्रकट हो जायगा कि स्त्रियों का स्थान कैसा उच्च एवँ दायित्वपूर्ण है। जिस समय पुरुष पहिली बार गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता है तो वह शपथ लेता है कि 'धर्मे च अर्थे च कामे च नाति चरामि'; सप्तपदी के समय भी वह शपथ लेता है कि वह अपने कुटुम्ब का पोषण करेगा, नीति और धर्म के अनुकूल चलेगा; यह सब किस अर्थ के द्योतक हैं? वस्तुतः ये कर्त्तव्य की मर्यादा निश्चित करते हैं। बिना गृहिणी के गृह कहाँ और तब गृहस्थाश्रम की कल्पना ही कैसी? जब गृह का निर्माण हो गया, गृहस्थी का प्रादुर्भाव हो गया तो प्रथम ही स्त्रियों के कर्त्तव्य की चिन्ता हुई और बड़े विचार और निर्णय के पश्चात् स्त्रियों के अधिकारों का निश्चय किया गया। उस समय यह बतलाया गया कि पुरुष की पत्नी पत्नी ही नहीं, वरन् धर्म-पत्नी, सहधर्मिणी और गृह-स्वामिनी भी है। किन्तु, केवल बातों में ही पत्नी को इतना ऊँचा दर्जा देना ठीक नहीं। दोनों के व्यवहार में सहकारिता और साम्यता की झलक होनी

चाहिए। इसी साम्यता पर गृहस्थी का निर्माण हुआ है। तात्पर्य यह कि हमारे जीवन का प्रत्येक कार्य-क्रम स्त्रियों के सहयोग से स्थिर है। उनकी शक्ति, प्रतिभा, गुण और विद्वत्ता तथा अनुभव से हमारे कार्यों में बहुत कुछ सुविधा व सहायता प्राप्त होती है। आगे चलकर हम इस विषय का विस्तारपूर्वक विवेचन करेंगे। यहाँ तो इतना ही जान लेना यथेष्ट है कि स्त्रियों और समाज का अन्तर्भूत सम्बन्ध है।
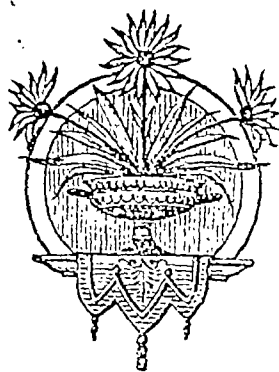
स्त्रियों के स्वत्व

इस सम्बन्ध में लिखते हुए हम इस बात की चेष्टा नहीं करना चाहते और न हम इसे आवश्यक ही समझते हैं कि स्त्रियों की स्वाधीनता के विषय में कुछ चर्चा हो। हम इस विवाद-ग्रस्त विषय से दूर रह कर केवल इस बात पर जोर देना चाहते हैं कि जिस प्रकार पुरुषों के कुछ वास्तविक प्राकृतिक अधिकार हैं, उसी प्रकार स्त्रियों को भी उनमें से कुछ अधिकार प्राप्त हैं। स्वाधीनता और पराधीनता अधिकारों के परिणाम मात्र हैं। हमें जैसे अधिकार मिलेंगे, हम उन्हीं के अनुकूल आचरण करेंगे। स्वत्वों की स्वीकृति आचरण की विधायक है। जैसे हमारे अधिकार होंगे, हमारी वास्तविक शक्ति जितनी होगी, हमारी प्रवृत्ति भी वैसी ही और उतनी ही होगी। जो लोग स्त्रियों की स्वाधीनता और पराधीनता के प्रश्न को लेकर विवाद करना चाहते हैं, उनसे हमारा यही कहना है कि आप भूल रहे हैं। जब साधन और सामग्री प्राप्त हो जाँय तब कार्य की प्रणाली औ तदनुकूल परिणाम की भी कल्पना की जाय। किन्तु, जहाँ को साधन ही नहीं, जहाँ वास्तविकता का अस्तित्व ही नहीं, व अधिकारों के झूठे फेर में पड़कर समय नष्ट करना कहाँ

बुद्धिमानी है। हम आपसे पूछना चाहते हैं कि क्या आपने स्त्रियों के सभी मानवी स्वत्व स्वीकार कर लिए हैं? यदि नहीं तो थोथे अधिकारों के लिए लड़ने से क्या लाभ? यह स्वाधीनता तो कृत्रिम स्वाधीनता है। यह तो वही दशा हुई कि घर में तो भूखों मरें और वाहर अमीराना ठाट से घूमते फिरें। क्या इसमें कभी सच्चे सुख की प्राप्ति हो सकती है? दुख तो इसी बात का है कि हम स्त्रियों के स्वाभाविक स्वत्वों को ही स्वीकार नहीं करते। जिस प्रकार आप विवेक-शक्ति के अनुसार चलने का अधिकार माँगते हैं उसी प्रकार स्त्रियों को भी स्वाभाविक अधिकार की अपेक्षा है। वे भी आत्म-सम्मान और आत्म-हित की अभिलाषिणी हैं। पुरुष स्त्रियों के सहयोग से ही कुछ कर सकते हैं, उनसे अलग होकर नहीं। पुरुषों का कर्त्तव्य है कि वे स्त्रियों की उचित माँग को पूरी करें—नहीं, नहीं, उन्हें अपने भाग्य की सच्ची अधिकारिणी बना दें। न्याय और सत्य समान और निष्पक्ष हैं। जिस न्याय से पुरुष आत्म-गौरव और आत्म-कल्याण के इच्छुक हैं उसी न्याय से स्त्रियाँ भी अपनी मर्यादा और धर्म की रक्षा के लिए तत्पर हैं। जो सत्य यह वतलाता है कि पुरुष-जाति संसार में श्रेष्ठ होकर रहे, समस्त प्राकृतिक अधिकारों का समुचित उपभोग करे, वह मानवीय अधिकारों की सत्यता यह भी वतलाती है कि स्त्रियाँ भी पद-मर्यादा से रहें, वे भी अपनी शक्तियों का विकास करें और अपने वास्तविक अधिकारों से वञ्चित न रहें। अवश्य ही समय के फेर में पड़कर पुरुष-जाति स्त्रियों की सत्ता का ध्यान भूल रही है। तुम भले ही स्वार्थ और मद के व॰

उसे भूल जाओ किन्तु स्त्रियाँ कोई नवीनता नहीं चाहतीं। जिस प्रकार तुम स्वराज्य और स्वाधीनता के लिए सरकार से विनय, विवाद और प्रतिरोध करते हो, उसी प्रकार तुम्हारी स्वेच्छाचारिता की सत्ता से मुक्ति पाने के लिए स्त्रियाँ भी विवेकपूर्ण आन्दोलन करती हैं। यही नहीं, किन्हीं-किन्हीं के मत से तो पुरुषों के साथ स्त्रियों को भी देश की सत्ता और स्वाधीनता के लिए लड़ना चाहिए। असलियत तो यह है कि—

जिनको हक़ देने में अपने नारियों को आर है।
माँगना ग़ैरों से कुछ उनके लिए बेकार है॥

फिर भी यहाँ यह प्रश्न करने की आवश्यकता नहीं है कि भारतीय स्त्रियों को मताधिकार देना उचित है या नहीं? कई सज्जनों का मत है कि स्त्रियों की स्वतन्त्रता की जो मर्यादा निश्चित की गई है, उससे लाभ ही हुआ है, हानि नहीं। अवश्य ही मर्यादा के अन्तर्गत स्वाधीनता ही प्राप्त करने योग्य वस्तु है और ऐसा ही प्रायः पाया जाता है। किसी भी स्वाधीन देश, समाज या व्यक्ति का उदाहरण आप ले लीजिए—आप प्रत्येक अवस्था में उसे मर्यादा के अन्तर्गत ही पाएँगे। जहाँ मर्यादा के बाहर स्वाधीनता का दर्शन होता है वहाँ शान्ति और समता स्थिर नहीं रह सकती वहाँ निरङ्कुशता और स्वेच्छाचारिता का साम्राज्य हो जाता है। हम कदापि ऐसी स्वतन्त्रता के प्रेमी नहीं रहे। जहाँ स्वाधीनता का प्रश्न आता है, वहाँ मताधिकार का प्रश्न झट से सामने आ जाता है। मताधिकार देना उचित है या नहीं, यह कोई

प्रश्न नहीं है। हमें तो यह देखना है कि जब सती, और विधवा-विवाह आदि सामाजिक बातों में सरकार ने हस्तक्षेप किया है और भावी शासन-नीति में सामाजिक विषयों पर और भी क़ानून बनाए जाने की सम्भावना है, तब क्या यह अनुचित होगा कि इन बातों में स्त्रियों से परामर्श ले लिया जाय ? भारतवर्ष का सच्चा इतिहास इस बात का साक्षी है कि भारतवासी सदैव से स्त्रियों का सम्मान करने के पक्षपाती रहे हैं ; किन्तु, न जाने क्यों, उनकी प्रवृत्ति इस ओर बिगड़ रही है। भारतीय स्त्रियों का राज्य-शासन भी इतिहासों के लिए गुप्त बात नहीं है। स्त्रियाँ अपना और अपने देश का भला समझती हैं। उनकी जातीय आवश्यकताएँ बहुत कुछ हैं। उनके दुख और मानसिक विचारों को सिवा उनके और कौन प्रकट कर सकता है ? राजनीति का प्रभाव और क़ानून का बन्धन स्त्री और पुरुष दोनों के लिए समान है। अतः यह परमावश्यक है कि स्त्रियों के इस स्वत्व को स्वीकार किया जाय।

व्यक्तिगत, गार्हस्थ्य; शिक्षा, आर्थिक, एवँ राजनैतिक आदि भेदों से स्त्रियों के विविध स्वत्व और अधिकार माने जा सकते हैं। यहाँ उन सबको लिखकर विवेचना करने की कोई आवश्यकता नहीं। स्त्रियों के ये अधिकार समय की प्रगति और परिस्थिति के अनुकूल होने चाहिएँ। आवश्यकतानुसार उनमें उचित परिवर्तन भी करना चाहिए। स्त्रियों की यह माँग कुछ नई नहीं है। आप इसे असभ्यता, नूतनता और पश्चिम का अनुकरण कह कर टाल देते हैं, पर अधिकारों का निर्णय भी क्या कोई हँसी-खेल है ?

उसे भूल जाओ किन्तु स्त्रियाँ कोई नवीनता नहीं चाहतीं। जिस प्रकार तुम स्वराज्य और स्वाधीनता के लिए सरकार से विनय, विवाद और प्रतिरोध करते हो, उसी प्रकार तुम्हारी स्वेच्छाचारिता की सत्ता से मुक्ति पाने के लिए स्त्रियाँ भी विवेकपूर्ण आन्दोलन करती हैं। यही नहीं, किन्हीं-किन्हीं के मत से तो पुरुषों के साथ स्त्रियों को भी देश की सत्ता और स्वाधीनता के लिए लड़ना चाहिए। असलियत तो यह है कि—

जिनको हक़ देने में अपने नारियों को आर है।
माँगना ग़ैरों से कुछ उनके लिए बेकार है॥

फिर भी यहाँ यह प्रश्न करने की आवश्यकता नहीं है कि भारतीय स्त्रियों को मताधिकार देना उचित है या नहीं? कई सज्जनों का मत है कि स्त्रियों की स्वतन्त्रता की जो मर्यादा निश्चित की गई है, उससे लाभ ही हुआ है, हानि नहीं। अवश्य ही मर्यादा के अन्तर्गत स्वाधीनता ही प्राप्त करने योग्य वस्तु है और ऐसा ही प्रायः पाया जाता है। किसी भी स्वाधीन देश, समाज या व्यक्ति का उदाहरण आप ले लीजिए—आप प्रत्येक अवस्था में उसे मर्यादा के अन्तर्गत ही पाएँगे। जहाँ मर्यादा के बाहर स्वाधीनता का दर्शन होता है वहाँ शान्ति और समता स्थिर नहीं रह सकती वहाँ निरङ्कुशता और स्वेच्छाचारिता का साम्राज्य हो जाता है। हम कदापि ऐसी स्वतन्त्रता के प्रेमी नहीं रहे। जहाँ स्वाधीनता का प्रश्न आता है, वहाँ मताधिकार का प्रश्न झट से सामने आ जाता है। मताधिकार देना उचित है या नहीं, यह कोई

प्रश्न नहीं है। हमें तो यह देखना है कि जब सती, और विधवा-विवाह आदि सामाजिक बातों में सरकार ने हस्तक्षेप किया है और भावी शासन-नीति में सामाजिक विषयों पर और भी क़ानून बनाए जाने की सम्भावना है, तब क्या यह अनुचित होगा कि इन बातों में स्त्रियों से परामर्श ले लिया जाय ? भारतवर्ष का सच्चा इतिहास इस बात का साक्षी है कि भारतवासी सदैव से स्त्रियों का सम्मान करने के पक्षपाती रहे हैं ; किन्तु, न जाने क्यों, उनकी प्रवृत्ति इस ओर बिगड़ रही है। भारतीय स्त्रियों का राज्य-शासन भी इतिहासों के लिए गुप्त बात नहीं है। स्त्रियाँ अपना और अपने देश का भला समझती हैं। उनकी जातीय आवश्यकताएँ बहुत कुछ हैं। उनके दुख और मानसिक विचारों को सिवा उनके और कौन प्रकट कर सकता है ? राजनीति का प्रभाव और क़ानून का बन्धन स्त्री और पुरुष दोनों के लिए समान है। अतः यह परमावश्यक है कि स्त्रियों के इस स्वत्व को स्वीकार किया जाय।

व्यक्तिगत, गार्हस्थ्य; शिक्षा, आर्थिक, एवँ राजनैतिक आदि भेदों से स्त्रियों के विविध स्वत्व और अधिकार माने जा सकते हैं। यहाँ उन सबको लिखकर विवेचना करने की कोई आवश्यकता नहीं। स्त्रियों के ये अधिकार समय की प्रगति और परिस्थिति के अनुकूल होने चाहिएँ। आवश्यकतानुसार उनमें उचित परिवर्तन भी करना चाहिए। स्त्रियों की यह माँग कुछ नई नहीं है। आप इसे असभ्यता, नूतनता और पश्चिम का अनुकरण कह कर टाल देते हैं, पर अधिकारों का निर्णय भी क्या कोई हँसी-खेल है ?

अधिकारों का परिणाम भी क्या कोई मिट्टी का खिलौना बनाना है ? क्या आप नहीं जानते कि स्त्रियों के स्वत्वों की घोर अवहेलना कर आप राष्ट्र का कितना अहित कर रहे हैं ? क्या आप फिर यह भूल जाते हैं कि यदि स्त्री वास्तव में सुराष्ट्र निर्माण करने वाली राष्ट्रीय जननी है तो उसके अधिकार भी वैसे ही होने चाहिएँ। आप केवल बातों के तर्क से उन्हें सन्तुष्ट नहीं कर सकते। थोथी बातों से उनके अधिकारों का निर्णय नहीं हो सकता। स्त्रियाँ तो देश के विकास में आदर्शभूत होने के लिए शरीर, मन और आत्मा के विकास और अभ्युत्थान के लिए केवल अपना स्वत्व चाहती हैं। वे चाहती हैं कि वे उत्तम पत्नी—सच्ची स्त्री—और वीरमाता बनकर देश के कल्याण में सहायक हों। वे अपने पूर्व स्वत्व को पुनः प्राप्त करना चाहती हैं। स्त्रियों के रूप में, सहचारिणी के रूप में और माता के रूप में उनके जो स्वत्व हैं वे उन्हीं को चाहती हैं। यह नहीं कि उन स्वत्वों को प्राप्त कर वे पुरुषों की भाँति देश के प्रति कृतघ्न सिद्ध होंगी। नहीं, वे तो स्वत्व प्राप्त कर उनके सदुपयोग द्वारा पुरुष-जाति की उन्नति और अभ्युत्थान में पूर्ण सहायता करेंगी। क्योंकि चरित्र का सच्चा विकास इसी में होता है और यही शिक्षा का मूल तत्व है। देश की सारी आशा इसी पर निर्भर है। स्वराज्य प्राप्त कर लेने पर तुम क्या करोगे ? इस समय तो तुम उसके लिए प्रत्येक कष्ट और आयास सहन करने के लिए तैयार हो, अभी तुम प्रत्येक अन्याय और अत्याचार के अन्दर होकर निकलना चाहते हो, अभी तो तुम दुख और क्लेश की अग्नि

में तपना चाहते हो; किन्तु क्या स्त्रियों को साथ लिए विना तुम्हारा स्वराज्य 'सच्चा स्वराज्य' कहला सकेगा ? क्या स्त्रियों की उपेक्षा और अवहेलना से तुम वास्तविक सुख और शान्ति का अनुभव कर सकोगे ? क्या सम्भव है कि स्त्रियों की सहायता विना तुम्हारा सारा कार्य नियमित और मर्यादापूर्वक चलता रहेगा ? क्या उसमें बाधा नहीं पड़ेगी ? सामाजिक कठिनाइयाँ क्या शासन पर प्रभाव न डालेंगी ? यदि स्त्रियों के सहयोग की तुम्हें आशा है तो क्यों नहीं उनकी अवस्था का सुधार करते ? समय पड़ने पर तो तुम उन्हें सिवा मिट्टी के खिलौने के कुछ समझते ही नहीं; तब साधारण-रूप से तुम्हारी दृष्टि में स्त्रियों का मूल्य क्या होगा ?

स्त्रियों के प्रति दुर्व्यवहार तथा उन्हें पराधीन रखने की प्रवृत्ति के सम्बन्ध में वैदिक मेगज़ीन के सुयोग्य सम्पादक ने एक स्थान पर लिखा था—

Why is the lawyer not regarded economical dependent even though he gets princely wages for interpreting or mis-interpreting the law or helping or hindering the administration of justice. Why is a doctor not in a state of economic dependence even though he is supported by the community for curing physical ill. Carpenters blacksmiths, painters etc. all in receipt of fair wages are economically independent. Why should women, then, who render the supremest conceivable service to humanity feel that she is treated as dependent? Are the practice of law, the writing out of prescriptions, the

printing of pictures and the manufacture of wooden and iron furniture greater or more servicable occupations than the moulding or shaping of the stuff which can develop into sages, *rishis* and geniuses.

अर्थात् क्या कारण है कि वह वकील, जिसको क़ानून की व्याख्या या दुर्व्याख्या करने अथवा न्याय कराने में सहायता या बाधा डालने के बदले में राजसी मेहनताना मिलता है, आर्थिकरूप से पराधीन नहीं माना जाता ; इसी प्रकार एक डॉक्टर को आर्थिक दशा से क्यों नहीं पराधीन क़रार दिया जाता है, अगरचे उसको शारीरिक रोग की निवृत्ति करने के बदले में समाज की ओर से सहायता मिलती है, ऐसे ही बढ़ई, लुहार और चित्रकार आदि, जिनको अच्छा वेतन मिलता है, आर्थिकरूप से स्वतन्त्र समझे जाते हैं; तो फिर स्त्री को जो मानव-ज़ाति के लिए सबसे उच्च सेवा का भार अपने ऊपर उठाती है, यह क्यों अनुभव करना चाहिए कि उसके साथ पराधीनता का बर्ताव किया जाता है। क्या किसी भी अवस्था में वकालत का पेशा, नुस्ख़ों का लिखना, चित्रों का खींचना व काठ और लोहे की वस्तुएँ बनाना उस बालक को साँचे में ढालने से अधिक उपयोगी व्यवसाय कहे जा सकते हैं, जिसकी आगामी जीवन में ऋषि या अन्य प्रतिभाशाली मनुष्य बनने की सम्भावना है। क्या कोई मनुष्य इस प्रश्न का उत्तर 'हाँ' में दे सकता है ?

विश्वास रखो, इन बातों को लिखकर तथा स्त्रियों के स्वत्वों का समर्थन कर हम कदापि यह नहीं दिखलाना चाहते कि स्त्रियाँ

अपना स्त्रीत्व खोदें अथवा वे पुरुषों की बराबरी करने लगें। यह तो मानी हुई बात है कि स्त्री और पुरुष की शारीरिक रचना के साथ ही मानसिक रचना में भी बहुत कुछ भिन्नता है। इस भिन्नता का ही परिणाम है कि स्त्रियों का कार्य-क्षेत्र पुरुषों से भिन्न हो गया है व इसीलिए स्त्रियों के शिक्षण तथा अधिकार में भी अन्तर पड़ गया है। किन्तु, इस भिन्नता का यह अर्थ नहीं है कि स्त्रियों के स्वत्व पुरुषों के स्वत्वों से कहीं तुच्छ और क्षुद्र हैं; अथवा उनका महत्व और परिणाम व्यापक या उपयोगी नहीं हैं—यह तो कदापि नहीं है। प्रवृत्ति और साधन भिन्न होने पर भी, शारीरिक और मानसिक रचना भिन्न होने पर भी, स्त्रियाँ पुरुषों से कम नहीं हैं। वे देश और समाज के लिए उतना ही और उससे भी कहीं अधिक त्याग कर सकती हैं, जितना पुरुष। वे भी लाभालाभ और हिताहित के प्रश्न पर उसी गम्भीरता और दूरदर्शिता से विचार कर सकती हैं, जितना कि पुरुष। साधन भिन्न होने पर भी उद्देश्य एक है। श्रेणियाँ भिन्न होने पर भी योग्यता एक ही है। यह तो हमारी स्वार्थमयी एकपक्षीय दृष्टि है जिसके फलस्वरूप स्त्रियों की कोई भी जाग्रति हमें विद्रोह जान पड़ती है। जो लोग स्त्रियों के आन्दोलन को सामाजिक विद्रोह समझते हैं वे परिस्थिति को समझने में बड़ी भूल करते हैं। क्या यह कभी भी सम्भव हो सकता है कि एक ही समाज का अङ्ग हो कर स्त्रियाँ अपनी जाग्रति से उसे नष्ट कर दें? क्या उसके नाश से स्त्रियों का नाश न होगा?

अब कुछ क्षण के लिए आप न्यायपूर्वक विचार करें कि स्त्रियों के स्वत्व कहाँ तक माननीय हैं। यद्यपि अविद्या के आवरण में पड़ कर आपकी दृष्टि सङ्कुचित है और आपके विचारों में उदारता का बहुत कुछ अभाव है तथापि यह तो निश्चित् है कि आप जिसे अर्द्धाङ्गिनी कहते हैं, आप जिसे अपनी कन्या कहते हैं, आप जिसे अपनी भगिनी और माता कहते हैं, उसके प्रति आपके हृदय में कुछ प्रेम है, सम्मान है और शुभाकांक्षा है। आप इतना तो अवश्य जानते हैं कि माता की आज्ञा मानना हमारा कर्तव्य है, आप यह भी जानते हैं कि भगिनी से स्नेह-भाव बनाए रखना और श्रद्धानुसार उसकी सेवा और सहायता करना हमारा कर्तव्य है। आपके सामाजिक सम्बन्ध किस अस्तित्व पर स्थिर हैं? उनकी नींव क्या है? यह सम्बन्ध-निर्णय किस अधिकार पर है? प्रथमतः समाज की उत्पत्ति ही नियमानुकूल हुई है; व्यक्तियों और व्यक्ति-समूहों की आवश्यकता के अनुसार ही सामाजिक नियमों की रचना हुई है; उस पर भी व्यक्तिगत, कौटुम्बिक, जातीय एवँ सामाजिक विविध सम्बन्धों ने तो अधिकार-निर्णय पर बहुत कुछ प्रकाश डाला है। जब हम किसी को 'माँ' कह कर पुकारते हैं तो हमारे हृदय में तत्क्षण उन्हीं भावों का उदय होता है जो एक 'माँ' के लिए होने चाहिएँ। वही श्रद्धा, प्रेम और अनुराग, सरलता और सौम्यता मुख पर आजाती है और उस पवित्रता के आगे समस्त दोष दूर हो जाते हैं। हम तत्क्षण माता शब्द के महत्व और उसके प्रति अपने कर्तव्य को समझ जाते हैं। कुपूतों की बात

जाने दीजिए। ख़राब से ख़राब लड़का भी 'माँ' शब्द का सेवक है।

इसी प्रकार मातृत्व तथा स्त्रीत्व आदि शब्दों की उत्पत्ति के साथ ही उनके स्वत्व निर्णय भी कर दिये गए हैं। या यों कहिए कि अधिकार की विवेचना पहले कर दी गई और पश्चात् उसपर नियुक्ति की गई है। अधिकारों की स्थिति पर ही अधिकारों की योजना होती है। किसी को जज बनाने के पहले जज-पद की आवश्यकता पड़ती है। इसी प्रकार जब हमने स्त्री शब्द का निर्माण किया या जिस समय प्रकृत व्यवहारों और नियमों द्वारा स्त्री-जाति का उदय हुआ उस समय उसके स्वत्वों की रचना पहले ही कर दी गई। अब यदि कालान्तर में स्त्रियाँ अपने उन्हीं स्वत्वों को फिर चाहती हैं तो इसमें कोई नवीनता नहीं पाई जाती। विशेषता केवल इतनी ही है कि उनके कारण पुरुषों का एक सत्तात्मक शासन नष्ट हुआ जाता है। सभ्यता के युग में रहकर, सुशासन का भोग कर और एक ऐसे शासन के अन्तर्गत रह कर, जिसका उद्देश्य (चाहे वह सच्चा हो या बाह्य) संसार से गुलामी को हटाना है, हम स्त्री-जाति का उत्थान नहीं चाहते। हम उनका प्रत्येक जाग्रति-कार्य बड़े क्रोध की दृष्टि से देखते हैं और उसके साथ ही हम शास्त्रों में से उदाहरण ढूँढ़ कर और कुछ कृत्रिम और अमान्य प्रमाणों को सामने रखकर स्त्रियों की कठोर पराधीनता, उनकी पूर्ण दासता और स्वत्व-विहीनता का प्रबल समर्थन करते हैं। और इस प्रकार उन्हें कठपुतली के समान रखकर, उन्हें मानवी

स्वत्वों से वञ्चित रखकर तथा वास्तविक सुख और शान्ति से हटाकर हम कैसा अच्छा न्याय करते हैं, यही विचारणीय है। हम तो यहाँ तक सङ्कुचित वृत्ति के हो गए हैं कि स्त्रियों के अधिकार के नाम से ही हम पाश्चात्य सभ्यता का फल वताने लगते हैं। क्या यह सयुक्तिक है?

आज स्त्री-समाज की इस अवनति का एक प्रधान कारण यह भी है कि प्रथमतः स्त्रियाँ ही अपने सच्चे स्वत्वों को नहीं समझतीं, समझकर भी उन्हें उचित रूप से नहीं माँग सकतीं, तिस पर भी पुरुष जाति ने अपनी सङ्कुचित भावना से स्त्री-समाज का भयङ्कर नाश किया है। स्वत्व-हीन शक्ति निरर्थक है। उसका क्या उपयोग? पुरुष यदि विद्वान है, शिक्षित है और स्वतन्त्र अधिकारों का उपयोग करता है तो स्त्री ठीक इसके विपरीत है। न पुरुष को स्त्री के कर्तव्य का ध्यान रहता है और न स्त्रियों को पुरुषों के प्रति कर्तव्य का ज्ञान रहता है। निरन्तर कलह और सामाजिक मतभेद के कारण न तो पुरुष-जाति ही सच्ची शान्ति पा सकती है और न स्त्री-जाति को ही वास्तविक आनन्द प्राप्त हो सकता है। दोनों ही एक दूसरे को भूले हुए हैं। पुरुषों ने तो स्त्रियों को जान-बूझकर भुलाने की चेष्टा की है। उन्होंने इस बात का प्रयत्न किया है कि किसी न किसी प्रकार वे स्त्रियों के दायित्व से दूर रहें।

इसी स्वत्व के झगड़े में पड़कर स्त्री-जाति घोर सङ्कट में है। कौन जानता है कि क्या परिणाम होगा; पुरुषों के अत्याचारों ने

स्त्रियों पर जो कुछ परिणाम डाला है वह तो आगे चलकर प्रकट होगा। हाँ, यह तो ठीक है कि स्वत्व-विहीन होने के कारण स्त्री-जाति सबला होकर भी अबला है, सिंहिनी हो कर भी भयभीत है। पुरुषों के पञ्जे में पड़कर स्त्री-जाति के अधिकार बहुत कुछ नष्ट-भ्रष्ट हो चुके हैं। न तो व्यक्तिगत, सामाजिक, और आर्थिक अधिकार स्त्रियों को प्राप्त हैं। और न राजनीति ही के अधिकार इन अभागिनी स्त्रियों के लिए हैं। ये जीवित मूर्तियाँ केवल देखने के लिए हैं। स्वत्व-हीनता ने स्त्रियों की भावुकता को भी नष्ट कर दिया है!

स्त्रियों की अधोगति

चीनता हमारे लिए कल्पना का विषय हो गई है। उसका मधुर स्मरण हमारे मनोरञ्जन का साधन हो गया है। हम प्राचीनता के सुख-स्वप्न में इस प्रकार मुग्ध बने रहते है कि उसे छोड़कर हमें कुछ और भाता ही नहीं। आज भी, एक हमही क्या, हमारे सहयोगी सहस्रों लेखक तथा अन्य जन साधारण प्राचीन काल की स्त्रियों के उदाहरण दे देकर जनता का ध्यान आकर्षित करते हैं। अवश्य ही आदर्श पुरुषों का जीवन हमारे लाभ के लिए है, उनके चरित्रों का मनन हमें सहायक हो सकता है; किन्तु केवल थोड़े से उदाहरणों द्वारा हो आदर्श की उच्चता सामने रख देने से ही तो सार्वजनिक जीवन की परिपूर्णता सिद्ध नहीं हो जाती। सीता, सावित्री, अनुसूया, तारा, द्रौपदी, गान्धारी तथा राजस्थानीय वीर महिलागणों के नाम हमारे सम्मुख आते हैं। अवश्य ही किसी सिद्धान्त को समझाने और उसका पूर्ण प्रभाव प्रदर्शित करने में ये उदाहरण आदर्श का काम कर सकते हैं तथापि इससे यह कदापि नहीं माना जा सकता कि आज वैसी स्त्रियों का अभाव है अथवा उन आदर्श महिलाओं

ने देश के सामाजिक जीवन में कोई घोर परिवर्त्तन कर दिया था। यह तो एक सर्वसाधारण प्रवृत्ति है कि किसी आदर्श को अत्युच्च बतला देना। लेखकों, विशेषकर इतिहासकारों का, यह नियम रहा है कि वे इने गिनें उदाहरणों द्वारा और वह भी उच्च कुल या राजवंशीय उदाहरणों द्वारा जनता के सम्मुख आदर्श चरित्र को चित्रति करते हैं। अभी दूर क्यों जाते हैं। विगत जलियानवाला वाग़ के काण्ड में क्या केवल मदन का ही वलि-दान हुआ था। उसके जैसे और भी अनेक माताओं के लाल थे; किन्तु साहित्य में केवल मदन ही आदर्श हो रहा है। हम इसे बुरा नहीं बतलाते। हमारा सङ्केत तो केवल प्रवृत्ति की ओर है। हम यह दिखलाना चाहते हैं कि केवल थोड़े से आदर्श उदाहरण सामाजिक जीवन की सत्यता को सिद्ध नहीं कर सकते। रामायण काल में जहाँ सीता जैसी आदर्श सतियों का चित्र अङ्कित किया जाता है वहीं कैकेयी जैसी अनेक दुष्टाओं का भी वर्णन पाया जाता है। किन्तु, केवल थोड़े से आदमियों के भले या बुरे होने से सामाजिक जीवन के परिवर्त्तन पर क्या असर पड़ता है, यही विचारणीय है। इसी से जव हम प्राचीन काल की जातियों के उदाहरणं द्वारा स्त्रियों का गौरव समझाने का प्रयत्न करते हैं तो हम तत्कालीन समाज की सच्ची अवस्था का जिक्र तक नहीं करते। सीता आदर्श सती थीं, तो इससे क्या ? तत्कालीन समाज में स्त्रियों का क्या स्थान था और उनके साथ कैसा व्यवहार किया जाता था, उनका जीवन किस प्रकार व्यतीत

होता था, इस बात का भी कहीं दिग्दर्शन कराया जाता है ? यहाँ आदर्श की बात छोड़ देनी चाहिए और सच्ची स्थिति का पता लगाना चाहिए। हमारा तो विश्वास है कि भारतवर्ष की स्त्रियाँ सदा से ही पुरुषों के अन्यायों का शिकार बन रही हैं। यह तो एक अनुभूत या प्रत्यक्ष बात है कि अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध सदा से आवाज़ उठती आ रही है। चाहे कोई पुरुष हो अथवा स्त्री; जिसमें अन्यायों का प्रतिकार करने की शक्ति है, जिसमें अपनी प्रतिभा द्वारा सत्य को प्रकाशित करने की शक्ति है, वह घोर से घोर अत्याचारों के बीच अपना नाम और काम कर जाता है। इसी से यदि आप के सम्मुख प्राचीन काल के दस-बीस नहीं, पचासों ऐसे उदाहरण रखे जाँय जिनमें स्त्रियों ने अपूर्व सम्मान प्राप्त किया है और स्त्रियों की वीरता और विद्वत्ता का लोहा पुरुषों ने मान लिया है तो उससे हम कदापि यह अर्थ नहीं निकाल सकते कि उस काल की स्त्रियों का ऐसा सम्मान होता था, उस समय की सामाजिक परिस्थिति इतनी सुधरी हुई थी, इत्यादि।

समाज-शास्त्र का अध्ययन करने वाले भली-भाँति जानते हैं कि सामाजिक परिवर्त्तनों की कौनसी प्रगति होती है और उसका देश के वास्तविक अभ्युदय से कितना सम्बन्ध रहता है। कोई भी वस्तु चाहे वह उत्थान के लिए हो या पतन की ओर, उत्तरोत्तर परिवर्त्तन की दिशा में स्थित रहती है। इसी से जब हम स्त्रियों की वर्तमान अधोगति की ओर दृष्टिपात करते हैं तो हम समझ लेते हैं

कि अधोगति का यह क्रम, सुदूर पूर्वकालीन सामाजिक अवस्था से सम्बन्ध रखता है। हमारा इतिहास अभी अपूर्ण है। जो कुछ लिखा भी गया है वह केवल वर्णात्मक बातों से सम्बन्ध रखता है। जहाँ सामाजिक एवँ राजनैतिक परिस्थिति पर प्रकाश भी डाला गया है वहाँ अन्धविश्वास, परम्परागत प्रगति और एक-पक्षीय मत-प्रवलता के सहारे सत्य को दबा दिया गया है। अन्यथा यदि भारतीय इतिहास का अध्ययन बारीकी से किया जाय तो हम कह सकते हैं कि पुरुषों ने प्रारम्भ ही से स्त्री-जाति पर घोर अन्याय और अत्याचार किए हैं। प्रश्न हो सकता है कि यदि ऐसा ही था तो स्त्री-जाति की इतनी प्रशंसा क्यों हुई? भारतीय स्त्रियों का इस भाँति गौरव कहाँ से हुआ? अत्याचारों की आँच में जल कर वे भस्म क्यों न हो गईं? यह प्रश्न यद्यपि ऊपरी ढङ्ग से सत्य प्रतीत होता है तथापि सिद्धान्तों की कसौटी पर कसने से इसकी कोई सत्यता स्थिर नहीं रह जाती। स्त्रियाँ भी मानव-समाज की एक अङ्ग हैं। उनमें भी मानसिक एवँ विचार-शक्ति का अंश है। यदि अत्याचार किए गए तो उनको सहने अथवा उनका प्रतिरोध करने की उनमें शक्ति थी। पश्चिम का विकास-सिद्धान्त तो यह बतलाता है कि इस परिवर्त्तन और अस्तित्व की दौड़ में उसी का जीवन स्थिर रह सकता है जो अपने आप को प्रति देश के अनुकूल बना सकता है। स्त्रियों में शक्ति थी, विचार-शक्ति थी और उनमें ज्ञान और बुद्धि थी। अत्याचारों का होना स्वाभाविक था। मानव-समाज की प्रगति ही ऐसी रही है; किन्तु अत्याचारों का होना इस

बात का समर्थक तो नहीं है कि जिस जाति पर अत्याचार किए जाँय वह समूल ही नष्ट हो जाय।

समाज के एक पक्ष के लोग हमारी बातों का खण्डन करेंगे। वे हमें इतिहास-अनभिज्ञता का दोष भी देंगे और अपने पक्ष-समर्थन में हमें दस-बीस उदाहरणों द्वारा समझायेंगे कि स्त्रियों का प्राचीन काल में ऐसा सम्मान था और पुरुष-जाति उनकी रक्षा के लिये कहाँ तक प्रयत्न करती थी। हम मानते हैं कि राजस्थान के वीरों ने स्त्रियों की रक्षा के लिये घोर प्रयत्न किए और स्त्रियों के सम्मान के लिए अपने प्राण तक दे दिए। किन्तु, यदि आप इतिहास को ही सामने रखते हैं तो देखिए कि स्त्रियों ने स्वयँ अपनी रक्षा के लिए कितना अधिक प्रयत्न किया है। अत्याचार का होना तो इस बात को सिद्ध करता है कि पुरुष-जाति ने स्त्रियों के साथ अन्याय किया किन्तु, स्त्रियों का अपनी रक्षा के लिए सशस्त्र रहना, जीते जी जल जाना, वीरता पूर्वक लड़ना और मरना उनकी शक्ति का सूचक है। अब आप के लिए कोई ऐसा स्थान शेष नहीं रह जाता कि आप यह कह सकें कि स्त्रियों के साथ कभी कोई अन्याय नहीं किया गया। इस सम्बन्ध में एक विदुषी लेखिका ने क्या ही अच्छा लिखा है—

"बस रहने दो! हम बहुत सुन चुके। महाभारत और रामायण की महिमाएँ हमें क्या सुनाते हो! हम मानते हैं कि महाभारत ने पाप-ग्रस्त मानव-जगत् में न्याय और सत्य की नींव अवश्य स्थिर कर दी होगी। पर हम कह तो चुके कि स्त्री मानव-जगत् का अङ्ग ही नहीं। फिर इस न्याय और

सत्य से इसे क्या लाभ हो सकता था? उपमाएँ क्या माँगते हो? स्त्री के केवल एक आनन्दमय सामग्री समझे जाने की उपमा तो स्वयँ महाभारत की नायिका द्रौपदी ही है। श्री भीम, अर्जुन, आदि पाण्डवों ने द्रौपदी को एक मिठाई के दोने के समान बाँट लिया! भीष्म से सच्चरित्र वीर ने अपने भाइयों के विवाह का क्या न्याय-पूर्वक प्रबन्ध किया था? दुष्यन्त से न्यायी राजा ने शकुन्तला के साथ कैसा न्याय किया? यह भी स्मरण रहे कि पाण्डव, भीष्म और दुष्यन्त सभी आदर्श चरित्र हैं। हाँ, हाँ, महाभारत ने सत्य और न्याय की नींव अवश्य डाली होगी, परन्तु इस न्याय और सत्य से अभागिनी स्त्री-जाति का कोई सम्बन्ध न था। हाँ! राम-राज्य की कहानी भी हमने ख़ूब सुनी है। प्रजा-पालन जो कुछ भी हुआ हो परन्तु सीता के लिए तो वह राम-राज्य रावण-राज्य से कठोर-तम निकला। हम इन सुप्रसिद्ध पुरुषों की निन्दा नहीं करते।"

यहाँ तो समाज की प्रगति ही ऐसी रही है। हमारी इच्छा नहीं है कि हम अपने प्राचीन गौरव पर किसी प्रकार का छींटा फेंकें; किन्तु सत्य हमें विवश करता है। वेदों के मन्त्र और विवाह की प्रतिज्ञाएँ सब हवा हो जाती हैं। स्त्रियों का संसर्ग होते ही पुरुषों में सत्ता का गर्व आ जाता है। वे अपने गृह के सङ्कुचित केन्द्र में राजसी सत्ताओं का उपभोग करते हैं—गृह ही उनका राज्य है और स्त्री ही उनकी प्रजा है। यह कोई बुरी बात नहीं, यदि शासन अच्छा हो। परन्तु यहाँ तो स्वेच्छाचारिता का बाजार गर्म रहता है। इस राज्य में तो सङ्कट और अन्याय की सीमा ही नहीं रहती। यह क्रम बहुत प्राचीन काल से चला आ रहा है। यदि कुछ काल के

लिए यह भी मान लिया जाय कि स्त्रियों के साथ समता का व्यवहार किया जाता था और वे समान-रूप से सम्मानित की जाती थीं, प्रत्येक कार्य में उनका मत आवश्यक समझा जाता था तो भी ऐतिहासिक प्रगति हमें इस बात के मानने के लिए वाध्य करती है कि समय का बहुत बड़ा अंश स्त्रियों की दुर्दशा देख कर व्यतीत हो चुका है। स्त्रियों में जब बल था, वीरता थी और स्वाधीनता की भावना थी तब उन्होंने अन्याय के प्रतिकार का प्रयत्न किया। उनका वह प्रयत्न अधिकारों में वही Passive Resistance अर्थात् सत्याग्रह हो रहा है। किन्तु, अब तो इसका रूप बहुत बिगड़ गया है। एक बार अपने आप को अधम मान लेने की भूल ने स्त्रियों को अधोगति के गहरे गर्त में ले जा पटका है।

अब तो यह अधोगति इस कोटि तक पहुँच चुकी है कि स्त्रियाँ अपना वास्तविक कर्त्तव्य भूल बैठी हैं। कुछ तो बाल-विवाहादि सामाजिक कुरीतियों के कारण और कुछ रोगों के आक्रमण तथा अशिक्षा और अज्ञान के बाहुल्य ने स्त्रियों का हृदय भावहीन-सा बना दिया है। उनमें कुछ सोचने और करने की शक्ति नहीं रह गई है। स्त्री तथा माता के रूप में उन्हें अपने कर्त्तव्यों का ध्यान नहीं रहा है। विधवाओं की अभिवृद्धि और दुर्दशा ने तो और भी भयङ्करता उत्पन्न कर दी है। कोई ऐसा कुटुम्ब नहीं होगा जहाँ एकाध विधवा न हो। स्त्रियों का जीवन अतिशय करुणापूर्ण और हृदय-वेधक हो गया है। उन्हें जन्म से ही क्षुद्र और अधम समझा जाता है। उन पर किए जाने वाले अत्याचारों के स्मरण से तो

हृदय काँप उठता है। उनका जीवन एक मजदूरिनी की तरह और कहीं कहीं तो उससे भी अधमरूप में व्यतीत होता है। उनमें से सैकड़ों का जीवन कठोर व्यवहारों के कारण एकान्त में आँसू बहाते बीतता है। वे हृदयाग्नि से जल जल कर मरा करती हैं। स्त्रियों के विधवा हो जाने पर तो इस अत्याचार की हद ही नहीं रह जाती। उनकी आहें रात दिन समाज को भस्म किया करती हैं। उन्हें डाकिनी, पिशाचिनी और न जाने क्या क्या समझा जाता है। अभी कल तक जो सौभाग्यवती थी, वही आज अपना सर्वस्व खो बैठती है; फिर भी, उसके साथ जैसा निष्ठुर व्यवहार किया जाता है उसे देखकर जी भर कर रोने के सिवा और कुछ नहीं किया जा सकता। हा भगवन्! जिस मनुष्य जाति में तू ने स्त्री का जन्म दिया है वह मनुष्य जाति अपने ही एक अङ्ग पर यह पैशाचिक काण्ड रच डाले!

अत्याचारों की उत्पत्ति

त्याचारों का जन्म अनेक कारणों से होता है। प्रथमतः ये अत्याचार दुर्बल असहाय और पतित लोगों को दबाने के लिए होते हैं और दूसरे पारस्परिक प्रतिस्पर्धा और अनुचित आनन्द और अयोग की लालसा भी अत्याचरों को जन्म देती है। जो जाति अत्याचार करने पर उतारू होती है वह सबल से सबल जाति को क्षुद्र और नगण्य बना डालती है। यह होने पर भी जिस जाति पर अत्याचार किए जाते हैं वह जाति भी किसी प्रकार दोष की भागी होती है। आत्म-दुर्बलता और आत्म-गुणहीनता ये दो ऐसे सबल कारण हैं जो व्यक्ति अथवा समूची जाति को नाश की ओर अग्रसर करा देते हैं।

मानव-समूह तथा समाज के सङ्घर्ष के साथ ही सभ्यता का रूप बदलता है। ज्यों ज्यों एक दूसरे के सम्बन्ध अधिकाधिक प्रगाढ़ और उत्तरोत्तर अवलम्बित होते जाते हैं, त्यों त्यों पारस्परिक व्यवहारों में भी अन्तर पड़ता जाता है। इन व्यवहारों में जो अधिक कुशल होता है वही सर्वोपरि समझा जाता है। उसी की सत्ता सब लोग मानते हैं और उसी के परामर्श व आदेश के अनुसार वे

चलना चाहते हैं। फल यह होता है कि सम्बन्ध की उत्तरोत्तर प्रगाढ़ता से एक को दूसरे की सुविधा के लिए कुछ न कुछ त्याग करना पड़ता है। प्रत्येक व्यक्ति दूसरे के आराम के लिए अपना कुछ सुख छोड़ देता है। मानवी प्रकृति की विचित्र स्वार्थपरता की बहुलता के कारण प्रायः इन व्यक्तियों में अधिक संख्या ऐसे लोगों की हो जाती है जो दूसरों के आनन्द पर कुठाराघात कर अपना ही सुख श्रेयस्कर समझने लगते हैं। उधर कुछ सरल प्रकृति और उदार हृदय व्यक्तियों में दूसरों को सुख पहुँचाने की प्रवृत्ति इतनी अधिक हो जाती है कि उसके आगे वे अपना सर्वस्व तक दे देने को तैयार रहते हैं। फल यह होता है कि उन्हें पद पद पर उन पुरुषों की सहायता करनी पड़ती है। प्रति समय उन्हीं के आनन्द एवँ उपभोग का ध्यान रखना पड़ता है। होते होते यह बात यहाँ तक बढ़ जाती है कि ऐसा करना उनके कर्तव्य का एक अङ्ग हो जाता है और इसके आगे उन्हें मानवी स्वत्व का तनिक भी ध्यान नहीं रहता। वे लोग भी जब देखते हैं कि हमारे सुख और आनन्द के लिए इन व्यक्तियों ने इतना अधिक कार्य किया है कि अब यह उनकी प्रकृति का एक अङ्ग बन गया है तो चट वे उन्हें उनके उपयुक्त स्थान से भ्रष्ट कर देते हैं। वे कहते हैं कि तुम्हारा धर्म अमुक है और तुम्हारे कर्त्तव्य अमुक हैं। इन कर्त्तव्यों का पालन करना तुम्हारा मुख्य धर्म है और इनकी अवहेलना तुम्हें दण्ड-भागी बनाएगी। बस, फिर क्या था, जहाँ कुछ काल तक यह धौंस चली नहीं कि उन बेचारे सरल हृदय व्यक्तियों ने वैसा ही समझ लिया। क्रमशः यह

स्वार्थपरता यहाँ तक बढ़ी कि उनकी किसी भी आज्ञा का भङ्ग करना महा पाप समझा जाने लगा; विद्रोह और बग़ावत मानी जाने लागी। क्या ही आश्चर्य है! समता और सहायता के भावों से प्रेरित होकर जिस व्यक्ति-समूह ने अपने सुख का बलिदान किया वही उसके लिए घोर विष-तूल्य हो गया। जिसके सुख के लिए अपना ध्यान विसराया उस जाति ने उन्हें पैरों से ठुकरा दिया!

साधारणरूप से अत्याचारों की उत्पत्ति का यही क्रम है। कुछ तो मनुष्य-प्रकृति, कुछ स्वार्थ-भावना और कुछ सामयिक अवस्थाएँ, इन तीनों को मिलाकर ही अत्याचारों का जन्म होत है। मनुष्य यह नहीं देखता कि सामाजिक विकास के साथ मानव सदगुणों की कितनी अभिवृद्धि होती है। उसे यह ध्यान नहीं रहत कि जिस समाज में उसका जन्म हुआ है उसके अन्य सदस्यों के साथ ही उसका भी जीवन सम्बन्ध है।

यदि हम उपर्युक्त क्रम का उपयोग स्त्री-जाति के प्रति करें त हमें बहुत कुछ तथ्य जान पड़ता है। अपनी स्वाभाविक सरल प्रकृि के कारण स्त्री-जाति ने पुरुषों के लिए सब कुछ किया। उनकं लालसा-पूर्ति के लिए, उनके जीवन को आनन्दमय बनाने के लि उन्होंने अपने हित का बलिदान किया। स्त्री-जाति ने पुरुषों के लि अपना जीवन अर्पण कर दिया। उसने देखा कि परिस्थिति यह बतला रही है कि स्त्रियाँ पुरुषों का साथ दें—केवल साथ ही नहीं उनके जीवन-क्रम की पूर्ति में सहायता दें। फलतः वे आगे बढ़

कर—अपना सब कुछ देकर भी पुरुषों की रक्षा करना उन्होंने परम धर्म समझा।

भला जिसकी कोख से पुरुष-जाति जन्म ले, जो नौ मास गर्भ में उसे धारण कर अपने शरीर की आहुति दे, अपने रुधिर और जीवन से उसे सींचे उस पुरुष-जाति के प्रति स्त्री-जाति क्या नहीं कर सकती थी और उसने क्या नहीं किया? नियमानुसार कार्य-क्षेत्र और कर्त्तव्यों का विभाग किया गया। स्त्रियों का कार्य-क्षेत्र जिस दिशा में रखा गया उसका रुख सच्चा था और जीवन-निर्वाह की उसमें प्रबल आकाँक्षा थी। कृत्रिमता और स्वार्थान्धता उसमें छू तक नहीं गई थी।

किन्तु पुरुषों ने स्त्रियों के इस सद्गुण से अनुचित लाभ उठाया। उन्होंने जब देखा कि अर्थ आदि चिन्ताओं को त्याग कर जीवन के सभी आवश्यक कार्य स्त्रियों द्वारा पूर्ण होते हैं तो कुछ तो अपने उत्कर्ष और कुछ भविष्य की चिन्ता के कारण, उनमें से अनेक लोगों ने एक भिन्न समूह बनाकर इस बात पर विचार किया कि आगे चल कर स्त्री-समाज का यह गुण आवश्यक कर्त्तव्य मान लिया जाय। क्योंकि उनके इस सहयोग से उन्हें जो सुविधाएँ होंगी, जिन कष्टों और आफ़तों से उन्हें बचना पड़ेगा, यदि भविष्य में उनका ऐसा ही सहयोग न रहा तो उस सुविधा और आराम की प्रकृति के लिए उन्हें घोर कष्ट उठाना पड़ेगा। अभागे पुरुषों ने यह न समझा कि स्त्रियाँ उस कार्य-क्षेत्र से बहिष्कृत नहीं की जा सकतीं—पुरुषों की सहायता तो वे स्वभावतः ही

करेंगी। आप ऐसा नियम ही क्यों बनाते हैं ? इससे तो उनका अपमान होगा। न तो स्त्रियों के बिना आप जीवित रह सकते हैं और न स्त्रियाँ आपके बिना; किन्तु, पुरुषों की प्रकृति तो विचित्रता से भरी थी। उन्होंने इस सरल और साधारण सिद्धान्त को न समझा और अपनी धुन में उन्होंने स्त्रियों के लिए बन्धनों और जालों का ग्रन्थन किया। उन्हें कर्त्तव्य-च्युत न होने देने के लिए कठोर से कठोर उपायों का अवलम्बन किया जाने लगा। नीति और वेद दोनों ही की सहायता ली गई। धर्म-शास्त्र तक पर भी हाथ साफ़ किए गए और उनकी आड़ में स्त्रियों के गले पर छुरी फेरा गई। यही क्रम आजतक जारी रहा और शताब्दियों के इस जघन्य व्यापार ने एक जाति का हृदय, उसकी उमङ्ग और अभिलाषाएँ, उसका ज्ञान और चातुर्य्य सब कुछ नष्ट कर दिया।

संक्षेप में हमने अत्याचारों की उत्पत्ति का जो क्रम बताया है वह प्रारम्भ से अन्त तक भ्रम और भूल पर स्थिर है। दोनों ओर से भूल की गई हैं। हाँ, ज्यादती एक ओर से की गई है। न तो पुरुषों ने ही इस बात का विचार किया कि हम स्त्रियों से जो सहायता चाहते हैं वह उन्हें स्वतः प्राप्त है, स्त्रियाँ उससे बच नहीं सकतीं और न स्त्रियों ने ही इतना विचार करने का कष्ट उठाया कि जिस कर्त्तव्य-पालन के लिए वे स्वयँ अभिलाषा रखती हैं उसे बन्धन और भार-स्वरूप बनाकर उनकी स्वतन्त्रता किस प्रकार नष्ट की जा रही है। जहाँ दोनों का सहयोग अनिवार्य है, जहाँ एक के बिना दूसरे का काम नहीं चल सकता वहाँ कृत्रिम उपायों

का अवलम्बन—और वह भी केवल दुख पहुँचाने के लिए-क्रूरता और घोर नीचता के अतिरिक्त क्या कहा जा सकता है ?

फिर यदि अप्राकृतिक नियमों द्वारा तुमने स्त्रियों पर प्रभुत्व प्राप्त भी किया था तो तुम्हारे अन्तःकरण ने यह कब कहा था कि किसी शरणागत का भी सत्यानाश कर दिया जाय। जब आपने स्त्रियों को अपने आधीन मान लिया तो आपकी बर्बरता और पशुता अत्यधिक हो गई। आपने सत्ता के मद में यह भी भुला दिया कि यह वही जाति है जिस पर हमारा जीवन अवलम्बित है। अन्धे होकर, अधिकार के मोह में पड़कर आपने स्त्रियों के जीवन को तुच्छ समझ लिया। इतना भी न सोचा कि इस कृति का क्या दुष्परिणाम होगा। अपने ही अङ्ग पर आघात करने से क्या कभी शरीर स्वस्थ और सुखी रह सकेगा ?

अशिक्षा
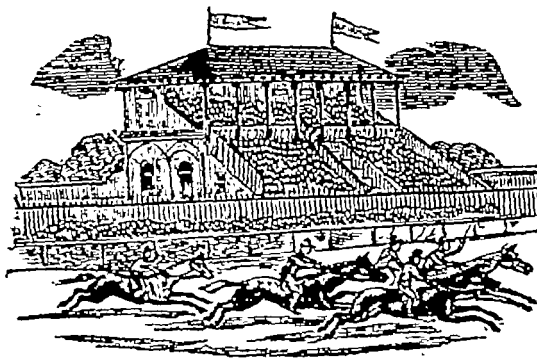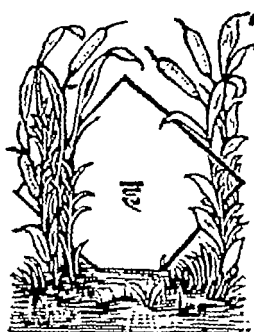
म ऊपर लिख चुके हैं कि अत्याचारों को जन्म देने में जहाँ पुरुषों ने भूल की है वहाँ स्त्रियों ने भी उसमें सहायता दी है। हो सकता है स्त्रियों की इस भूल का कारण भी पुरुष ही रहे हों। क्योंकि स्वावलम्बन के बीजों का नाश हो जाने से स्त्रियाँ निःशक्त हो गईं थीं। पर, यह तो निश्चित है कि यदि स्त्रियाँ उन भूलों को न करतीं, यदि वे अपनी परिस्थिति सुरक्षित बनाए रखतीं तो अत्याचारों की सीमा इतनी अधिक न बढ़ती। स्त्रियों की प्रकृति और आचरण में अनेक बातों की त्रुटियाँ ही अत्याचारों को विशेषरूप देने वाली हैं।

इसके पूर्व कि, हम स्त्री-जाति की उन त्रुटियों का अवलोकन करें हमें सब से प्रधान और मूल कारण अशिक्षा की ओर ध्यान देना पड़ता है। हमें यह दिखलाना है कि अशिक्षा के कारण स्त्री-जाति की कितनी हानि हुई है और उससे अत्याचारों की अभि-वृद्धि कहाँ तक हुई है। 'एक यही कारण ऐसा है जो हृदय को हिला देने वाला है। प्रकृत स्वत्वों से वञ्चित रखकर निःशक्त बना देना क्या कुछ कम है ?

प्रत्येक व्यक्ति को साधारणरूप से ये अधिकार प्राप्त हैं ही; यथा, जीवित रहने का, आर्थिक अवस्था सुधारने का, सामाजिक, वैयक्तिक तथा कौटुम्बिक सम्बन्ध तथा तत्सम्बन्धी व्यवहार निश्चित करने का, शिक्षा प्राप्त करने का, मित्रता व प्रेम करने का, इत्यादि। हाँ, इन अधिकारों का दुरुपयोग किसी अवस्था में ठीक नहीं कहा जा सकता; किन्तु यहाँ तो अधिकारों का दुरुपयोग कौन कहे, प्रकृत-अधिकार में ही अविश्वास है। एक शिक्षा विषय को ही ले लीजिए। इस सम्बन्ध में अब तक लोगों के ऐसे ऐसे विचार बने हैं कि जिन्हें पढ़ और सुनकर आश्चर्य होता है। 'गृहिणी सचिवः सखी मिथः प्रिय शिष्या ललिते कला विधौ' वाली प्राचीन उक्ति अब केवल उदाहरण के लिए रह गई है। जब स्त्रियाँ पुरुषों की समता में शिक्षा प्राप्त नहीं कर सकतीं; तब वे अर्द्धाङ्गिनी कैसे कही जा सकती हैं? जब उनकी योग्यता, मानसिक एवँ विचार-शक्ति का विकास नहीं किया जाता? तब वे सहधर्म्मिणी कैसे बन सकती हैं? यह कब सम्भव है कि आप प्राकृतिक योग्यता का मूल ही नष्ट करदें और फिर भी चाहें कि समाज-वृक्ष हरा-भरा रह कर फले-फूले? अशिक्षा के कारण स्त्रियाँ अधिकाधिक पुरुषों के अत्याचारों की शिकार हुई हैं और हो रही हैं। जब विचार-शक्ति का विकास ही न होगा तो जीवन के तत्व किस प्रकार समझे जा सकेंगे? जीवन-तत्वों को न समझने से व्यवहारिक योग्यता कैसे प्राप्त होगी? व्यवहारिक योग्यता के अभाव से स्वत्वों का ज्ञान कैसे होगा? स्वत्वों के न पा सकने से जीवन किस उपयोग का रह

जायगा ? जिस प्रकार बिना शक्ति के साहस व्यर्थ है, बिना प्राण के शरीर व्यर्थ है, उसी प्रकार बिना अधिकार के जीवन वृथा है। हमारे स्त्री-समाज का जीवन आज इसी व्यर्थता में पड़ा हुआ ठुकराया जा रहा है।

स्वर्गीय परम विद्वान् गोवर्द्धन भाई ने एक स्थान पर लिखा है :—

"स्त्रियाँ पण्डिता हों, रसज्ञ हों, कुटुम्ब-पोषक हों, स्वस्थ हों, शरीर से बलवती हों, रोग-हीन और सुन्दर हों, योग्यता के प्रमाण में कुटुम्ब-बन्धन से वे मुक्त—स्वतन्त्र—हों और इसी स्वतन्त्रता के बल पर वे कुटुम्ब की अगणित चिन्ताओं और क्लेशों से छूटें, कुटुम्ब का सच्चा कल्याण करने के लिए वे शक्तिमती और उत्साहिनी बनें। साध्वी पत्नी बनकर पति का जीवन उन्नत करें, पतित-पावन, सेवा-भगिनी दुख-तिमिरि में डूबती हुई आत्माओं का उद्धार करें, मातृभक्त पुत्री के समान हिन्दू माता की सन्तानों का विकास करें और उनकी प्रगति में सहायक बनें तथा प्रजा-वत्सल जननी-रूप होकर स्वदेश में उन्नति और वैभव-सूर्य की तेजस्वी, उल्लास-भरी और जीवनमयी किरणों का प्रकाश करें—यही आर्य सुन्दरियों के जीवन की सफलता है; स्त्री बिना गृह नहीं है, गृह बिना प्रजा नहीं है और प्रजा बिना राज्य नहीं है—स्त्री की उन्नति के बिना देश की उन्नति असम्भव है।"

अहा! कैसा उदार तत्व है। स्त्री-जीवन का कैसा सुन्दर चित्र है? उसके जीवन की कैसी महत्ता तथा कितना दायित्व है? किन्तु, हाय! कहाँ यह काल्पनिक आदर्श और कहाँ हमारे स्त्री-

समाज की वर्तमान घोर अधोगति। समाज का कहाँ वह परम रमणीय सुन्दर चित्र और कहाँ आधुनिक रौरव नर्क जैसा घृणित दृश्य! श्रीमती बेसेन्ट ने लिखा है—

Woman is the *Shakti*, the divine power and without her, man cannot reach the fulness of life; partner not subject; comrade not rival, helper not burden—such is woman to man. With her freedom India shall be free; for man and woman are the halves of a perfect whole and by their united strength shall India enter into her kingdom.

अर्थात्—स्त्री शक्ति-रूपिणी है, दैवी सत्ता-शालिनी है, स्त्री के बिना पुरुष कभी पूर्णता को प्राप्त नहीं हो सकता। स्त्री सहयोगिनी है, शासित नहीं, सङ्गिनी है प्रतिस्पर्द्धिनी नहीं, सहायक है भार रूप नहीं; स्त्री-पुरुष का ऐसा ही सम्बन्ध है। स्त्रियों की स्वतन्त्रता से भारत स्वाधीन होगा; क्योंकि स्त्री और पुरुष दोनों ही एक पूर्ण के दो अर्द्धाङ्ग हैं और इन दोनों की सम्मिलित शक्ति द्वारा ही भारतवर्ष अपने अधिकार को प्राप्त करेगा।

यह होते हुए भी हम स्त्रियों का कहाँ तक ध्यान रखते हैं, यही विचार करने योग्य विषय है। हम चाहते तो हैं कि हमारा जीवन—चाहे कौटुम्बिक, सामाजिक अथवा राष्ट्रीय हो—सुख-पूर्वक व्यतीत हो; किन्तु, हम उसके लिए कोई प्रयत्न नहीं करते। आज भारतवर्ष में सर्वत्र उन्नति के लिए प्रयत्न किया जा रहा है। कोई स्वराज्य द्वारा उन्नति चाहते हैं, तो कोई धार्मिक बन्धनों में ही

उन्नति मानते हैं। अनेकों का यही मत है कि इस धर्म के थोथे बन्धन के रूप में प्रति वर्ष जो असंख्य द्रव्य व्यय होता है उसको रोक देने से ही उन्नति हो जायगी। हम इन विचारों का खण्डन नहीं करते। किन्तु, शताब्दियों की गहरी गुलामी के बाद आज जब भारतवासियों को होश हुआ है तो वे 'स्वतन्त्रता स्वतन्त्रता' की जय जय कार कर रहे हैं। आश्चर्य तो इसी बात का है कि जो पुरुष अपने लिए स्वतन्त्रता चाहते हैं, अपने लिए अधिकार और वैभव-सत्ता चाहते हैं वे ही अपनी स्त्रियों, माताओं और बहिनों को उसी पराधीनता, अशिक्षा और अन्ध-परम्परा के घोर गर्त में पटके रखना चाहते हैं। क्या भारतवर्ष की उन्नति में इन अबलाओं का कोई भाग नहीं है ? क्या मनुष्य-जाति के अधिकार इन्हें प्राप्त नहीं हैं ? क्या शिक्षा द्वारा इनके जीवन को समालङ्कृत करने के लिए कुछ भी प्रयत्न न होना चाहिए ? यद्यपि अभी कुछ काल से लोगों का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ है—वे लेखों, व्याख्यानों और पुस्तकों द्वारा स्त्रियों की रक्षा और शिक्षा का प्रतिपादन करते हैं और उनके चरित्र-विकास के लिए विविध उपायों की योजना करते हैं—तथापि प्रजा का अधिक भाग अभी इन प्रवृत्तियों से बिलकुल अनभिज्ञ है। वे अभी तक स्त्रियों के जीवन का सच्चा महत्व नहीं समझ सके हैं। यही नहीं, जो लोग स्वराज्य-स्वराज्य की तुमुल ध्वनि से गगन-भेदन कर रहे हैं, साथ ही जो उसके लिए तन, मन, धन सभी कुछ अर्पण कर रहे हैं उनमें से भी अधिकांश ऐसे हैं जो अपनी जीवन-सहचारिणी,

नवोत्साह-रस का पान कराने वाली और सुयोग्य सहायिका धर्म-पत्नी को ही उचित अधिकार देने में आगा पीछा सोचते हैं। क्या यह शोक की बात नहीं है ?

स्त्रियों को योग्य शिक्षा देकर उनकी स्थिति का सुधार न किया गया तो इसमें सन्देह नहीं कि पुरुष-जाति के सभी उद्योग निरर्थक और अस्थायी होंगे। उनका सुधार-रूपी मन्दिर कच्ची नींव पर स्थिर रहेगा और वह थोड़े ही समय में बैठ जायगा। हज़ार प्रयत्न करने पर भी अकेले पुरुष सामाजिक उन्नति नहीं कर सकते। यदि हम इस सम्बन्ध में पाश्चात्य देशों की ओर दृष्टिपात करें तो उनकी इस आश्चर्यजनक और शीघ्र उन्नति का कारण तत्काल हमारी समझ में आ जाता है। वहाँ के पुरुषों ने अपनी स्त्रियों को समस्त प्राकृतिक अधिकारों का उपभोग करने की स्वाधीनता दे रखी है। यही कारण है कि आज वहाँ की स्त्री प्रत्येक कार्य में पुरुष की सहायक है। यही कारण है कि इस प्रकार अधिकार-प्राप्त कर्त्तव्य-दक्ष पत्नियों की सन्तान भी वैसी ही सुयोग्य और उत्तम उत्पन्न होती है। यदि यह प्रश्न उठाया जाय कि वहाँ की स्त्रियों ने स्वतन्त्रता की मर्यादा उल्लङ्घन कर दी है जो हमारे समाज के लिए अहितकर है, तो हमारा कहना है कि अभी तो यह प्रश्न उठाना ही व्यर्थ है। यह तो वही बात हुई कि कल्पना के साम्राज्य में घूम-फिर कर माला-माल हो गए; किन्तु, वास्तव में रहे भिखारी के भिखारी। जहाँ आप स्त्रियों की शक्ति का विकास ही नहीं करना चाहते, जहाँ आप उन्हें घोर अशिक्षा

अवलाओं पर अत्याचार
के पर्दे के अन्दर रख कर उन पर मनमाने अत्याचार करते हैं वहाँ
आपका यह प्रश्न ही व्यर्थ है। इससे तो जान पड़ता है कि आप
स्त्रियों को इसी ग़ुलामी में रखना चाहते हैं, आप नहीं चाहते हैं
कि स्त्रियाँ आप से खुल कर बातें करें—वाद-विवाद द्वारा किसी
विषय का निर्णय कर सकें। यदि आप शिक्षा को अपने लिए
बुरा समझते हैं तो वह स्त्रियों के लिए भी अवश्य उतनी ही बुरी
है। किन्तु आप शिक्षा के बल पर सुधार करना तो चाहते हैं,
लेकिन घर ही में अँधेरा रखते हैं यह कैसे हो सकता है? यह
तो आपकी सामाजिक-परिस्थिति और शिक्षण-परिपाटी पर
निर्भर है कि स्त्रियाँ कैसी बनें।

जब कभी पुरुषों की इस अपूर्णता या खोखलेपन पर हम
विचार करते हैं तो हमें बड़ा दुख होता है। सभाओं में सुधार पर
लम्बी वक्तृता झाड़ने वाला घर में आकर वही फूहड़ रिवाज को
घसीटता है; सरकार से स्वाधीनता के लिए लड़ने वाला व्यक्ति
अपनी स्त्री को ही घोर बन्धन में रखता है और शासन के
अत्याचारों के विरुद्ध आवाज़ उठाने वाला अपने ही घर में
अत्याचारों का प्रकाण्ड-ताण्डव करने लगता है!!

क्या यह दुख की बात नहीं है? ऐसा कौनसा अभागा व्यक्ति
है जो अपनी अथवा अपने देश की उन्नति नहीं चाहता? सभी
चाहते हैं; किन्तु, सच्चे मार्ग का अवलम्बन करने वाले कितने
हैं? निष्पक्ष भाव से आचरण करने वाले कितने व्यक्ति दीख
पड़ते हैं? स्वामी विवेकानन्द ने एक स्थान पर कहा है:—

"जब तक तुम महामाया की साक्षात् प्रतिमा-रूपिणी स्त्री-जाति का उद्धार न करोगे तब तक तुम्हारे देश के उद्धार होने का कोई अन्य मार्ग नहीं है।"

सामाजिक बन्धन के क्लेश से मुक्ति पाने का एक मात्र उपाय शिक्षा ही है। अशिक्षित एवँ अज्ञानावस्था में पड़ी हुई बेचारी स्त्रियाँ अपने कर्त्तव्यों को कैसे समझ सकती हैं ? हम उन्हें शिक्षित किए बिना ही उनसे उत्तम व्यवहार, उच्च ज्ञान और श्रेष्ठ आदर्शों की आशा करते हैं, यह कैसे सम्भव है ? हम मूढ़ व्यक्ति से विद्वत्ता की कौनसी बात सीख सकते हैं ? जब स्त्रियाँ अशिक्षिता हैं, हमारे विचारों और कार्यों में समान भाग नहीं ले सकतीं, तो हमें क्या हक़ है कि हम उनसे अच्छे कार्यों की आशा रखें ? हम किस बात पर उनसे उन्नति की अभिलाषा करें ? यही तो कारण है कि जब हमारे अनेक शिक्षित और बहु-संख्यक पढ़े-लिखे लोग बाहर से अपने घर पहुँचते हैं तो अशिक्षित रमणी के साधारण व्यवहार-वार्तालाप और गृह-सम्बन्धी शिकायतों को देख और सुनकर भीतर ही भीतर कुढ़कर रह जाते हैं और उसी समय अशिक्षा के दोष के कारण हमें तामसी स्वभाव धारण करना पड़ता है। डाँट-डपट और लाग-डाँट से हम बेचारी स्त्री के कोमल हृदय को कुचल देते हैं। उसकी समस्त आशाओं पर पानी फेर देते हैं। फिर वही पुराना चरखा, वही घर का काम और हो सका तो अवकाश के अवसर पर इधर-उधर की गाली-गलौज, शिकायतें व बुराइयाँ व फूहड़ काम ! भारतीय कुटुम्ब की प्रायः ऐसी ही स्थिति देखने में आती

है। न उसमें नवीनता है और न भावी उन्नति की आशा। स्त्री-जाति के कर्त्तव्य, उसका प्रभाव, स्त्री की पवित्रता, उसका दैवी गौरव, स्त्री का दायित्व और कार्यों में उसकी उपयोगिता, ये तो स्थायी प्रश्न हैं; किन्तु सब से बड़ी बात जो आवश्यक है, वह है— स्त्रियों को शिक्षित बनाना। जब तक स्त्रियों को उचित अधिकार न मिल जायँगे तब तक देश की उन्नति नहीं हो सकती, यह तो सिद्ध बात है। शिक्षा द्वारा तुम सचेत हुए हो, तुमने सत्य-मार्ग को जाना है। यदि अपनी स्त्रियों को—अर्द्धाङ्गिनियों को—भी तुम शिक्षा न दोगे तो तुम्हारा आधा अङ्ग व्यर्थ रहेगा। तुम्हारी एक ही आँख खुली रहेगी।

स्त्रियों को शिक्षा देने की तो कौन कहे, अभी तो ऐसे लोगों की संख्या ही सब से अधिक है जो स्त्रियों को शिक्षा देना ही नहीं चाहते। धन्य है! हम कुत्ता, तोता, मैना, बिल्ली और कबूतर पाल कर उन्हें कुछ बोलना और काम करना सिखलाएँ; घोड़े और बैलों तक को चलना व जुतना सिखलाएँ; किन्तु स्त्रियाँ—हाँ, स्त्रियाँ तो उन बिल्ली-कुत्तों से भी गई बीती हैं—वे तोते और मैना से भी हीन हैं—तभी तो उन्हें कुछ भी शिक्षा देना घोर पाप समझा जाता है। स्त्रियों के अधिकारों की बात चीत करना महान् सामाजिक विद्रोह माना जाता है। क्या बात है?

यदि कुछ लोग यह कहें भी कि पुरुष स्त्रियों को शिक्षा देने के कदापि विरोधी नहीं हैं—वे तो कन्या-पाठशालाएँ और विद्यालय

इत्यादि खोलने के लिए तैयार हैं। पर, हम तो निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि इन सब बातों में खोखलापन भरा हुआ है—ये सब दिखावटी हैं। अन्तःकरण में उनके जरा भी गहराई नहीं है। हृदय के गम्भीर कोने में देखने पर प्रगट होगा कि स्त्रियों को शिक्षित बनाने की पुरुषों को ज़रा भी इच्छा नहीं है। स्त्रियाँ ही कुछ थोड़ी बहुत चहल-पहल मचाकर हो-हल्ला कर देती हैं, वे ही ज़रा पुरुषों के इस घोर अत्याचार के विरुद्ध आवाज़ उठा देती हैं तभी लाचार होकर पुरुषों को भी ऐसा कह देना पड़ता है। तभी तो जब उनकी स्त्री व बहिन या पुत्री को शिक्षा देने का सवाल सामने आता है तब बड़ी सफ़ाई से उसे टाल देते हैं। अभी शिक्षा का प्रारम्भ ही नहीं हुआ है तब तो वे कहते हैं कि हमारी स्थिति बिगड़ चली है। हम प्रभुत्व खोकर दास बन रहे हैं। पर जब शिक्षा प्राप्त कर स्त्रियाँ अपनी उन्नति करेंगी—अपने अधिकारों का उपभोग करेंगी, पुरुषों की समता करेंगी, कदाचित् समाज में पुरुषों से श्रेष्ठ सम्मान प्राप्त करेंगी—तब तो न जाने पुरुषों का क्या हाल हो जायगा! वस्तुतः ये सब विचार भ्रमपूर्ण हैं। जिस शिक्षा से पुरुषों की बुद्धि और आत्मा का विकास हो सकता है उस शिक्षा से स्त्रियों को क्यों वञ्चित रखना चाहिये? आत्मा का विकास करने का तो स्त्री और पुरुष दोनों को स्वतन्त्र अधिकार है। जो साहित्य और विज्ञान उनके विचारों को उन्नत बनाता है, उनकी भावनाओं को जाग्रत करता है, उच्च आदर्शों को बतलाता है, उस ज्ञान-विज्ञान से स्त्रियों की अधोगति कैसे हो जायगी! यदि कालिदास,

भवभूति, शेक्सपियर, बायरन इत्यादि के विचारों से पुरुष लाभ उठा सकते हैं तो स्त्रियाँ क्योंकर उनसे हानि सहेंगी? जब दुनिया के व्यवहार और काम-काज में, नौकरी और व्यापार में, कुटुम्ब तथा कर्त्तव्य की ज़िम्मेदारी में, शिक्षा द्वारा पुरुष अयोग्य नहीं होते तो स्त्रियाँ क्यों अयोग्य हो जायेंगी? यह तो पुरुषों के विचार-सङ्कोच का ही प्रदर्शक है। पुरुषों के हृदय की यह तो सङ्कीर्णता ही है। उदाहरण दिये जा सकते हैं; शिक्षा-प्राप्त व्यक्तियों के व्यवहार बिगड़ गए हैं; किन्तु इस का कारण शिक्षा तो कदापि नहीं है। उसके अन्तर्भूत और अनेक कारण होते हैं। हमें ऐसे बीसों उदाहरण याद हैं; किन्तु, उसमें शिक्षा का कोई दोष नहीं है। संसर्ग और संस्कार यद्यपि शिक्षा द्वारा सुधारे जा सकते हैं तथापि वे बदले नहीं जा सकते और उनका प्रभाव मन और आत्मा को कलुषित किए ही रहता है। क्या कहें, यहाँ तो बड़े बड़े शिक्षा-प्रचारक और सुधारक भी अन्तःकरण से यह मानते हैं कि शिक्षा पाने से स्त्रियाँ बिगड़ जाती हैं, शिक्षा से तथा बुद्धि के विकास से स्त्रियों की अवनति हो जाती है। यदि वे प्रत्यक्ष-रूप से अपने इस सङ्कीर्ण-हृदय का समाज को परिचय देते हैं तो उनका सम्मान घटता है। खेद की बात तो यह है कि ऐसे मत के लोगों में युवकों की संख्या ही अधिक है। ये लोग सोसायटी के लिहाज़ से, फ़ैशन के ख़याल से, भले ही अपनी स्त्रियों को थोड़ी बहुत अङ्गरेज़ी सिखलादें; पर जो शिक्षा आत्मा और बुद्धि का विकास करती है, जो विचार और मस्तिष्क को परिष्कृत बनाती है उसकी ओर ये

दृष्टिपात ही नहीं करना चाहते। उससे तो सच्ची योग्यता प्राप्त होती है, वह तो मनुष्यता का ज्ञान कराती है, उससे तो पुरुष-जाति के मनमाने अत्याचार जीवित नहीं रह सकते।

अब स्त्री-शिक्षा के विरुद्ध जो प्रधान आक्षेप किए जाते हैं उनका भी विवेचन करना आवश्यक जान पड़ता है। ये आक्षेप इस प्रकार होते हैं :—

(१) रजोदर्शन के पहले ही बालिका का विवाह कर देना उचित और शास्त्रोक्त है।

(२) शिक्षा से स्त्रियाँ नीति तथा धर्म-भ्रष्टा हो जाती हैं।

(३) शिक्षा से स्त्रियाँ स्वतन्त्र और स्वेच्छाचारिणी बन जाती हैं।

(४) शिक्षा से स्त्रियाँ पुरुषों की अवहेलना करने लगती हैं और उनका सम्मान नहीं करतीं!

(५) शिक्षा से स्त्रियों के शरीर पर अनिष्ट परिणाम होता है और वे व्यावहारिक अथवा गृहस्थी के काम के योग्य नहीं रह जातीं।

(६) स्त्रियाँ सुशिक्षिता हो जाने पर विवाह न करेंगी और इस प्रकार राष्ट्र को सुसन्तान प्राप्त न होगी।

(७) सुशिक्षित स्त्रियाँ स्वयंवर पसन्द करेंगी; विजातियों में विवाह होने लगेंगे तथा रोटी-बेटी व्यवहार प्रारम्भ होगा, जिसके कारण घोर सामाजिक अनियमितता या विषमता उत्पन्न होगी। इसी प्रकार के और भी अनेक आक्षेप हैं।

आप किञ्चित् विचार-पूर्वक इन आक्षेपों को पढ़ जाइए। फिर सोचिए कि स्त्रियों के विरुद्ध पुरुषों ने कैसा माया-जाल फैलाया है। इस स्थान पर न तो हमें इतना अवकाश है और न इच्छा ही है जो प्रत्येक आक्षेप का विस्तारपूर्वक उत्तर दें। हम तो केवल इतना ही कहेंगे कि हमें इन आक्षेपों की व्यावहारिक सत्यता में बहुत कुछ सन्देह है।

पहिला आक्षेप पुरुषों की धूर्तता का पूर्ण परिचायक है। ऐसा विरोध सामने लाकर वे शिक्षा का मूल ही उड़ा देना चाहते हैं। वे सोचते हैं कि जब रजोदर्शन के पूर्व, जिसकी अवस्था छोटी होती है, विवाह हो जायगा तो बालिका का शिक्षा-क्रम ही स्थिर न रह सकेगा। वे यह नहीं सोचते कि जहाँ शास्त्रों में ऐसा लिखा है वहाँ यह भी तो उल्लेख है कि रजो-दर्शन होने पर तीन वर्ष तक विवाह अशुद्ध व इसके पश्चात् शुद्ध होता है। अब शास्त्र की किस आज्ञा का पालन किया जाय। सच तो यह है कि स्वार्थी लोग शास्त्रों की शरण लेकर अर्थ का अनर्थ करने में ही अपनी विद्वत्ता और निपुणता समझते हैं। अन्य जितने भी आक्षेप हैं वे सब निर्मूल हैं और शिक्षा के वास्तविक स्वरूप में उनका उपयोग नहीं होता। हम शिक्षा को न जाने क्या समझते हैं। शिक्षण-परिपाटी के दोष से शिक्षा कलङ्कित नहीं हो सकती। व्यक्तिगत आचरण और सदाचार का भी तो मनुष्य के हृदय पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। जब शिक्षा देने में आपका उद्देश्य ही पवित्र नहीं है, आपके विचार ही शुद्ध और परिमार्जित नहीं हैं तो उस शिक्षा से आप कौन

सा सुफल पा सकेंगे। शिक्षा तो आप देते हैं, उसका फल भी होता है, बुद्धि विकसित होती है, किन्तु परिपाटी के दोष से जो व्यङ्ग और दोष उत्पन्न हो गए हैं उनके कारण शिक्षा प्राप्त करने पर भी व्यावहारिक योग्यता नहीं आती, मानसिक पवित्रता एवँ विचार पवित्रता नहीं प्राप्त होती। आप स्वयँ ही ऐसा चाहते हैं। आप स्वयँ ही दूषित शिक्षा-प्रणाली से गठित हैं। आपसे क्या आशा की जा सकती है कि स्त्रियों की अवस्था के सुधार में आप उदार नीति का अवलम्बन करेंगे ?

स्त्री-शिक्षा की चर्चा छिड़ते ही जब लोगों को आश्चर्य होता है, बाहरी स्त्रियों से वार्तालाप करने पर हमें जब क्षुद्र भाव का बोध होता है तभी हम समझ लेते हैं कि हमारे हृदय अभी अपवित्र हैं, हमारे विचार अभी शुद्ध नहीं हैं और हम अभी इस योग्य नहीं हुए हैं कि स्त्रियों के गम्भीर प्रश्न पर विचार कर सकें। फिर भी यदि हम इस ओर विशेष भाग नहीं ले सकते, स्वयँ कोई उद्योग नहीं कर सकते तो खुल्लम-खुल्ला सिद्धान्त के पक्ष का प्रतिपादन करना तो हमें उचित है। हम तो वह भी नहीं करते। अपने कठोर शासन से स्त्रियों को मुक्त ही नहीं करना चाहते।

हमारा उद्देश्य इन बातों को लिखने से यही है कि आप जान सकें कि आज अबलाओं पर जो अत्याचार हो रहे हैं उनमें अशिक्षा का क्या हाथ है। यह बात नहीं कि केवल स्त्रियों की अशिक्षा के कारण ही ऐसा होता हो ! नहीं, अभी भारत में स्त्रियाँ जहाँ एक या दो प्रति सैकड़ा कठिनता से शिक्षिता मिलेगी वहाँ पुरुष

भी छः-सात से अधिक नहीं मिलते। जहाँ पर स्त्री और पुरुषों की ऐसी घोर अशिक्षा है वहाँ स्त्रियों पर पुरुष अत्याचार करें तो कौन आश्चर्य है ? जहाँ शिक्षित कुटुम्बों में ही क्रूर अन्याय किए जाते हैं वहाँ अशिक्षितों की तो बात ही व्यर्थ है। दुख है कि इस जाग्रति के युग में भी हमारा समाज इतना पतित हो रहा है !

रक्तापहरण
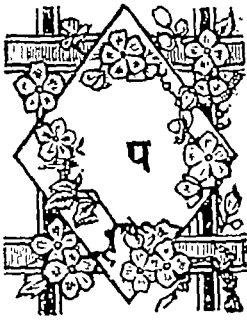
(प)ति देव ने मन ही मन सोचा, शास्त्रों में ठीक लिखा है–'स्त्रीचरित्रम् पुरुषस्य भाग्यम् दैवो न जानाति कुतो मनुष्यः' अतः वह अपनी प्रियतमा से—हाँ, उसे वह अपनी प्रियतमा ही कहता है—बोला "प्रिये! नीति तो कहती है कि गुप्त बात स्त्रियों से कदापि न कहे तथापि मैं इस नीति-वाक्य का उल्लङ्घन तुम्हारे लिए करना चाहता हूँ।"

स्त्री बोली—"प्यारे! एक स्त्री की दृष्टि से मेरे विषय में यदि आप कुछ दुर्बल धारणा करते हैं तो कोई आश्चर्य नहीं। पर, मैं तो कह सकती हूँ कि चाहे सङ्कटों की बौछार मुझ पर होने लगे तथापि मेरा स्वाभाविक धैर्य और साहस लेश-मात्र कम न होगा। मैं केवल प्राचीन आदर्श-सतियों का चरित्र श्रवण करने में ही न लगी रही, अपितु मैं ने यथासम्भव उनका अनुकरण भी किया है और समय पड़ने पर वैसे सङ्कटों का सामना करने के लिये तैयार हूँ। सङ्कट के समय धैर्य खोकर अपने पति का दुख और बढ़ाना यह अज्ञ स्त्री का काम है।"

उपर्युक्त वार्तालाप एक सुशिक्षित व्यक्ति और उसकी सुशि-

क्षिता पत्नी का है। पति-देव शिक्षित होकर भी नीति का अंधानुकरण करते हैं। वे कहते हैं कि स्त्रियों से कोई गुप्त बात न कहे। क्यों? इसीलिए कि उनका हृदय दुर्बल होता है, उनकी बुद्धि अस्थिर रहती है और उनकी प्रवृत्ति चञ्चल रहती है। पति-देव की उक्ति सुन कर सुशिक्षिता नारी ने जो कुछ कहा वह भी विचारणीय है। स्त्री कहती है कि पति के क्लेश देखकर जो स्त्री धैर्य नहीं धारण करती वह अपनी मूर्खता से उसके सङ्कट को और बढ़ाती है। दोनों शिक्षित स्त्री-पुरुषों में कितना अन्तर है। शिक्षा पाकर भी पुरुष स्त्री-जाति को अविश्वसनीय समझता है। वह उसे महत्वपूर्ण कार्य की सहयोगिनी नहीं बनाना चाहता और उसके तमाम स्वत्व व अधिकारों पर पानी फेर कर उसे सहधर्मिणी, सहचारिणी या अर्द्धाङ्गिनी नहीं रखना चाहता। यह किस बात का द्योतक है? क्या इससे यह प्रकट नहीं होता कि पुरुष-जाति स्त्री-जाति के महत्व को स्वीकार नहीं करती? और क्या इससे प्रकट नहीं होता कि स्त्रियों की शक्ति बहुत ही अल्प है और उनका हृदय अत्यन्त ही दुर्बल है। जिन्हें हम महामाया शक्ति-रूपिणी देवी समझते हैं वे अत्यन्त भीरु, अविश्वसनीय और चपल मात्र हैं।

फिर तो स्त्री को सहधर्मिणी, सहचारिणी और धर्मपत्नी बतलाना केवल आडम्बर है। जिसके सहवास में हमारे जीवन का बहुमूल्य समय कटता है, जिसे हम सामाजिक कर्त्तव्य की मूर्ति समझते हैं, जिसे हम राष्ट्र-जननी और जगदम्बा कहते हैं उसी स्त्री-जाति के प्रति ऐसा अविश्वास प्रकट करने का क्या कारण?

अवश्य ही स्त्रियों ने अपने क्षुद्र कार्यों से अपने इस विश्वास के पद को खो दिया होगा ? अवश्य ही गृहस्थाश्रम के गहन तत्वों को न समझ कर स्त्री-जाति ने पुरुषों को धोखा दिया होगा। यह किसी हद तक सम्भव हो सकता है। हमारी प्रवृत्ति तो यह रही है कि चाहे जैसे हो स्त्री-जाति के ऊपर अपना प्रभुत्व स्थिर रखना। जहाँ आवश्यकता पड़ी वहाँ उन्होंने परम शक्ति-रूपिणी देवी बतला दिया, जहाँ अवसर देखा वहीं कायर, भीरु और दुर्बल कह कर फटकार दिया। जहाँ आवश्यकता पड़ी उनकी प्रशंसा करदी और जहाँ इच्छा हुई वहीं उन्हें निकृष्टतम बना दिया। इस प्रकार हमने उनकी कोई पद-मर्यादा स्थिर न की। स्त्रियाँ गृह-स्वामिनी कहलाती हैं, पर आज वे गृहदासी ही हैं। वे गृह-देवी कहलाती हैं पर हैं पशुओं से भी गई बीती !

अब तो यहाँ तक हो गया है कि प्रत्येक उपयोगी कार्य में स्त्रियों का वहिष्कार किया जाने लगा। वे इस योग्य ही न समझी जाने लगीं कि, कुछ विचार भी कर सकती हैं। यह सब स्वत्वापहरण का प्रभाव है। स्त्रियों ने अपनी अतिशय सरलता और अनायतम निठुरता के कारण पुरुषों की दृष्टि में अपना सारा महत्व खो दिया। वे पद पद पर ठुकराई जाने लगीं और वात वात पर उनकी अवहेलना की जाने लगी। स्त्रियों ने इसी को अपना भाग्य समझा। पुरुषों द्वारा ठुकराई जाकर, अपने गौरव और मान को खोकर भी वे स्थिर रहीं। उन्होंने यह न सोचा कि उनका स्वत्वापहरण कर लिया गया, उन्होंने इस वात का विचार तक न किया कि स्वत्व-हीन जीवन केवल प्रतारणा-मात्र है !

स्वत्व ही शक्ति है। स्वत्व ही जीवन है। स्त्रियों ने इसी स्वत्व को खो दिया है। आज यदि वे पुरुषों की दृष्टि में नगण्य हैं, आज यदि समाज की कर्त्तव्य-पूर्ति में वे असमर्थ हैं तो इसका कारण उनकी यही शक्ति-हीनता है। जहाँ एकबार हृदय में इस बात का विश्वास होगया कि हमारा महत्व कुछ नहीं, वहाँ हम आत्म-सम्मान खो बैठे। आत्म-सम्मान खो देने पर न तो हृदय में बल अवशिष्ट रह जाता है और न कुछ साहस ही शेष रहता है।

इस स्वत्वापहरण से स्त्री-जाति की बड़ी हानि हुई है। स्त्रियों ने पुरुषों को अपना अर्द्धाङ्ग समझकर उसकी पूर्ति के लिए अपना जीवन और शरीर सब कुछ दे डाला, पुरुषों की सेवा और सहायता के लिए उन्होंने अपने व्यक्तित्व को भी मिटा दिया; किन्तु, निष्ठुर पुरुष-जाति ने उनके इस त्याग का कुछ महत्व न समझा। उन्होंने स्त्री-जाति के इस त्याग को उनकी दुर्बलता समझा—इस सर्वस्वार्पण को विवशता समझा। उन्हें विश्वास होगया कि स्त्रियों का जीवन केवल हमारी दया और अनुकम्पा पर निर्भर है। हमारे क्षणिक रोष से स्त्रियाँ पैरों तले गिर पड़ेंगी, यह भाव केवल यही प्रकट करता है कि स्त्रियाँ अपना कर्त्तव्य भूल गईं। केवल थोड़ीसी स्त्रियों की उपेक्षणीय भूलों ने स्त्री-जाति को सदा के लिए गहरी गुलामी में पटक दिया। तभी तो आज भारतीय-कुटुम्ब में स्त्री केवल दासी है—अधिक से अधिक प्रियतमा है। केवल सुख, उपभोग और शृङ्गार की सामग्री है—कार्य और व्यवहार की साधन मात्र है। न तो स्त्री के रूप में उसका सम्मान होता है और न मातृत्व के रूप में

ही उनका कुछ महत्व माना जाता है। जैसे-तैसे जीवन के दिन व्यतीत करना ही उनका इष्ट रह गया है। न तो कुटुम्ब, और न जाति तथा देश के प्रति वे अपने दायित्व को समझती हैं। पालित पशुओं की तरह उनका जीवन व्यतीत होता है और मशीन की भाँति उनसे काम लिया जाता है। कुटुम्ब के लोगों को भोजन बनाकर खिला देना घर का चौका-चूल्हा कर लेना, सन्तान उत्पन्न हो तो उसे ज्यों-त्यों कर जीवित बनाए रखना, बस यही स्त्रियों का जीवन-क्रम है। उनमें न कर्त्तव्य का ज्ञान है और न किसी दायित्व का ही ध्यान है।

स्त्रियों की इस दुर्दशा को देखकर ही एक विदेश-प्रवासी भारतीय ने लिखा था —

India's degeneration in the main, is to be attributed to our people's inequitable treatment of our women, for a backward mother can not produce progressive sons and daughter. So long as the woman's lot is not made easier—so long as her life continues to be a burden, so long as she has not the time and opportunity to improve her mind and strengthen her body.—India's uplift and regeneration will remain unaccomplished and the people will continue to remain in the downward grade.

—*Saint Nehal Singh*

यदि हम स्त्रियों के स्वत्वों का सम्मान करते, उन्हें दासी और क्रीत पदार्थों की तरह उपयोग में न लाते, उन्हें मनुष्य-प्राणी जान

कर मनुष्य जैसा व्यवहार करते तो हमारी सामाजिक परिस्थिति इस प्रकार कदापि न बिगड़ती। स्त्रियों को भी यदि अपने स्वत्वों का ध्यान होता, यदि वे साहसपूर्वक अपने निश्चय पर अटल रहतीं, यदि वे पुरुषों के बहकाने में आकर उनके प्रलोभन और आशाओं में भूलकर अपना अधिकार न खो बैठतीं तो आज पुरुष-जाति उनपर जो अत्याचार कर रही है वह दीख ही न पड़ता। स्त्रियों की यह दुर्दशा न होती और रमणी-पूज्य भारत-देश में सरे बाज़ार और खुले-मैदान स्त्रियों के भाग्य का इस प्रकार भयङ्कर निर्णय न होता।
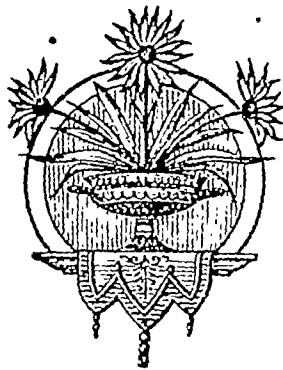
स्त्रियों की प्रतारणा या अपमान सहन

यूरुप के एक प्राचीन कवि ने लिखा है —

" They are always abusing the women,
As a terrible plague to men.
They say we are the root of all evil
And repeat it again and again.
Of war and quarrel and bloodshed
All mischief be what it may :
And pray, then, why do you marry us,
If we are all the plagues, you say
And why do you take such care of us,
And keep us safest home,
And are never easy a moment
If we chance to rome !
When you ought to be thanking Heaven
That your plague is out of the way
You all keep fusing and fretting —
" Where is my plague to-day ? "

If a plague peeps out of the window
Up goes the eye of the men
If she hides, then they all keep staring
While she looks out again."

—*Aristuphomes* (*380 B. C.*)

ईसा के ३८० वर्ष पूर्व अर्थात् अब से कोई दो सहस्र वर्ष पहले के एक कवि ने स्त्रियों की परिस्थिति और पुरुषों के उनके प्रति व्यवहार का कैसा अच्छा ख़ाका खींचा है ! हम कोई अवसर ऐसा नहीं पाते जहाँ स्त्रियों के प्रति हमारे भाव उच्च रहे हों। स्त्रियों को पास रखना हम अच्छा समझते हैं, उन्हें गृह का कार्य-भार सौंप देना भी हम ठीक समझते हैं, किन्तु हमारा यह समझना केवल स्वार्थमयी दृष्टि से भरा हुआ है। हम तो प्रति दिन देखते हैं कि पुरुष स्त्रियों के साथ सिवा सत्ता-सूचक शब्दों के बात ही नहीं करते। हमारे कुटुम्ब में स्त्री और पुरुषों के हृदय एक नहीं रहते। उनमें परस्पर सङ्कोच, छिपाव, भय और अश्रद्धा भरी रहती है। वह सुख और वह स्वाभाविकता दीख ही नहीं पड़ती, जो एक दम्पति में होना आवश्यक है। जहाँ गृहस्थाश्रम में प्रवेश करके कुटुम्ब का सङ्गठन कर कुछ सच्चा कार्य होना चाहिए वहाँ अहोरात्रि कलह और विप्लव ही मचा रहता है। एक दूसरे के दिल साफ़ ही नहीं तो तबियतों पर .ख़ुशी कैसे ज़ाहिर हो ? जहाँ मन मैला है वहाँ विचारों की पवित्रता कहाँ रह सकती है ? कुटुम्ब-सुख और गृहस्थी का आनन्द एकता में है—विरोध में नहीं ; वह

सहयोग में है—सत्ता और शासन में नहीं; सम्मान में है—प्रतारणा में नहीं।

स्त्रियों की अवस्था भी कुछ ऐसी विचित्र हो गई है कि वे इसी कलह-पूर्ण कण्टकमय जीवन में ही अपने दिन व्यतीत करती हैं। वे भी काँटा बनकर चुभने दौड़ती हैं और कलह की अधिष्ठात्री देवी बनकर पूरा महाभारत रच डालती हैं। जो व्यक्ति अपने आपको हीन और तुच्छ समझने लगेगा उसे वैसा होते कितनी देर लगेगी ? अपमान सहन करना, पुरुषों की गुलामी करना और निरन्तर पराधीनता में जीवन व्यतीत करना ही जिन्हें सुलभ एवं साध्य हो गया है उनके द्वारा नवीन जाग्रति कैसे फैल सकती है ? वे किस साहस से पुरुषों के अत्याचारों का प्रतिरोध कर सकती हैं ? उनमें शक्ति ही नहीं जो अपने दुख और दर्द को प्रत्यक्ष प्रकट करें—उनमें इतनी सहृदयता ही शेष नहीं रही जो इस गिरी हुई परिस्थिति का अनुभव करें।

आप अच्छे से अच्छे और सुशिक्षित कुटुम्ब में जाकर इस बात का पता लगाइये तो आपको मालूम होगा कि वहाँ भी स्त्रियाँ अपनी स्वाधीनता का उपभोग नहीं कर सकतीं। उन थोड़े से कुटुम्बों की बात जाने दीजिए जहाँ पुरुष स्त्रियों के गुलाम होकर स्त्रियों के पैरों का तलुवा चाटना ही अपनी परम प्रशंसा समझते हैं। अन्य अधिकांश कुटुम्बों की अवस्था पर दृष्टिपात कीजिए! आप देखेंगे कि पद-पद पर स्त्रियाँ अपमान और झिड़कियाँ सहती हैं। उनके प्रत्येक कार्य में कुछ न कुछ खोट निकाली

है। यद्यपि यह बुरा नहीं, तथापि खोट को दूर कर उनमें जो सद्‌गुण हैं, जो अच्छाइयाँ हैं उनका भी तो हम सम्मान नहीं करते। हम उन अच्छाइयों को देख कर मन ही मन जलते हैं। किसी स्त्री में सद्‌गुणों का विकास देखकर हमारी नीच वृत्ति प्रबल हो उठती है और हम अपनी स्वाभाविक प्रकृति के अनुसार उसमें लाञ्छन लगाकर—उसे सब भाँति अमानित एवँ बदनाम करके—ही चैन पाते हैं। क्या यह घोर नीचता नहीं है?

यह कहा जा सकता है कि स्त्रियों के इस अपमान-कार्य में विशेष हाथ स्त्रियों का ही है। अवश्य यह उस समय माना जा सकता था जब स्त्रियों को अपने भाग्य-निर्णय का अधिकार होता। जन्म से और बड़े होने पर्यन्त हम बालिका को अपनी रुचि के अनुकूल रखते हैं और अपनी इच्छानुसार उसके जीवन को पलट देते हैं—विवाह कर देते हैं। वहाँ भी पुरुषों की इच्छानुकूल ही स्त्रियों के आचरण होते हैं। स्त्रियों को पुरुषों का भय निरन्तर लगा रहता है। वे जो कुछ भी कहती या करती हैं उसमें पुरुषों का भय दिन रात बना रहता है। यही दीख पड़ता है कि यदि पुरुषों को अमुक बात ज्ञात हो जायगी तो अच्छा न होगा। इधर हमारे पुरुष-देव न जाने कहाँ कहाँ फिरते और न जाने क्या क्या करते हैं। कोई उनसे जवाब-तलब नहीं करता। स्वयँ उनकी करतूतों के परिणाम ही उन्हें फल-भोग कराते हैं। उनसे कोई यह पूछने का साहस भी नहीं करता कि अमुक बात ऐसे क्यों हुई?

स्त्रियों द्वारा अथवा उनके सहयोग या परामर्श से कार्य करना लोग अपना अपमान समझते हैं। मानों स्त्रियों में बुद्धि है ही नहीं अथवा वे विचार-शक्ति रखती ही नहीं। पुरुष मानों स्त्रियों से कोई सम्पर्क ही नहीं रखते। बल्कि यहाँ तक देखा गया है कि जिन कुटुम्बों में स्त्रियों के परामर्श से कोई कार्य किया जाता है तो वे कुटुम्ब बदनाम हो जाते हैं, जो व्यक्ति उनकी इच्छा से कोई काम करते हैं तो वे स्त्री-भक्त, स्त्री-दास आदि उपाधियों व विशेषणों से विभूषित किए जाते हैं। जिन माताओं की कोख से पैदा होकर पुरुष-जाति इतना अभिमान करती है उन्हीं माताओं का अपमान करते हुए उसे तनिक लज्जा और सङ्कोच नहीं मालूम होता !! जो स्त्रियाँ राष्ट्र-जननी कहलाने की हक़दार हैं, वे सबसे अधम मानी जाती हैं और काठ की पुतलियों की तरह चाहे जैसे नचा दी जाती हैं। ईश्वर ने उन्हें मनुष्य-जन्म ही वृथा दिया। उनकी आत्मा और बुद्धि, ज्ञान और विचार-शक्ति निरर्थक ही हुई।

शिलक ने लिखा है—Honour women ! The entwine and weave heavenly roses in our earthly life ! अर्थात् स्त्रियों का सत्कार करो। वे हमारे पार्थिव जीवन में स्वर्गीय कुसुम गूँथती हैं। हमारे शास्त्रों में कथित श्लोक भी बतला रहा है—

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्रा फला क्रियाः॥ मनु०॥

पर, यह तो शास्त्र की बात है—उदाहरण और आदर्श का विषय है। क्या स्त्रियाँ भी सम्मान और सत्कार के योग्य हैं? वे

है। यद्यपि यह बुरा नहीं, तथापि खोट को दूर कर उनमें जो सद्गुण हैं, जो अच्छाइयाँ हैं उनका भी तो हम सम्मान नहीं करते। हम उन अच्छाइयों को देख कर मन ही मन जलते हैं। किसी स्त्री में सद्गुणों का विकास देखकर हमारी नीच वृत्ति प्रबल हो उठती है और हम अपनी स्वाभाविक प्रकृति के अनुसार उसमें लाञ्छन लगाकर—उसे सब भाँति अमानित एवँ बदनाम करके—ही चैन पाते हैं। क्या यह घोर नीचता नहीं है ?

यह कहा जा सकता है कि स्त्रियों के इस अपमान-कार्य में विशेष हाथ स्त्रियों का ही है। अवश्य यह उस समय माना जा सकता था जब स्त्रियों को अपने भाग्य-निर्णय का अधिकार होता। जन्म से और बड़े होने पर्यन्त हम बालिका को अपनी रुचि के अनुकूल रखते हैं और अपनी इच्छानुसार उसके जीवन को पलट देते हैं—विवाह कर देते हैं। वहाँ भी पुरुषों की इच्छानुकूल ही स्त्रियों के आचरण होते हैं। स्त्रियों को पुरुषों का भय निरन्तर लगा रहता है। वे जो कुछ भी कहती या करती हैं उसमें पुरुषों का भय दिन रात बना रहता है। यही दीख पड़ता है कि यदि पुरुषों को अमुक बात ज्ञात हो जायगी तो अच्छा न होगा। इधर हमारे पुरुष-देव न जाने कहाँ कहाँ फिरते और न जाने क्या क्या करते हैं। कोई उनसे जवाब-तलब नहीं करता। स्वयँ उनकी करतूतों के परिणाम ही उन्हें फल-भोग कराते हैं। उनसे कोई यह पूछने का साहस भी नहीं करता कि अमुक बात ऐसे क्यों हुई ?

स्त्रियों द्वारा अथवा उनके सहयोग या परामर्श से कार्य करना लोग अपना अपमान समझते हैं। मानों स्त्रियों में बुद्धि है ही नहीं अथवा वे विचार-शक्ति रखती ही नहीं। पुरुष मानों स्त्रियों से कोई सम्पर्क ही नहीं रखते। बल्कि यहाँ तक देखा गया है कि जिन कुटुम्बों में स्त्रियों के परामर्श से कोई कार्य किया जाता है तो वे कुटुम्ब बदनाम हो जाते हैं, जो व्यक्ति उनकी इच्छा से कोई काम करते हैं तो वे स्त्री-भक्त, स्त्री-दास आदि उपाधियों व विशेषणों से विभूषित किए जाते हैं। जिन माताओं की कोख से पैदा होकर पुरुष-जाति इतना अभिमान करती है उन्हीं माताओं का अपमान करते हुए उसे तनिक लज्जा और सङ्कोच नहीं मालूम होता !! जो स्त्रियाँ राष्ट्र-जननी कहलाने की हक़दार हैं, वे सबसे अधम मानी जाती हैं और काठ की पुतलियों की तरह चाहे जैसे नचा दी जाती हैं। ईश्वर ने उन्हें मनुष्य-जन्म ही वृथा दिया। उनकी आत्मा और बुद्धि, ज्ञान और विचार-शक्ति निरर्थक ही हुई।

शिलक ने लिखा है—Honour women! The entwine and weave heavenly roses in our earthly life! अर्थात् स्त्रियों का सत्कार करो। वे हमारे पार्थिव जीवन में स्वर्गीय कुसुम गूँथती हैं। हमारे शास्त्रों में कथित श्लोक भी बतला रहा है—

> यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
>
> यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्रा फला क्रियाः॥ मनु०॥

पर, यह तो शास्त्र की बात है—उदाहरण और आदर्श का विषय है। क्या स्त्रियाँ भी सम्मान और सत्कार के योग्य हैं? वे

तो हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए साधन मात्र हैं। हमें उनकी आवश्यकता है, इसीलिए हम उन्हें रखते हैं। हमें उनका सहयोग अत्यन्त आवश्यक है, किन्तु इस सहयोग में समता कदापि न रहेगी। स्त्रियाँ यदि पुरुषों की बराबरी करें तो अनुचित है। हम कब कहते हैं कि वे ऐसा करें। हम तो यही पूछते हैं कि वे इस प्रकार पशुओं की तरह क्यों रखी जाती हैं। उनके जीवन के सुखोपभोग के लिए उन्हें कितनी स्वच्छन्दता दी जाती है। आप कहेंगे कि उन्हें कष्ट किस बात का है? उनके खाने और पहिरने का पूरा प्रबन्ध है, उनके शयन और निवास का काफ़ी इन्तज़ाम है। उन्हें किस बात की कमी है। वे इच्छानुसार पदार्थ पा सकती हैं और इच्छानुकूल धन और वैभव का उपयोग कर सकती हैं। ठीक है; हम मानते हैं कि ऐसा होता है। यद्यपि सभी कुटुम्बों में यह बातें नहीं पाई जाती हैं, पर हम पूछते हैं कि इच्छानुसार पदार्थ पाने पर भी क्या वे इच्छानुकूल जीवन व्यतीत कर सकती हैं। हम सामाजिक मर्यादा अथवा उचित रूढ़ियों की सीमा भी भङ्ग नहीं करना चाहते। हम इन्हीं के अन्तर्गत जीवन की बातें करते हैं। क्या स्त्री-जाति इस पद-मर्यादा के अन्तर्गत भी स्वतन्त्र है। वह गृह-स्वामिनी तो नहीं है, हाँ धरोहर या थाती की तरह वह गृह की अधिकारिणी अवश्य है। उसका समस्त सुख और वैभव पुरुषों के दृष्टिपात से ही धूल में मिल सकता है। उसकी समस्त आशाएँ और उमङ्गे पुरुषों की एक बात से ही लुप्त हो जाती हैं। ज़रा सी डाँट और फटकार से ही उनकी जीवन-नौका डगमगा जाती है। तब भला

कैसे कहा जा सकता है कि स्त्रियाँ इच्छानुकूल जीवन व्यतीत कर सकती हैं। आप उनके आगे सोने का पहाड़ बना दीजिए, किन्तु क्या वे कभी भी सुखी हो सकती हैं? आप अपनी स्वतन्त्रता खोकर विश्व का वैभव पाकर भी सुखी हो सकते हैं! ये सुख और ये धन-वैभव की बातें किस उपयोग की? यदि मनुष्य स्वाधीन है, यदि उसकी शक्ति, इच्छा, पद-मर्यादा, बुद्धि और आत्मा का सम्मान है तो वही उसके लिए सब कुछ है। उसका हृदय स्वाधीन है। सब कुछ खोकर भी वह हृदय की स्वाधीनता नहीं खोना चाहता। किन्तु, स्त्रियाँ तो पुरुषों के लिए सब कुछ दे चुकी हैं। वे अपनी स्वाधीनता पुरुषों की सुख की वेदी पर बलिदान कर चुकी हैं। हम इस बलिदान को महत्व नहीं देते। हमें यह त्याग रुचिकर प्रतीत नहीं होता। यह तो आत्म-हनन है। अपने प्राकृतिक अधिकारों को पुरुषों के निरर्थक सुख और सन्तोष के लिए बलि दे बैठना कोई उत्तमता नहीं। यह तो अवनति का चिन्ह है। इसे जीवन नहीं कह सकते। स्त्रियों ने अपने इसी दुर्गुण के कारण अपनी हस्ती मिटा-सी दी है। हम स्त्रियों को मनुष्य-कोटि में कैसे गिनें? "साहित्य सङ्गीत कलाविहीनः साक्षात् पशुः पुच्छ विषाण हीनः" बस, ठीक यही दशा स्त्रियों की है। पशु भी एक बार स्वाधीनता का उपभोग कर सकता है, किन्तु स्त्रियाँ तो जन्म से ही पराधीन मानी जाती हैं।

भारतीय रमणियों के सम्बन्ध में विचार करते हुए East & West में एक बार लिखा था कि जिस जाति की आधी जन-संख्या

तो हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए साधन मात्र हैं। हमें उनकी आवश्यकता है, इसीलिए हम उन्हें रखते हैं। हमें उनका सहयोग अत्यन्त आवश्यक है, किन्तु इस सहयोग में समता कदापि न रहेगी। स्त्रियाँ यदि पुरुषों की बराबरी करें तो अनुचित है। हम कब कहते हैं कि वे ऐसा करें। हम तो यही पूछते हैं कि वे इस प्रकार पशुओं की तरह क्यों रखी जाती हैं। उनके जीवन के सुखोपभोग के लिए उन्हें कितनी स्वच्छन्दता दी जाती है। आप कहेंगे कि उन्हें कष्ट किस बात का है? उनके खाने और पहिरने का पूरा प्रबन्ध है, उनके शयन और निवास का काफ़ी इन्तज़ाम है। उन्हें किस बात की कमी है। वे इच्छानुसार पदार्थ पा सकती हैं और इच्छानुकूल धन और वैभव का उपयोग कर सकती हैं। ठीक है; हम मानते हैं कि ऐसा होता है। यद्यपि सभी कुटुम्बों में यह बातें नहीं पाई जाती हैं, पर हम पूछते हैं कि इच्छानुसार पदार्थ पाने पर भी क्या वे इच्छानुकूल जीवन व्यतीत कर सकती हैं। हम सामाजिक मर्यादा अथवा उचित रूढ़ियों की सीमा भी भङ्ग नहीं करना चाहते। हम इन्हीं के अन्तर्गत जीवन की बातें करते हैं। क्या स्त्री-जाति इस पद-मर्यादा के अन्तर्गत भी स्वतन्त्र है। वह गृह-स्वामिनी तो नहीं है, हाँ धरोहर या थाती की तरह वह गृह की अधिकारिणी अवश्य है। उसका समस्त सुख और वैभव पुरुषों के दृष्टिपात से ही धूल में मिल सकता है। उसकी समस्त आशाएँ और उमङ्गें पुरुषों की एक बात से ही लुप्त हो जाती हैं। ज़रा सी डाँट और फटकार से ही उनकी जीवन-नौका डगमगा जाती है। तब भला

कैसे कहा जा सकता है कि स्त्रियाँ इच्छानुकूल जीवन व्यतीत कर सकती हैं। आप उनके आगे सोने का पहाड़ बना दीजिए, किन्तु क्या वे कभी भी सुखी हो सकती हैं ? आप अपनी स्वतन्त्रता खोकर विश्व का वैभव पाकर भी सुखी हो सकते हैं ! ये सुख और ये धन-वैभव की बातें किस उपयोग की ? यदि मनुष्य स्वाधीन है, यदि उसकी शक्ति, इच्छा, पद-मर्यादा, बुद्धि और आत्मा का सम्मान है तो वही उसके लिए सब कुछ है। उसका हृदय स्वाधीन है। सब कुछ खोकर भी वह हृदय की स्वाधीनता नहीं खोना चाहता। किन्तु, स्त्रियाँ तो पुरुषों के लिए सब कुछ दे चुकी हैं। वे अपनी स्वाधीनता पुरुषों की सुख की वेदी पर बलिदान कर चुकी हैं। हम इस बलिदान को महत्व नहीं देते। हमें यह त्याग रुचिकर प्रतीत नहीं होता। यह तो आत्म-हनन है। अपने प्राकृतिक अधिकारों को पुरुषों के निरर्थक सुख और सन्तोष के लिए बलि दे बैठना कोई उत्तमता नहीं। यह तो अवनति का चिन्ह है। इसे जीवन नहीं कह सकते। स्त्रियों ने अपने इसी दुर्गुण के कारण अपनी हस्ती मिटा-सी दी है। हम स्त्रियों को मनुष्य-कोटि में कैसे गिनें ? "साहित्य सङ्गीत कलाविहीनः साक्षात् पशुः पुच्छ विषाण हीनः" बस, ठीक यही दशा स्त्रियों की है। पशु भी एक बार स्वाधीनता का उपभोग कर सकता है, किन्तु स्त्रियाँ तो जन्म से ही पराधीन मानी जाती हैं।

भारतीय रमणियों के सम्बन्ध में विचार करते हुए East & West में एक बार लिखा था कि जिस जाति की आधी जन-संख्या

दासत्व में हो, उसका बड़ा होना असम्भव है। दासता में यद्यपि सम्मान नहीं है, तथापि स्त्रियों की परिस्थिति से वह कहीं अच्छी है। जहाँ सीता सावित्री जैसी भारतीय रमणियों के आदर्श चरित्रों को पढ़कर विदेशी स्त्रियाँ कामना करती हैं कि भगवान् हमें भी भारत में जन्म दें, वहाँ भारत की स्त्रियाँ इस बात की ईश्वर से प्रार्थना करती हैं कि हे भगवन् ! स्त्री का जन्म कदापि न देना।

अपमान और प्रतारणा सहते-सहते स्त्रियों के हृदय शून्य हो गए हैं। उनकी समवेदना-शक्ति क्षीण हो गई है। स्त्रियों की इस दुर्बलता से पुरुषों ने अनुचित लाभ उठाया है। वे अब स्त्रियों को तुच्छ प्राणी समझने लगे हैं। आगे चल कर स्त्रियों पर होने वाले विविध अत्याचारों का उदाहरणों सहित वर्णन तो होगा ही, पर यहाँ भी यह लिख देना अनुचित न होगा कि पुरुष-जाति की दृष्टि में स्त्रियों का पद बहुत क्षुद्र है। उनके लिये वह विलास की सामग्री हैं। व्यावहारिक दृष्टि से वह दासी-रूपिणी हैं। पुरुषों की 'येन केनप्रकारेण' मूक भाव से सेवा करना ही उनका कर्त्तव्य है। तभी तो आज पुरुषों की दृष्टि में स्त्रियों का कोई सम्मान नहीं रह गया है। इसी लिये तो वे जहाँ-तहाँ उन्हें अपमानित कर और उनका सर्वस्व छीनकर उन्हें दर दर का भिखारी बना देते हैं। किसी ने सत्य कहा है कि जब तक हमारे हृदयों में स्त्रियों की इज्ज़त और पवित्रता जगह न कर लेगी, तब तक हमारी कोई असली उन्नति न होगी। क्योंकि माता के पैर के नीचे ही स्वर्ग है। शक्ति-रूपिणी स्त्री-जाति पतित-समाज का क्षण भर में उद्धार कर सकती है।

स्वीकृत पराधीनता

धीनता और पराधीनता का प्रायः विचित्र अर्थ किया जाता है। कदाचित् लोगों की दृष्टि में स्वाधीनता का अर्थ यही है कि स्त्रियाँ परदा इत्यादि छोड़कर पुरुषों की तरह सरे-बाज़ार घूमने-फिरने लगें और पुरुषों की तरह वे स्वच्छन्दतापूर्वक समस्त व्यवहार करने लगें। अवश्य ही जो लोग घूमने फिरने को ही स्वाधीनता समझते हैं, उनके लिए स्वाधीनता से यही तात्पर्य है। किन्तु, वे यह नहीं सोचते कि घूमने-फिरने के लिए तो मनुष्य भी घूमता-फिरता है। वह जहाँ चाहे जाता है और जो चाहे कहता या करता है। फिर भी जब वह स्वाधीनता की कामना करता है तो एक आश्चर्य की बात जान पड़ती है। बात यह है कि स्वाधीनता स्वच्छन्दतापूर्वक घूमने-फिरने में ही नहीं है; वह तो है अधिकार में, स्वत्व में और अपने हक़ में।

जहाँ हमारे लिए प्रत्येक कार्य दूसरों की दृष्टि से होता है, हमारे स्वत्वों का उपभोग दूसरों द्वारा किया जाता है तो स्वाधीनता का मूल्य भी हमें नहीं मालूम होता है। आप तो चाहते हैं कि अमुक कार्य इस प्रकार किया जाय, पर वह किया दूसरी तरह

जाता है। आप की इच्छा है कि यह बात इस भाँति हो, किन्तु की
वह और ही ढङ्ग से जाती है—तब वहाँ यह अनुभव होता है कि
यदि हमारी चलती, यदि हमारे पास इतनी शक्ति या अधिकार होता
तो हम अमुक कार्य इसी भाँति करते। इस प्रकार जब हमारे
सम्मुख स्त्रियों की स्वाधीनता या पराधीनता का विषय आता है
तो हम सोचते हैं कि स्त्रियों का हक़ क्या चीज़ है। हम तो यह
मान बैठे हैं कि स्त्रियाँ केवल पुरुषों की दासी हैं। उनमें न
तो स्वाधीन बुद्धि है और न स्वतन्त्र विचार-शक्ति। कोई कार्य वे
उत्तमतापूर्वक नहीं कर सकतीं। हाँ, भोजन इत्यादि गृह-कार्यों में
वे अवश्य ही निपुण हो सकती हैं। किसी गम्भीर विषय पर वे
निश्चयपूर्वक विचार नहीं कर सकतीं और न किसी कठिन
अवसर पर अपनी दूर-दर्शिता का ही परिचय दे सकती हैं। तभी
तो हम भारतीय स्त्री-समाज में देखते हैं कि उनका हाथ केवल गृह
के थोड़े से कार्यों को छोड़कर—जिनका करना पुरुष अपने लिए
घृणित, भार अथवा उपेक्षणीय और कठिन समझता है—किसी
कार्य में नहीं रहता।

हम देखते हैं कि गृह की बड़ी से बड़ी समस्या बिना स्त्रियों
के विचार के ही बाहर ही बाहर हल कर दी जाती है। यहाँ तक
कि जिन बातों पर स्त्रियों का सुख और सौभाग्य निर्भर है, उनमें
भी उनकी सम्मति की आवश्यकता नहीं समझी जाती। बेचारी
स्त्री-जाति गँवार है, उसमें इतनी बुद्धि कहाँ जो इन बातों को
समझ सके। बस, यही कह कर टाल दिया जाता है। अनेकानेक

ऐसे गुरुतर कार्य हो जाते हैं, जिनमें स्त्रियों के जीवन-मरण का प्रश्न् उपस्थित होता है, पर उनमें भी स्त्रियों का कोई हक़ नहीं। उनका भाग्य और जीवन-मरण सब पुरुषों के हाथ में है। हाँ, वे तो ऐसा ही समझते हैं। तभी तो घर की किसी बात पर स्त्रियों को बात करते देख कर पुरुष एक फटकार बतला देते हैं कि तुम औरत की जाति हो, तुम्हें इन बातों से क्या मतलब ? पुरुषों के बीच में तुम्हें कुछ कहने का क्या अधिकार ? फिर चाहे उसी बात के लिए वे बैठ कर अन्त में भले ही रोएँ और फिर स्त्री को भी चाहे सब विपदा सुनाएँ, पर पहले मियाँ साहब अकड़ अवश्य ही जाते हैं। उन्हें औरतों से सलाह लेते और उनकी स्वतन्त्र अभिलाषाओं पर विचार करते उन्हें ग्लानि प्रतीत होती है।

इसी का यह परिणाम है कि स्त्री-जाति मूकवत् हो रही है—उसे न है अपने दुख-सुख की कुछ परवाह और न अपने आप की कुछ चिन्ता। फलतः उनकी स्वतन्त्र प्रतिभा नष्ट होगई है और उनका जीवन अतिशय परावलम्बी और पर-सुख निर्भर हो गया है। विपत्ति पड़ने पर वे घबड़ा जाती हैं, अकेली रहने पर वे फड़फड़ा उठती हैं, बाहर निकलते हुए उन्हें मूर्च्छा-सी आती है। जरा कोई कष्ट पड़ा कि वे सिवा रोने-पीटने और अपनी अज्ञानता से दुख को दूना बढ़ा देने के अतिरिक्त कुछ नहीं कर सकतीं।

इन बातों को सोचकर हम कह सकते हैं कि स्त्रियों ने यह पराधीनता स्वयँ स्वीकार कर ली है। यह हो सकता है कि स्त्रियों को अपने अधिकार में रखने के लिए पुरुषों ने खूब प्रयत्न किया हो

और उन्हें निर्जीधन बना लिया हो। किन्तु, स्त्रियों ने यह कैसे भुला दिया कि वे भी मनुष्य हैं और मनुष्यता के नाते उन्हें भी हर बात कहने-सुनने का अधिकार है। वे क्यों पशुओं से भी बदतर बन गईं कि चाहे जहाँ ढकेल दी गईं और चाहे जिस प्रकार सता ली गईं। यदि आप आदर्शों और उदाहरणों के प्रेमी हैं तो प्राचीन इतिहास को पलट देखिए। राजस्थान के इतिहास में स्त्रियों की एक दो नहीं, सैकड़ों ऐसी घटनाएँ उपस्थित हैं, जहाँ उन्होंने अपनी स्वतन्त्र विचार-शक्ति से कार्य लिया है। कोई कारण नहीं कि पुरुष उनके मनुष्यता के अधिकार को छीन लें। क्या वजह है कि वे मुँह भर के बात भी न कर पाएँ। क्यों वे इस प्रकार भेड़ों की तरह हाँक दी जाएँ ? यदि उन्हें जन्म लेने का अधिकार है तो इच्छानुसार जीवन धारण करने का भी अधिकार है। उन्हें जीना और मरना दोनों ही का ज्ञान होना चाहिए। जो ज़िन्दा रहना नहीं जानता उसे मरने का मज़ा कैसे मालूम हो सकता है ?

एक प्रकार से तो स्त्रियाँ स्वयँ ही अपनी स्वाधीनता खो बैठी हैं। उन्होंने कुछ ऐसे धार्मिक बन्धन बना लिए हैं जिनमें वे स्वयँ ही जकड़ी रहती हैं। अनेक कथाएँ और गाथाएँ रच रच कर और पुरुषों को सुना सुना कर वे स्वयँ अपना महत्व खो बैठी हैं। अपनी कमज़ोरी, अनभिज्ञता और सरलता बतलाकर उन्होंने अपने आप को पुरुषों के हाथ में अर्पण कर दिया है। अब तो उनका यह धार्मिक विश्वास हो गया है कि वे पुरुष-जाति के प्रतिकूल—चाहे उसका परिणाम दोनों के अनुकूल ही हो—कुछ भी नहीं कर

सकतीं। पुरुष उन्हें जिस प्रकार रखेंगे वे रहेंगी, और वे जो कुछ कहेंगे करेंगी। अवश्य ही आज्ञा-पालन की यह प्रवृत्ति बहुत अच्छी है, किन्तु इसका दुरुपयोग तो न होना चाहिए। पति की आज्ञा मानना स्त्री का धर्म है, किन्तु पति को आज्ञा देने के अनुकूल बनाना भी तो स्त्री का धर्म है। क़ानून का तो फ़र्ज़ है कि अपराधी को दण्ड दे, किन्तु क़ानून वालों का भी फ़र्ज़ है कि वे अवस्था देखकर ही उसका उपयोग करें।

न जाने कितनी अबलाएँ पुरुषों के अत्याचारों को चुपचाप सहन करती जाती हैं। वे रात-दिन चुपके चुपके आँसू बहाया करती हैं, किन्तु उन के प्रतिकार के लिए कुछ भी नहीं करतीं। न तो घर में और न बाहर ही उन्हें अपने दुखों को खुल कर प्रकट करने की स्वाधीनता प्राप्त है। पुरुष तो भोजन के समय और शयन के समय स्त्रियों की आवश्यकता का अनुभव करता है इसके अति-रिक्त तो स्त्री उसे भार-स्वरूप जान पड़ती है। उसका निर्वाह उस के लिए महान् कष्टकर हो जाता है। अवसर पड़ने पर तभी तो वे स्त्रियों को ऐसी झिड़कियाँ देते हैं कि बाई जी का दिमाग़ ठीक होजाता है—उन्हें ज्ञात हो जाता है कि वे क्या चीज हैं, मनुष्य होकर भी वे किस मूक भावसे पशुओं का अनुसरण करती हैं। हाय री दुर्बलता!

स्त्रियों की सुकुमारता, कोमलता और चञ्चलता ने स्त्रियों को घोर लज्जा की रस्सी से जकड़कर ऐसा फाँसा है कि उससे उनका छूटना कठिन हो रहा है। जहाँ वह ज़माना था कि स्त्रियाँ शक्ति-रूपिणी देवियाँ मानी जाती थीं, जहाँ वे खुले मैदान पुरुषों का

सामना कर सकती थीं, जहाँ वे रणाङ्गन में अपने कुटुम्बियों का बलिदान देखकर स्वयँ वीर-गति को प्राप्त होती थीं आज वही भारतीय स्त्रियाँ केवल कोमलाङ्गि, सुकुमार और नाज़नीं कहलाने में ही अपनी शोभा समझती हैं। वे जितनी कोमल समझी जाँय उतना ही अच्छा, वे जितनी ही ज्यादा नाज़ुक हों उतनी ही तारीफ़!

तभी तो हम देखते हैं कि अब स्त्रियाँ वास्तव में कवियों की उपमा के उपयुक्त हो रही हैं। कवियों ने शृङ्गार-वर्णन में स्त्रियों के जिस सुकुमार-सौन्दर्य का वर्णन किया है, स्त्रियाँ उससे कहीं बढ़-चढ़ रही हैं। यदि यह न होता तो आज स्त्रियाँ इतनी निस्सहाया कैसे हो जातीं कि इन बढ़ते हुए अत्याचारों के विरुद्ध चूँ तक नहीं करतीं। वे तो अपने आप को नाज़नी और कोमलाङ्गि बनाने में ही तारीफ़ समझती हैं। अब तो ज़रा सेही परिश्रम से वे हाँफ़ कर बैठ जाना चाहती हैं। बाज़ार-हाट जाते समय वह नज़ारा दिखलाएँगी, वह शोख़ियाँ बतलाएँगी कि देखने वालों का दिल आप ही उन पर आशिक़ हो जाय। उनकी वह लचक और दमक देखकर उनका हाथ आप ही उन पर उठने के लिए उतारू हो जाय। क्या वजह है कि उनकी आँखों में वह तेज नहीं जिनकी तरफ़ निहारने का किसी को साहस न हो। उनका वह तेज और पावित्र्य कहाँ गया, जिसके कारण वायुमण्डल इतना पवित्र रहता था कि स्त्रियों को देखकर पुरुषों को उनके प्रति दुर्विचार धारण करने का अवसर ही न प्राप्त होता था?

हम तो इसे आत्म-दुर्बलता बतलाएँगे। कुछ तो अङ्गरेज़ी शिक्षा-प्राप्त पुरुषों के सहयोग से, कुछ अपनी असामयिक एवँ अनुप-

योगी शिक्षा के प्रभाव से, कुछ सभ्यता के संसर्ग से और कुछ अपने महत्व को भूल जाने के कारण स्त्रियों ने अपने आप को अतिशय निस्सहाय अवस्था में कर लिया है। हम यह कदापि मानने के लिए तैयार नहीं है कि केवल पुरुषों ने ही उनकी सभी अवस्था नष्ट कर दी है। नहीं, पुरुषों ने तो उन्हें बरबाद करने में कुछ कसर रखी ही नहीं है, परन्तु साथ ही स्त्रियों ने भी अपनी शक्ति खो दी है। वे अपने वास्तविक गौरव को भुला बैठी हैं अन्यथा यदि वे अपने स्थान पर दृढ़ रहतीं, यदि वे समय के प्रवाह में पड़कर इस प्रकार न बह जातीं, तो उनकी इस कमजोरी का लोग अनुचित लाभ न उठाते। स्त्रियाँ तो अपना कर्त्तव्य स्वयँ ही भुला बैठीं हैं। स्मरण रहे गृह-कार्य कर लेना ही स्त्रियों का कर्त्तव्य नहीं है, वरन् कर्त्तव्य की दौड़ तो इसके भी आगे है। जिस देश में वे पाली पोषी गई हैं और जिस योनि में उन्होंने जन्म लिया है, उसकी ओर भी तो उनका कुछ कर्त्तव्य है। उसके स्वत्व और अभिमान की रक्षा करना भी तो उनका धर्म है। बन्धुत्व के भरोसे में आकर स्त्रियाँ अपने स्वत्व खो बैठीं, अपनी स्वतन्त्रता और सम्पत्ति खो बैठीं! अपना सर्वस्व दूसरों को अर्पण कर, दूसरों पर अपने जीवन के समस्त कर्त्तव्य बलिदान कर, वे अपने अस्तित्व को यों, मिटा बैठीं! जो लज्जा न केवल लज्जा है, प्रत्युत् गुण है, धर्म है और सब से पवित्र आभा है, उस ही का दुरुपयोग कर वे अपने स्वत्व को खो बैठीं! यह सब स्त्रियों की ही स्वीकृत-पराधीनता है जो उन पर अत्याचार करा रही है।

क्या यही पौरुष है ?

म्न-लिखित घटनाओं को ध्यानपूर्वक पढ़िए :—

"बूँदी राज्य की एक निज़ामत हिण्डाली है। इसके नाज़िम हैं श्री० धन्नालाल। आप अत्याचारों के लिए रियासत में सबसे अधिक प्रसिद्ध हैं। आप के ज़ेर हुकूमत नेणवा एक क़स्बा है। इस क़स्बे में जमनालाल महाजन की सच्चरित्र युवती लड़की अपनी माता आदि सहित रहती है। कर्मचारी इस लड़की से रुष्ट हो गए। (क्यों ? इसीलिए कि वह उनके लोलुप में न फँसी)। फिर क्या था, उस पर हामिला (गर्भवती) होने का झूठा आरोप लगा कर वह गिरफ़्तार कर ली गई। बेचारी निरपराध होने पर भी इस घटना से बदनाम हो जाति-वहिष्कृत हो गई। उसके माता-पिता बूँदी पहुँचे। वहाँ सुनवाई हुई और लड़की की जाँच आदि हो वह निर्दोष प्रमाणित हुई। पश्चात् बूँदी जाकर फ़रियादी होने के अपराध में उस लड़की के माता-पिता क़ैद हो गए। फिर उस लड़की पर व्यभिचार का आरोप लगा कर उसे क़ैद कर लिया गया। अन्त में जिसके लिए आरोप लगा था, उसके अपनी निर्दोषिता प्रमाणित करने पर लड़की का ज़मानत पर छोड़ी जाना तय हुआ। ज़मानत भी दे दी गई, किन्तु लड़की ला पता कर दी गई। बेचारी माता एजेन्सी और रियासत में ख़ाक छानती फिरती है। उसी की दरख़्वास्तों और तारों के आधार पर यह कच्चा चिट्ठा लिखा गया है।"

* * *

"अहमदाबाद के दौरा-जज ने आठ आदमियों को अपराधी ठहरा कर जेल और जुर्माने का दण्ड दिया। उन्होंने लल्लूभाई नामक एक ५२ वर्ष के बूढ़े ओसवाल को एक विधवा से शादी कराकर ठगा था। यह ओसवाल भयन्दर में नमक का काम करता है। तीन वर्ष पहले उसकी पहली औरत मर गई। इस पर उसने भाई शङ्कर नामक प्रथम अभियुक्त को रुपया देकर शादी कराने के लिए ठीक किया। उस पर उसका पूरा विश्वास था। भाई शङ्कर गुजरात आदि स्थानों में बहुत घूमा, परन्तु औरत हाथ न लगी। उसने १६१६ के मई महीने में शादी के ५ और दलालों की मार्फ़त ओसवाल की शादी श्रीमाली नामक आनन्द के बनिये की लड़की दिवाली से करा दी। लड़की का भाई और माँ दोनों इस काम में शरीक थे। दिवाली विधवा थी। जब लल्लूभाई को उसके विधवा होने की ख़बर लगी तो उसने अभियुक्तों पर नालिश ठोंक दी। अभियुक्तों को दण्ड और जुर्माना हुआ। दिवाली ने कहा कि मैं शादी नहीं करना चाहती थी। भाई वग़ैरा ने मुझे विवश कर रुपये के लिए मेरा विवाह करना चाहा। जज ने फ़ैसला सुनाते हुए कहा कि यह बुड्ढा शादी का बड़ा भूखा था......इसने बड़ी ही मूर्खता दिखाई है......इसने अपने बाल काले किए थे....."

* * *

"हाल ही का ताज़ा मामला है। बम्बई में दो तीन धनाढ्य सेठ क़रीब १० या १२ महीनों से रँडुए हो गए हैं। उनको दो तीन महीनों से विवाह करने की धुन समाई है। पुत्रों और पौत्रों के होते हुए तथा सब प्रकार के सुख-साधनों के उपस्थित रहने पर भी, वे अब ढलती अवस्था में स्त्री-सुख के लिए अन्धे बन रहे हैं!

सीकर राज्यान्तर्गत फ़तहपुर में एक वैश्य की लड़की के लिए, जिसके माता-पिता और दो तीन भाई-बहिन विद्यमान हैं, वे महापुरुष विशेष लालायित हो रहे हैं। लड़की क़रीब १४-१५ वर्ष की सुन्दरी, रूपवती, हृष्ट-पुष्ट और नई नवेली नवयौवना है। उसी लड़की पर नीलामी-डाक मारने के सन्देशे भुगत रहे हैं। विश्वस्तसूत्र से पता लगा है कि एक धनाढ्य ने, जिसके दो एक लड़के-लड़की मौजूद हैं और उसी ग्राम का रहने वाला है, १०,०००) की डाक दी है। एक दूसरा धनाढ्य भी, जो शिक्षित व सुधारक पुत्रों का पिता तथा पौत्र-पौत्र्यादिकों का दादा है और हाल ही में भयङ्कर बीमारी से जीवित बच निकला है, उसी फेर में है। स्त्री का लालच बड़ा बुरा होता है, आपने झट से ११,०००) या १२,०००) रु० के क़रीब कह दिया और येन-केन-प्रकारेण वर-माला स्वयं पहिरने का दाव-पेच रचना शुरू कर दिया। लड़की वाले भी इन स्त्री-लोलुपों की उत्कट इच्छा देखकर इतने कम मोल पर १४ वर्ष की बनी बनाई स्त्री बेचना मूर्खता समझे और Any more (और कोई ज़्यादा देने वाला है) की आवाज़ कसने लगे। इसी से सुनते हैं एक तीसरे धनवान व्यक्ति ने १५,०००) रु० की बोली दे दी है। दोनों तीनों तरफ़ से मामला तय होने की बड़ी सरगर्मी के साथ कोशिशें चल रही हैं और सम्भव है इनमें से शीघ्र ही कोई न कोई व्यक्ति उस नीलामी लड़की को ख़रीदने में समर्थ हो।"

* * *

"इटावे की सिविल लाइन्स में इटावा डिविज़न के इञ्जीनीयर मि० राजनारायन के यहाँ बरेली का शिवचरन सक्सेना नामक एक कायस्थ मास्टर उनकी लड़कियों को पढ़ाया करता था। वह अपनी स्त्री के साथ

इञ्जीनियर साहब के अहाते में ही रहता था। अचानक एक दिन उसने अपनी स्त्री इलाहाबाद ज़िले के एक गाँव में भेज दी। एक सप्ताह के बाद उसने एक युवती विवाहिता कहारिन भगाकर अपनी औरत के पास भेज दी। पीछे अपनी स्त्री की बीमारी का बहाना कर वह भी इटावे से रवाना हो गया। कहारिन का पति भी उसके साथ चुपके से हो लिया। गाँव में उसने अपनी स्त्री के साथ उसे जा पकड़ा। अभियुक्त को तीन महीने की सख़्त क़ैद और ५०) रु० का जुर्माना हुआ।"

* * *

"उस दिन इलाहाबाद हाईकोर्ट के जज सर जार्ज नॉक्स ने गोरखपुर के उस मामले की अपील सुनी, जिसमें वहीं के दौरा-जज द्वारा अभियुक्त भवभूतिसिंह को स्त्री पर आक्रमण तथा ज़बरदस्ती करने के कारण अलग-अलग एक वर्ष की कड़ी क़ैद और जुर्माने का दण्ड हुआ था। जुलाई, १९१७ में भवभूति का एक गहना खो गया था। उसने एक आदमी की सलाह से अन्धी मुसम्मात जयपलिया पर सन्देह किया। उसे नङ्गी कर, उसे बाँस की छड़ी से ख़ूब ही पीटा। फिर वह उसे बिना कपड़ा पहनाए मकान की ओर ले चला। राह में उसने मुसम्मात को एक कुएँ में ढकेल दिया। हाईकोर्ट ने निर्णय किया कि यह धारणा मिट जानी चाहिए कि स्त्री का कपड़ा उतारना एक साधारण काम है और उसकी लज्जा भङ्ग करना कोई कठिन काम नहीं। दौरा-जज का फ़ैसला बहाल रक्खा।"

* * *

"सिराजगञ्ज थाने के अन्तर्गत जनई नामक स्थान को दो औरतें जा रही थीं। राह में एक आदमी ने ज़बरदस्ती उनके कपड़े छीन लिए। नङ्गी औरतें जङ्गल की ओर भाग निकलीं। भाग्य से उन्हें एक दयालु

आदमी मिल गया। उसने उन्हें चादर दे दी। यदि वह आदमी कपड़ा न देता तो उन बेचारियों को कई रातें दुख से काटनी पड़तीं।"

* * *

"अहमदनगर ज़िले के नारायणगञ्ज स्थान में एक व्यक्ति कृष्ण अपने जवान पुत्र भाऊ और उसकी व्याही नव-युवती पत्नी अर्थात् अपनी पुत्र-बधू सहित रहता था। इस वर्ष के आरम्भ में भाऊ को मालूम हुआ कि पिता ने उसकी स्त्री से व्यभिचार किया है। इसकी शिकायत भाऊ ने अपने गाँव वालों से की और पिता से भी इसी बात पर तकरार हुई। परन्तु, पिता ने अपनी पुत्र-बधू से व्यभिचार करना न छोड़ा। तब भाऊ ने ऐसे पिता को मार डालना ही उचित समझा और अपने एक चचेरे भाई की सहायता से उसने अपने पिता को गला घोट कर मार डाला।"

* * *

एक जानकार महाशय लिखते हैं—"सावधान ! हिन्दुओ अत्याचार की भी कोई सीमा होती है। शिवरात्रि के समय तारकेश्व जाना, रण्डियों को साथ में लेकर तथा शराब, भाँग व गाँजा पीकर मौ उड़ाना, क्या इसी का नाम धर्म है? अपनी आमदनी को अच्छे कार्य में लगान शायद इसी को कहते हैं ! बाप-दादों का नाम बढ़ाने का अच्छा तरीक़ है। वहाँ जाकर यदि वेश्या-विहारी लोगों की किसी ने प्रशंसा न की तं इन लोगों के चित्त में बहुत खेद होता है। इसीलिए ये लोग अपने सा दो दो, तीन तीन वेश्याओं को लेकर जाते हैं। वे वहाँ बेलपूकर (रास्ते क नाम) में जाकर ठहरते हैं व एक एक कमरे का १०-१२ रु० तक एक रा के वास्ते किराया देते हैं। वे रात्रि के समय रोशनी करके व उन वेश्याओं को साथ में लेकर नशे में आँखें चढ़ाए हुए साक्षात् कलियुग के सुपुत्र ब

बैठे रहते हैं। इन्हीं लोगों को देखने के वास्ते कुछ बूढ़े भी सींग कटा कर बछड़ों में मिल जाते हैं। प्रातःकाल युवक लोग अपनी अपनी रण्डियों को साथ लेकर जङ्गल में उनको पाख़ाना फिराने ले जाते हैं। जब कहीं रास्ते में कीचड़ इत्यादि मिलता है तो ये लोग बीबी साहिबों को गोद में उठा लेते हैं, जिसमें उन लोगों के जूतों में कीचड़ न लग जाय। उस वक़्त का दृश्य अपूर्व ही मालूम होता है। उसके बाद तालाब में, जो कि मन्दिर की बग़ल में लगा हुआ है, साथ ही साथ स्नान करके गीली धोतियों से अपनी अपनी बीवियों को दर्शन कराने के लिए भीड़ में लेकर घुसते हैं। उसी भीड़ में कतिपय ग़रीब परदेशी गृहस्थ-औरतें धार्मिक-भाव वाली भी होती हैं, जिनकी दुर्दशा का अन्त नहीं रहता है। यदि उन गृहस्थ-औरतों में कुछ जवान होती हैं, तब तो उनका सब से ज़्यादा शोचनीय परिणाम होता है।"

इन उदाहरणों को पढ़कर आप सहज ही जान सकेंगे कि पुरुषों का पुरुषत्व अब कहाँ तक ऊँचा पहुँच गया है। जिस समाज में ऐसे पुरुष हों, वहाँ स्त्रियाँ कैसे सुखी व सन्तुष्ट रह सकती हैं ? व्यभिचार और दुराचार करने में, स्त्रियों को घर में बन्द रखने और उन पर मनमाने जुल्म ढाने में ही अब पुरुषों का पुरुषत्व काम आता है। जब जब उन्हें अपने पुरुषत्व का ख्याल आता है तब तब वे अधिक से अधिक स्त्रियों के साथ जुल्म और अन्याय कर अपनी बहादुरी दिखलाना चाहते हैं। स्त्रियों पर लाल-पीले होने, उन्हें मारने-पीटने और उनकी लज्जापहरण में ही पौरुष का माहात्म्य है। भगवान् ऐसे समाज का भला करें !

यह आदमी मिल गया। इसने उन्हें आठ रु० दे दिये। यदि यह आदमी साथ न देता तो इन बेचारियों को कई रातें दुःख से काटनी [illegible]।"

* * *

"अहमदनगर ज़िले के नारायणगाँव स्थान में एक व्यक्ति कृष्ण साबे अपने पुत्र भाऊ और उसकी स्त्री [illegible] अर्थात् अपनी पुत्र-वधू सहित रहता था। इस वर्ष के आरम्भ में भाऊ को मालूम हुआ कि पिता ने उसकी स्त्री से व्यभिचार किया है। इसकी शिकायत भाऊ ने अपने गाँव पाटील से की और पिता से भी इसी बात पर तकरार हुई। परन्तु, पिता ने अपनी पुत्र-वधू से व्यभिचार करना न छोड़ा। तब भाऊ ने ऐसे पिता को मार डालना ही उचित समझा और अपने एक भाई की सहायता से उसने अपने पिता को गला घोट कर मार डाला।"

* * *

एक अखबार महाशय लिखते हैं—"भगवान! हिन्दुओं के अत्याचार की भी कोई सीमा होती है। शिवरात्रि के समय तारकेश्वर जाना, रण्डियों को साथ में लेकर तथा शराब, भाँग व गाँजा पीकर मौज उड़ाना, क्या इसी का नाम धर्म है? अपनी आमदनी को अच्छे कार्य में लगाना शायद इसी को कहते हैं! बाप-दादों का नाम चलाने का अच्छा तरीका है। वहाँ जाकर यदि वेश्या-बिहारी लोगों की किसी ने प्रशंसा न की तो इन लोगों के चित्त में बहुत खेद होता है। इसीलिए ये लोग अपने साथ दो दो, तीन तीन वेश्याओं को लेकर जाते हैं। वे वहाँ बेलपुकर (रास्ते का नाम) में जाकर ठहरते हैं व एक एक कमरे का १०-१२ रु० तक एक रात्रि के वास्ते किराया देते हैं। वे रात्रि के समय रोशनी करके व उन वेश्याओं को साथ में लेकर नशे में आँखें चढ़ाए हुए साक्षात् कलियुग के सुपुत्र बने

बैठे रहते हैं। इन्हीं लोगों को देखने के वास्ते कुछ बूढ़े भी सींग कटा कर बछड़ों में मिल जाते हैं। प्रातःकाल युवक लोग अपनी अपनी रण्डियों को साथ लेकर जङ्गल में उनको पाख़ाना फिराने ले जाते हैं। जब कहीं रास्ते में कीचड़ इत्यादि मिलता है तो ये लोग बीबी साहिबों को गोद में उठा लेते हैं, जिसमें उन लोगों के जूतों में कीचड़ न लग जाय। उस वक्त का दृश्य अपूर्व ही मालूम होता है। उसके बाद तालाब में, जो कि मन्दिर की बग़ल में लगा हुआ है, साथ ही साथ स्नान करके गीली धोतियों से अपनी अपनी बीबियों को दर्शन कराने के लिए भीड़ में लेकर घुसते हैं। उसी भीड़ में कतिपय ग़रीब परदेशी गृहस्थ-औरतें धार्मिक-भाव वाली भी होती हैं, जिनकी दुर्दशा का अन्त नहीं रहता है। यदि उन गृहस्थ-औरतों में कुछ जवान होती हैं, तब तो उनका सब से ज़्यादा शोचनीय परिणाम होता है।[१२]

इन उदाहरणों को पढ़कर आप सहज ही जान सकेंगे कि पुरुषों का पुरुषत्व अब कहाँ तक ऊँचा पहुँच गया है। जिस समाज में ऐसे पुरुष हों, वहाँ स्त्रियाँ कैसे सुखी व सन्तुष्ट रह सकती हैं? व्यभिचार और दुराचार करने में, स्त्रियों को घर में बन्द रखने और उन पर मनमाने ज़ुल्म ढाने में ही अब पुरुषों का पुरुषत्व काम आता है। जब जब उन्हें अपने पुरुषत्व का ख्याल आता है तब तब वे अधिक से अधिक स्त्रियों के साथ ज़ुल्म और अन्याय कर अपनी बहादुरी दिखलाना चाहते हैं। स्त्रियों पर लाल-पीले होने, उन्हें मारने-पीटने और उनकी लज्जापहरण में ही पौरुष का माहात्म्य है। भगवान् ऐसे समाज का भला करें!

आदमी मिल गया। उसने उन्हें चादर दे दी। यदि वह आदमी कपड़ा
देता तो उन बेचारियों को कई रातें दुख से काटनी पड़तीं।"

* * *

"अहमदनगर जिले के नारायणगञ्ज स्थान में एक व्यक्ति कृष्ण अप
जवान पुत्र भाऊ और उसकी व्याही नव-युवती पत्नी अर्थात् अपनी पुत्र
वधू सहित रहता था। इस वर्ष के आरम्भ में भाऊ को मालूम हुआ कि
पिता ने उसकी स्त्री से व्यभिचार किया है। इसकी शिकायत भाऊ
अपने गाँव वालों से की और पिता से भी इसी बात पर तकरार हुई
परन्तु, पिता ने अपनी पुत्र-वधू से व्यभिचार करना न छोड़ा। तब भा
ने ऐसे पिता को मार डालना ही उचित समझा और अपने एक चचेरे भा
की सहायता से उसने अपने पिता को गला घोट कर मार डाला।"

* * *

एक जानकार महाशय लिखते हैं—"सावधान ! हिन्दुओ
अत्याचार की भी कोई सीमा होती है। शिवरात्रि के समय तारकेश्व
जाना, रण्डियों को साथ में लेकर तथा शराब, भाँग व गाँजा पीकर मौज
उड़ाना, क्या इसी का नाम धर्म है? अपनी आमदनी को अच्छे कार्य में लगाना
शायद इसी को कहते हैं ! बाप-दादों का नाम बढ़ाने का अच्छा तरीक़ा
है। वहाँ जाकर यदि वेश्या-विहारी लोगों की किसी ने प्रशंसा न की तो
इन लोगों के चित्त में बहुत खेद होता है। इसीलिए ये लोग अपने साथ
दो दो, तीन तीन वेश्याओं को लेकर जाते हैं। वे वहाँ बेलपूकर (रास्ते का
नाम) में जाकर ठहरते हैं व एक एक कमरे का १०-१२ रु० तक एक रात्रि
के वास्ते किराया देते हैं। वे रात्रि के समय रोशनी करके व उन वेश्याओं
को साथ में लेकर नशे में आँखें चढ़ाए हुए साक्षात् कलियुग के सुपुत्र बने

बैठे रहते हैं। इन्हीं लोगों को देखने के वास्ते कुछ बूढ़े भी सींग कटा कर बछड़ों में मिल जाते हैं। प्रातःकाल युवक लोग अपनी अपनी रण्डियों को साथ लेकर जङ्गल में उनको पाख़ाना फिराने ले जाते हैं। जब कहीं रास्ते में कीचड़ इत्यादि मिलता है तो ये लोग बीबी साहिबों को गोद में उठा लेते हैं, जिसमें उन लोगों के जूतों में कीचड़ न लग जाय। उस वक्त का दृश्य अपूर्व ही मालूम होता है। उसके बाद तालाब में, जो कि मन्दिर की बग़ल में लगा हुआ है, साथ ही साथ स्नान करके गीली धोतियों से अपनी अपनी बीबियों को दर्शन कराने के लिए भीड़ में लेकर घुसते हैं। उसी भीड़ में कतिपय ग़रीब परदेशी गृहस्थ-औरतें धार्मिक-भाव वाली भी होती हैं, जिनकी दुर्दशा का अन्त नहीं रहता है। यदि उन गृहस्थ-औरतों में कुछ जवान होती हैं, तब तो उनका सब से ज़्यादा शोचनीय परिणाम होता है।"

इन उदाहरणों को पढ़कर आप सहज ही जान सकेंगे कि पुरुषों का पुरुषत्व अब कहाँ तक ऊँचा पहुँच गया है। जिस समाज में ऐसे पुरुष हों, वहाँ स्त्रियाँ कैसे सुखी व सन्तुष्ट रह सकती हैं ? व्यभिचार और दुराचार करने में, स्त्रियों को घर में बन्द रखने और उन पर मनमाने ज़ुल्म ढाने में ही अब पुरुषों का पुरुषत्व काम आता है। जब जब उन्हें अपने पुरुषत्व का ख्याल आता है तब तब वे अधिक से अधिक स्त्रियों के साथ ज़ुल्म और अन्याय कर अपनी बहादुरी दिखलाना चाहते हैं। स्त्रियों पर लाल-पीले होने, उन्हें मारने-पीटने और उनकी लज्जापहरण में ही पौरुष का माहात्म्य है। भगवान् ऐसे समाज का भला करें !

पुरुष स्त्रियों से क्या चाहते हैं ?

रुष चाहते हैं कि स्त्रियाँ उनकी विषय-वासना की पूर्ति का साधन बनें। इसके लिए वे धर्म-अधर्म, उचित-अनुचित सब कुछ करने को हर दम उद्यत रहते हैं। अवश्य ही यह बात पुरुषों की सब प्रकार की निर्बलता-सूचक है। स्त्री-पुरुषों का प्रणय-सम्बन्ध कामेच्छा-तृप्ति के लिए नहीं है। यदि ऐसा होता तो स्त्री-जाति का इस प्रकार सङ्गठन न किया जाता। यदि स्त्री-पुरुषों का जन्म केवल इन्द्रिय-विकारों को सन्तुष्ट करने के लिए ही होता, तो आज संसार से समस्त सद्गुणों का नाश हो गया होता; न सभ्यता होती और न धर्म होता। शास्त्रों में कहा है कि पुरुष केवल सन्तानोत्पत्ति के लिए स्त्री-प्रसङ्ग करे, किन्तु शास्त्र की यह अच्छी बात मानता कौन है ? कितने ऐसे आदमी हैं जो इस धर्म का पालन करते हैं ? पुरुषों ने तो स्त्रियों को वासना-पूर्ति तथा सन्तानोत्पादन की मैशीन बना रखा है। वे समय देखते हैं न असमय, न शरीर देखते हैं न स्वास्थ्य, पशुओं की तरह—नहीं नहीं, पशु तो इन बातों में एक बार बड़े नियमित होते हैं; अतः पशुओं से भी हीन जीवों की तरह—वे सदा स्त्री-प्रसङ्ग ही श्रेय समझते हैं।

उनकी इस अदम्य लालसा-प्रवृत्ति ने उनकी तो शक्ति नष्ट कर ही दी है साथ ही स्त्रियों की आपत्ति और बढ़ा दी है। पुरुषों को न तो देश की दरिद्र अवस्था का कुछ ख्याल रहता है और न उन्हें अपनी गृह-स्थिति और शारीरिक-परिस्थिति का कुछ ध्यान रहता है। वे अपने रङ्ग में डूबे रहते हैं और उसके लिए स्त्रियों को भी घसीट कर उन्हें बरबाद कर देते हैं। यह दुर्वासना यहाँ तक बढ़ चली है कि पुरुष एक स्त्री से सन्तुष्ट न होकर या तो वेश्या-गमन करते हैं या समाज में व्यभिचार का प्रचार करते हैं; और इस तरह भी स्त्रियों की घोर दुर्दशा कर देते हैं।

भला यह तो सोचो कि सन्तानोत्पत्ति की भी कोई मर्यादा होनी चाहिए या नहीं ? आज हमारे समाज में दिनों दिन दरिद्रता और पराधीनता बढ़ती जाती है, इसका क्या कारण है ? स्वामी सत्यदेव ने एक बार कहा था—'मैं विवाह कर गुलामों की संख्या बढ़ाना नहीं चाहता।' अहा ! कैसा उदात्त तत्व है ! हम जानते हैं, आज हम अत्यन्त दुरावस्था में हैं, खाने को भर पेट अन्न नहीं मिलता, पहनने को पूरे तौर से कपड़े नहीं मिलते, सब प्रकार की गुलामी में जीवन व्यतीत करना पड़ता है, हम अत्यन्त परावलम्बी, निस्सहाय और स्वत्वहीन हो गए हैं, हमारी स्त्रियों की परिस्थिति ठीक नहीं है, किन्तु, यह सब होते हुए भी हम अन्धे हो जाते हैं, दुर्बलता के कारण बढ़ते हुए मनोविकारों को रोकने की चेष्टा नहीं करते और विषय-वासना के दास होकर हम दिन दहाड़े अपनी कुलाङ्गनाओं पर यह घोर अत्याचार कर रहे हैं। कहिए, यह कहाँ

का न्याय है ? जिनकी रक्षा और शिक्षा का आप प्रबन्ध नहीं कर सकते, उनके पैदा करने से क्या लाभ ?

फिर पुरुष स्त्रियों के अधिकारों का कैसा अच्छा निर्णय करते हैं, यह बात भी एक अङ्गरेज़ी ग्रन्थकार के मुख से सुनिए —

" The sum of the social institutions and observations whereby the life of men and women is differentiated amounts to this, that from the best preponderence of lovingness in woman from her delicacy of moral, intellectual and physical nature, from all those gifts of taste goodness, adaptability and quickness that we call womanliness, the great superiority of women lies in private life, in all that belongs to the home, to the care for the young, the suffering and the old, that is to say her work belongs essentially to the spiritual, the affective, and the domestic, that the heart is her sceptre and the family her empire.

And it is no glory to woman to forsake all this, and to read for honours with towelled head in a college study to fight with her own brother for a good practice, to spend the day in offices and the night in the " house."

It is impossible to do both together. Women must choose to be either women or abortive men ; they can not be both men and women. When men and women are started as competitors in the same fierce race as rivals and opponents instead of companions and helpmates, with the same habits

the same engrossing toil, and the same public lives, woman will have disappeared, and society will consist of individuals distinguished physiologically as are horses and dogs into men and female specimens. Family will mean groups of men and women who live in common, and home will mean the place, where the group collects together for shelter.

Our true ideal of emancipation of woman is to enlarge in all things the spiritual, moral and affective influence of woman, to withdraw her more and more from the exhaustion, the contamination, the vulgarity of mill-work and professional work, to make her more and more the free cherished mistress of the home, more and more the intellectual, moral, and spiritual genius of man's life."

—*Frederic Harrison.*

उपर्युक्त अवतरण से प्रतीत होता है कि लोग किस ख़ूबसूरती से स्त्रियों को क़ब्ज़े में रखना चाहते हैं। लेखक का यह कथन हमें तो सर्वथा उपयुक्त प्रतीत नहीं होता। उसका तर्क भी झूठे अनुमान पर अवलम्बित है। यदि गृहस्थ-सुख बिगड़ गया है, यदि स्त्री-पुरुषों में अनबन हो गई है, तो इसका कारण स्त्रियों की शिक्षा या स्वाधीनता नहीं है, बल्कि वह है पुरुषों का निन्दनीय स्वार्थ। पुरुष गृह-सुख को अपना ही सुख समझता है, तभी तो वह स्त्रियों को शिक्षा और स्वाधीनता देते हुए घबड़ाता है। भारत में भी स्त्रियों की स्वतन्त्रता के विरोधी बहुधा यह कहा करते हैं कि स्वतन्त्रता से स्त्रियाँ बिगड़ जाती हैं। अपने इस कथन की पुष्टि में वे पाश्चात्य

महिलाओं की ओर सङ्केत करते हैं और कहते हैं कि देखो वहाँ की स्त्रियाँ कितनी चरित्र-भ्रष्ट हैं। "भारत में सामाजिक पुनर्सङ्गठन" शीर्षक लेख में लाला लाजपतराय ने दिखाया है कि यह बात कितनी पक्षपातपूर्ण और मिथ्या है। लाला जी लिखते हैं:—

"शिक्षित भारतीय, स्त्रियों की स्वाधीनता। और शिक्षा के सम्बन्ध में उनकी पूर्ण स्वतन्त्रता के विरोधी हैं। मेरी समझ में इसका कारण यह है कि वे अहम्मन्यतापूर्ण वायु-मण्डल में पलते हैं। ऐसे समाज में रहते हैं, जहाँ उनकी साधारण बातें भी सर्वोत्तम मानी जाती हैं। भारत के कुछ शिक्षित समुदायों में पाश्चात्य स्त्रियों की घोर निन्दा करना भी एक फ़ैशन हो गया है। यह ठीक है कि पाश्चात्य स्त्रियाँ धार्मिकता का आदर्श नहीं। उनमें कुछ दोष हैं। परन्तु, क्या प्राच्य स्त्रियों में एक भी दोष नहीं? पक्षपातपूर्ण भारतीय पाश्चात्य महिलाओं का जैसा चित्र खींचते हैं, वास्तविक जीवन की दृष्टि से वह उतना ही सत्य व असत्य होता है जितना कि ईसाई मिशनरियों और सैलानी यात्रियों द्वारा खींचा हुआ प्राच्य स्त्रियों का चित्र। दोनों चित्र पक्षपात, अपूर्ण-ज्ञान और अपने अपने आदर्शों के मिथ्याभिमान के फल हैं। ऐसे व्यापक चित्र खींचने में मिशनरी तो स्वार्थ से प्रेरित होते हैं। वे ईसाई धर्म का प्रचार करने के लिए धन और जन चाहते हैं। दूसरी ओर पूर्वी देशों के यात्री पश्चिम में जाकर जब पाश्चात्य स्त्रियों की स्वतन्त्रता देखते हैं तो अपनी बुद्धि स्थिर नहीं रख सकते। वे समझते हैं कि यह स्वतन्त्रता पाश्चात्यों की असभ्यता और इन्द्रिय-लोलुपता का फल है। कुलीन घरों की पाश्चात्य स्त्रियों के संसर्ग में आने के अवसर उनको कदाचित् उतने ही कम मिलते हैं, जितने कि पूर्व की कुलीन स्त्रियों के संसर्ग में आने के अवसर ईसाई मिशनरियों को।"

इस सम्बन्ध में एक लेखक ने क्या ही सत्य लिखा है—

" Women, however loving self-sacrificing and sincere, has but little power in the council of men. You can not appeal to her because you do not care to share her feelings in politics or in the affairs of Country. She is not born ignorant ; you have rather bred her ignorant."

अस्तु आप स्मरण रखें—

" Two things are closely joined together, the education, the training and development of women ; and the greatness of nation. When these women were the Indian Mother heroes and Rishis were born ; and now out of child-mothers cowards and social pigmies come forth ! Cause and Effect ! Still in your power to change."

स्त्रियों की धारणा
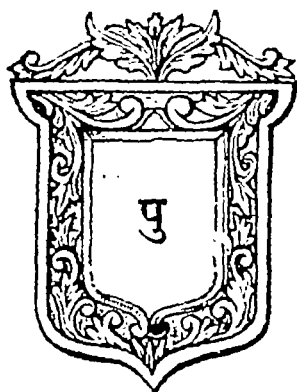
रुषों की लीला दिखलाने के पश्चात् यदि स्त्रियों की कर्म-प्रगति का वर्णन न किया जाय, यदि अत्याचारों का सारा दोष पुरुषों के ही मत्थे मढ़ दिया जाय, तो निश्चय ही चतुर निरीक्षक हमारे मत की दुर्बलता को तत्क्षण जान जायगा और उसकी यह धारणा हो जायगी कि लेखक का उद्देश्य केवल एक पक्ष का समर्थन कर दूसरे पक्ष को सब प्रकार नीचा दिखाना ही है। यह कहना तो कभी युक्तियुक्त न होगा कि अत्याचरों का समस्त कारण पुरुषों में ही अवस्थित है। हाँ, यह ठीक है कि इन अत्याचारों को स्त्रियों द्वारा कराने में पुरुषों का हाथ अवश्य रहता है, तथापि वह स्त्रियों की भूल है व उसका प्रधान कारण स्त्रियों की एक प्रकार की धारणा है।

या तो सदियों की गुलामी से कहो, अथवा अशिक्षा के कारण स्वतन्त्र बुद्धि के अभाव से कहो। स्त्रियों में एक प्रकार की विचित्र धारणा उत्पन्न हो गई है; उनकी धारणा यही है—वे समझने लगी हैं—कि उनका जन्म इसी प्रकार व्यतीत हो जायगा, वे पुरुषों की दृष्टि में ऊच्च-स्थान नहीं पा सकतीं और क्षुद्र गृह-जीवन

के सङ्कटों का सामना करना ही उनका परम पुरुषार्थ है। इस धारणा के अनेक कुफल हुए हैं जिनके कारण स्त्रियों ने अपनी ही भूल से घोर अनर्थ रच डाला है। वे देखती हैं कि अपने जन्म-काल से लेकर विवाहिता होने तक तथा उसके पश्चात् भी उनका कोई समय ऐसा व्यतीत नहीं हुआ, उन्हें कोई अवसर ऐसा प्राप्त नहीं हुआ, जब कि किसी प्रकार भी वे पुरुषों की दृष्टि में सम्मान्य समझी जातीं। स्मरण रहे कि स्त्री को प्रेम-पात्री बनाना और तदनुरूप उसकी सेवा या ख़ुशामद करना, दूसरी बात है और गृहणी समझ कर गृह-शासन में उसे स्वतन्त्र अधिकार देना, दूसरी बात है। होता क्या है? होता यह है कि जब स्त्रियाँ देखती हैं कि वे विवाह के पश्चात् गृहणी का पद धारण करती हैं तो उनके समय का अधिकांश उन अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति में व्यतीत होता है, जिनके कारण पुरुष-देव ने उनके साथ विवाह-सम्बन्ध स्थापित किया है। अच्छा, तो स्त्रियों को खाने-पीने का कष्ट नहीं रहा, पहिरने-ओढ़ने की चिन्ता जाती रही, सेवा-टहल के लिए मान लो एकाध नौकरानी भी मिल गई और कुछ समय भी बचने लगा। उस समय को उन्होंने कभी तो बातों में, कभी खेल-कूद में और अधिक हुआ तो पुस्तकों के पठन में ख़र्च कर दिया। फिर, पति की सेवा की और उसे प्रसन्न देख कर स्वयँ भी प्रसन्न हुईं। यदि कुछ आवश्यकता हुई तो उसे बतला दिया और यदि घर सम्पन्न हुआ तो नई फ़रमाइशों की लिस्ट सामने रख दी। यह सब कुछ हुआ, किन्तु यदि उनसे यह कहा जाय कि

तुम्हारे इस जीवन में वास्तविक हित का भाग कहाँ तक है, तो वे ही क्या अच्छे अच्छे समझदार भी इसका सन्तोषजनक उत्तर नहीं दे सकते। उन्हें तो ऐसा प्रश्न ही विचित्र मालूम होगा। यदि उनसे देश या समाज के किसी प्रश्न पर कुछ विचार करने के लिए कहा जाय तो वे हँस कर, शर्मा कर, सिर नीचा कर देंगी और धीरे से कह देंगी, हम इन सब बातों को क्या जानें? यदि किसी ने कुछ कहने का साहस भी किया और यदि उसका मत पतिदेव के विरुद्ध हुआ तो या तो पतिदेव ही अपने लट्ठ-सिद्धान्त द्वारा उसे समझा देंगे या वही कह देगी कि ऐसा ही मेरा भी मत है। आप इस कथन की गूढ़ता को शायद अभी नहीं समझ सके हैं। आप कदाचित् यह भी नहीं जानते कि अपनी इच्छा, स्वतन्त्र विचार-प्रणाली और निर्भीक तथा स्पष्टवादिता का हनन कर देने की इस साधारण प्रवृत्ति ने स्त्री-जाति को तो जो कुछ हानि पहुँचाई है, वह है ही, साथ ही राष्ट्रीयता की जो दुर्दशा इसके कारण हुई है वह अवश्य ही भयङ्कर है। अनेक उत्कृष्ट सद्गुणों के होते हुए भी जो मस्तिष्क अपने विचार-चिन्तन द्वारा देश या जाति का भला कर सकते हैं, उसे उन्नति के उच्च शिखर पर पहुँचा सकते हैं, वे ही मस्तिष्क इस प्रकार अपनी असत्य धारणा के कारण अपनी आत्मा का हनन कर देते हैं और इस प्रकार न केवल अपना अहित करते हैं, वरन् अपनी सन्तान का भी भविष्य बरबाद कर देते हैं। पुरुषों के इस प्रकार वशीभूत होने की यह धारणा क्या ठीक कही जा सकती है? इसी धारणा ने स्त्रियों को निष्क्रिय या

परानुगामिनी बना दिया है। यह ठीक है कि स्त्री-धर्म के अनुसार पति का सुख पहली वस्तु है। लेकिन, इसके अन्तर्गत भी रहस्य है। यहाँ भी पुरुषों के जटिल नियम कार्य करते हैं। पति का सुख पहली वस्तु क्यों मानी जाती है? स्त्री समझती है—पति ही उसका सर्वस्व है, पति ही उसका सौभाग्य है, पति जब तक जीवित है तभी तक उसका सौभाग्य है, इसके पश्चात् उसका जीवन निरर्थक है। यह क्यों? स्त्री ही के हृदय में यह धारणा क्यों काम करती है? पुरुष क्यों नहीं सोचता कि जब तक स्त्री जीवित है तभी तक उसका भी सुख और सौभाग्य है, स्त्री के पश्चात् उसका भी जीवन निरर्थक है। हो सकता है, ऐसे लोग भी अधिक संख्या में निकल आएँ जो अपनी स्त्री को बहुत प्यार करते हों और उनके मरने के पश्चात् अपना सर्वस्व नष्ट हुआ समझते हों, किन्तु साधारण समाज की प्रगति को देखते हुए क्या आप यह बात न मानेंगे कि ऐसे पुरुष, समाज में कितनी ओछी दृष्टि से देखे जाते हैं? जहाँ कहीं पुरुषों ने स्त्रियों के सुख और आराम के लिए अतिशय आतुरता, चिन्ता और उत्सुकता दिखलाई, वहीं उसे स्त्रैण, स्त्री का ग़ुलाम आदि उपाधियों से भूषित कर दिया जाता है। इधर पतिदेव तो सोचते हैं कि आज एक मर जायगी तो कल दूसरी आ जायगी। क्योंकि समाज के विधायक पुरुष हैं, धर्मशास्त्र के प्रणेता पुरुष हैं, नियमों के कर्त्ता पुरुष हैं, इसीलिए उन्होंने अपने लिए सुविधाएँ रखी हैं। वे समझते हैं कि एक स्त्री के पश्चात् पुरुष का दूसरा विवाह कर लेना

जायज है; क्योंकि उसके बिना बाल-बच्चे कौन सँभालेगा, घर
कैसे रहेगा, पुरुष घर का और बाहर का काम एक साथ कैसे
करेगा। किन्तु, ये तो प्रायः गौण कार्य होते हैं। उसकी मुख्य
अभिलाषा तो होती है नव-वधू का सहवास और फिर वही गहरी

गुलामी का तारतम्य !

उधर स्त्रियों के लिए जब तक पति जीवित है, सब कुछ है।
पति ही उसका ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, गुरु, परब्रह्म आदि जो कुछ
कहें, सब है। जब पति मर गया तो उसका परमात्मा छूट गया।
अब उसके लिए समाज क्या करेगा ? जो कुछ हो रहा है वह
आप प्रत्यक्ष देखते हैं। उसके जीवन का कार्य-क्रम ही समाप्त हो
जाता है। इससे क्या यह सिद्ध नहीं कि उसकी समस्त प्रगति
(Activity) पुरुष तक ही है। पुरुष के समाप्त होते ही वह समाप्त हो
जाती है। आप इससे क्या परिणाम निकालते हैं ? यही कि
स्त्रियों का जीवन पुरुषों के लिए ही है। किन्तु, पुरुषों के चारित्र
को देखकर कोई यह अनुमान नहीं करता कि पुरुष का जीवन
स्त्री के लिए ही है। यही घोर विषमता पाई जाती है। इसी
भ्रमात्मक सिद्धान्त पर पुरुषों ने न्याय का पाया खड़ा किया है और
धर्म की विलक्षण व्याख्या की है। न्याय क्या कहता है ? यदि स्त्री
का जीवन केवल पुरुष के लिए ही है, अपने लिए नहीं, तो पुरुष का
जीवन भी स्त्री के लिए ही है, अपने लिए नहीं। जिस प्रकार पुरुष
की मृत्यु के पश्चात् स्त्रियों की कार्य-प्रगति समाप्त हो जाती है, उसी
प्रकार स्त्री की मृत्यु के पश्चात् पुरुष की भी सब प्रगतियाँ समाप्त हो

जानी चाहिएँ। यदि ऐसा नहीं होता है तो अवश्य ही सन्देह के लिए स्थान दिया जाता है। स्त्री की मृत्यु के पश्चात् यदि पुरुष को अपने लिए जीने का अधिकार है, तो पुरुषों की मृत्यु के पश्चात् स्त्रियों को भी अपने लिए जीने का अधिकार है। ऐसा मान लेने पर भी स्त्रियों को सन्तोष नहीं हो सकता। जिन थोड़े से घरों में पतिदेवता धन सम्पत्ति छोड़ जाते हैं, वहाँ तो स्त्रियाँ शान्त होकर रह जाती हैं और ज्यों-त्यों अपना जीवन व्यतीत कर देती हैं; किन्तु जहाँ सहस्रों साधारण स्थिति के पुरुष अपनी स्त्रियों को छोड़ जाते हैं तो स्त्रियों का विलाप और कलाप सुनते ही बनता है। उस विलाप के अन्तर्गत कौन सा मुख्य भाव रहता है? स्त्रियों को अपने भावी जीवन की कठिनता तत्काल दीख पड़ती है। वह सोचती है, अब मेरा क्या होगा? जो पुरुष मेरी रक्षा के लिए और मेरे जीवन को सुखमय बनाने के लिए सब कुछ करता था, अब उसके बिना पुत्र या अन्य कुटुम्बियों के शासन में जीवन किस प्रकार व्यतीत होगा!

यह प्रेम-संस्कार और स्नेह एवँ कर्त्तव्य के बन्धन के वियोग से तो होता ही है, किन्तु अधिकाँश में साँसारिक जीवन की कठिनता के कारण इसमें और भी भयङ्करता आ जाती है। पति की मृत्यु के पश्चात् स्त्री को इतनी बुद्धि अवशिष्ट नहीं रह जाती कि जैसे भी हो, जब तक जीवन है तब तक सदुपयोग और सत्कर्त्तव्य द्वारा, उसे सफल बनाना ही ठीक है। जीवन की अमूल्य घड़ियों को वह शोक और दुखों में व्यतीत कर देती है और पति के शोक

में उसे नष्ट कर ईश्वरदत्त शक्तियों के ह्रास द्वारा दोष-भागिनी बनती है। यदि उसे यह ज्ञात हो जाय कि उसका जीवन उसी का है, सांसारिक धर्म और ईश्वरीय आदेश को पालने के लिए ही उनका परस्पर पति-पत्नी का सम्बन्ध था, जिसे वह अपने इस जीवन के पश्चात् पुनः प्राप्त कर सकती है, तो पति के वियोग में अपने अमूल्य जीवन को यों ही नष्ट न कर दे। यह सब होता इसलिए है कि पति ने अपनी जीवितावस्था में स्त्री को इस योग्य ही नहीं बनाया कि वह अपने जीवन के सदुद्देश्य को समझ सके, फिर भारतीय स्त्रियों की प्रख्यात अकर्मण्यता ने तो उनका जीवन और भी सङ्कटमय बना दिया है। हमारी तो धारणा है कि यदि भर पेट खाने और पहिरने को मिलता जाय, यदि निरर्थक नैतिक कष्ट न दिया जाय, तो पति-पत्नी पारस्परिक वियोग होने पर भी—उस वियोगजनित दुख को अनुभव करते हुए भी—अपने कर्त्तव्य का यथेष्ट रीति से पालन कर सकते हैं और इस प्रकार अपने कर्त्तव्य-पालन द्वारा देश का कुछ वास्तविक उपकार कर सकते हैं। किन्तु, स्त्रियों की तो धारणा ही यह हो गई है कि जब पति की जीविता-वस्था में ही वे कुछ नहीं कर सकीं या कर सकती हैं तो उनके मरण के पश्चात् तो उनके लिए कुछ भी शेष नहीं रह जाता। इसका निष्कर्ष यही है कि स्त्रियाँ अपने लिए कुछ नहीं करना चाहतीं। वे पति के आश्रय में रह कर उनके बताए हुए मार्ग और उनकी स्थापित नीति पर ही चलना चाहती हैं। जब कभी उनसे अवस्था को सुधारने का प्रश्न किया जाता है तो थोड़ी सी शिक्षित स्त्रियों

को छोड़कर बाक़ी का उत्तर यही होता है कि ऐसा करने का हमें अधिकार नहीं, हम ऐसा नहीं कर सकतीं। ऐसा करना हमारे लिए पाप है। इसी का नाम है अनुचित धारणा और इसी कारण स्त्रियों पर घोर अत्याचार होते रहे हैं !

अत्याचार के लिए स्त्रियों की तैयारी

विवाह हुआ और लड़की ससुराल आई। एक संसार से दूसरे संसार में प्रवेश किया। परिचित वायुमण्डल से निकल कर एकदम अज्ञात वायुमण्डल में प्रवेश किया। सभी चीज़ें उसके लिए नवीन हैं। क्या गृह और क्या मनुष्य, सभी उसके सामने अपरिचित-से हैं। सोचिए तो सही, यदि आप सहसा अपने गृह-द्वार से अलग कर सुदूर अन्य प्रदेश में एकदम अपरिचित मनुष्यों के समाज में पटक दिए जावें तो आपकी गति क्या होगी। उस समय आपके हृदय में कैसे कैसे विचार आएँगे? आप चाहे जैसे अनुभवी और ज्ञानवान हों, एक बार तो आपको सङ्कोच के समुद्र में ग़ोता मारना ही होगा, एक बार तो आपकी अच्छी से अच्छी बुद्धि भी चकित और विकृत हो ही जायगी। जब तक आप कुछ काल पर्यन्त उस वायुमण्डल में न रह लें, तब तक आप की बुद्धि नव-परिचितों के व्यवहार में स्थिर नहीं हो सकती। यह क्रम प्रत्येक का है। स्त्री जिस समय ससुराल पहुँचती है तो वहाँ की

नवीन परिस्थितियों को देखकर उस समय सहसा वह अपना कर्त्तव्य स्थिर नहीं कर सकती। वह दूसरों के सङ्केत पर काम करती है और दूसरों के ही आदेश का समुचित पालन करती है। बस, इसी समय से स्त्री का नवीन अथवा भावी जीवन सङ्गठित होता है। यह ठीक है कि माता-पिता के संस्कार तथा शिक्षा के प्रभाव से स्त्रियों में गुण-दोषों का यथाक्रम आविर्भाव होता है, तथापि यह सब होते हुए भी इतना तो कहना ही पड़ेगा कि कौटुम्बिक व्यवहार और उसकी प्रगति को देखकर ही स्त्री का चरित्र-निर्माण होता है।

कितनी शुभाशाओं और प्रतिज्ञाओं के पश्चात् पुरुष स्त्री का पाणिग्रहण करता है? स्त्री भी समझती है, अब उसे सच्चा सहयोगी मिला है, उसी के सहारे वह अपने जीवन का विकास करेगी। वह बड़े उल्लास और उमङ्ग के साथ नूतन गृह में पदार्पण करती है। उस समय जहाँ तक देखा जाता है, कुटुम्ब का प्रत्येक व्यक्ति अद्भुत आनन्द का अनुभव करता है। उस समय सम्भवतः किसी को इस बात का अनुभव नहीं रहता कि यह नव-परिणीता हमारे कुटुम्ब का उद्धार और उत्थान करेगी या सर्वनाश। नवेली नारी भी नई नई चाह में मस्त रहती है और यहीं पहले-पहल उसके कर्त्तव्य की जाँच होती है। प्रायः देखा जाता है, इस अवसर पर सैकड़ा पीछे ८८—९० स्त्रियाँ फ़ेल हुई हैं। जो सुशिक्षिता कही जाती हैं—हालाँकि यह शिक्षा केवल पत्र लिख लेने और पुस्तक पढ़ लेने तक ही परिमित है—, वे तो प्रायः ऐसी भद्दी भूलें कर

बैठती हैं कि आते ही आते घर के लोगों का कलेजा दहल जाता है और जी खट्टा हो जाता है। होता क्या है? इधर तो पतिदेव—यदि वे नूतन ढङ्ग से शिक्षा पाए हुए हैं—प्रेम-पाठ में मग्न रहते हैं और उधर पत्नीदेवी—यदि वे भी नव सभ्यता के रङ्ग में रँगी जा चुकी हैं—नए नए अस्त्रों और भावों द्वारा पतिदेव के स्वागत में लगी रहती हैं। न तो पति को अपने माता-पिता और गृह का ध्यान रहता है और न पत्नी यह समझती है कि वह कहाँ है और क्या कर रही है। जिस प्रकार जादू के वशीभूत कोई व्यक्ति जो चाहे कर डालता है, उसी प्रकार विषय के वशीभूत पति-पत्नी अपनी समस्त विद्या, बुद्धि और कर्त्तव्यशीलता का ध्यान खो बैठते हैं। फल क्या होता है? देखा जाता है, जहाँ ऐसी अधकचरी शिक्षा पाई हुई, नए ढर्रे पर पड़ी हुई, बधुएँ आती हैं, वहाँ सास या तो पुराने ढङ्ग की होती हैं और या साधारण शिक्षित; किन्तु प्राचीन धर्म और सभ्यता की अभिमानिनी होती है। वे अपने पुत्र का विवाह कर अब केवल यह देखना चाहती हैं कि वे दोनों अर्थात् नवल दम्पति किस प्रकार के जीवन-सङ्गठन द्वारा गृह-शासन के योग्य होते हैं। उनका यह भाव तो कदापि नहीं रहता कि पति-पत्नी विवाह को केवल भार समझें या माता-पिता की लालसापूर्ति समझें, सन्तानोत्पत्ति का मैशीन समझें अथवा विषय की धारा समझें। जहाँ कहीं बाल-विवाह भी होते हैं, वहाँ भी प्रायः माता-पिता का यही उद्देश्य रहता है कि वे अपनी जीवितावस्था में अपने गृह को अपने पुत्र व पुत्र-बधू द्वारा सुव्यवस्थित-रीत्या सञ्चालित होते देख

लें। किन्तु, अपने इस महान् कर्त्तव्य को समझने वाले पुत्र बहुत कम होते हैं। जो बड़े लोग हैं—अमीर हैं, उनका तो निराला ही ठाट रहता है। उनके यहाँ गृह-शासन का आदर्श ही भिन्न होता है; किन्तु वह चाहे जैसा हो, गृह का निर्माण करना ही प्रत्येक का उद्देश्य रहता है—बिगाड़ना नहीं। परन्तु, हम देखते हैं कि घर सुधारने की बातें बहुत कम की जाती हैं और बिगाड़ने की अधिक। विवाह होते ही पति कहता है—मैं ने तो केवल माता-पिता की इच्छापूर्ति के लिए विवाह किया है। मेरी पत्नी का यह मुख्य कर्त्तव्य होना चाहिए कि वह अपने सास-श्वसुर की सेवा करे। ठीक है; परन्तु एक नवल वधू—और वह भी नए दर्रे में ढली हुई—के फन्दे में फँस कर पुरुष-देव अपने कथन को किस शीघ्रता से भूलते हैं, यही आश्चर्य का विषय है! ज़रा भी पत्नी की नज़र तिरछी हुई कि पतिदेव के कलेजे पर सीधा वार हुआ। ज़रा से मौन, ज़रा से आग्रह और ज़रा से मनाने पर पत्नी पुरुप को वशीभूत कर लेती है और अपनी स्वाभाविक दुर्बलता और अयोग्यता के कारण, अपने माता-पिता के अनुचित संस्कारों के कारण और अपनी दूषित शिक्षा-प्रणाली के प्रभाव के कारण, वह श्वसुर-गृह में अपने हार्दिक असन्तोष को प्रकट करती है। सास तो यह कहती है कि बहू को कष्ट न हो और उसके लिए वह सब काम स्वयँ ही कर लेती है। परन्तु, चूँकि वह तो पढ़ी-लिखी सुनी गई है, अतएव भला वह अपनी शिक्षा में बट्टा कैसे लगाए! दिखावे के लिए उसे गृह-कार्य में भाग लेना ही पड़ता है, किन्तु हृदय जल

जाता है और जब कभी भूख लगती है तो ठीक समय पर भोजन
न मिलने के कारण अपने मानसिक सन्ताप द्वारा सारे घर पर
क्रोध-दृष्टि डालती है। रात्रि को पति-मिलन पर यह नाटक खेला
जाता है और Curtain Lectures शुरू होते ही पतिदेव
समस्त सुसंस्कार हवा हो जाते हैं। उस वक़्त किसे होश रहता है!
यों स्त्रियों का चरित्र बनता जाता है। पतिदेव कभी शान्ति से
बैठ कर यह कहना नहीं जानते कि तुम्हारा अपने गृह के प्रति
क्या कर्त्तव्य और धर्म है। बातचीत छिड़ती है, किन विषयों पर?
प्रेम की कृत्रिम और दूषित लीलाएँ, इधर-उधर की शिकायतें,
फ़ैशन और ठाटबाट की दिखावटें और बहुत हुआ तो दो चार
क़िस्से-कहानी या रँगीले उपन्यासों की घटनाएँ। शिक्षा भी मिलती
है तो इस बात की कि अमुक फूल किस तरह बनाया जाता है
अमुक काट कैसे काटी जाती है, अमुक पुस्तक कैसी है अथवा ताश
खेलने या बाजा बजाने आदि ऐसे ही खेल तमाशों की। कभी
यह बतलाने की कृपा नहीं की जाती कि पति-पत्नी किस संस्कार
और संयोग के कारण एकत्र हुए हैं और अब उनके जीवन एक
दूसरे पर किस प्रकार निर्भर हैं; झूठे स्वाँग और थोथी बातों में
कुछ नहीं रखा है; गृहस्थी का निर्वाह ही दोनों का मुख्य उद्देश्य
है। ये बातें कौन किसे बतलाता है? उलटे यह होता है कि बड़े
घरों में तो थोड़ी सी शिकायत पर दासियाँ और नौकरानियाँ
हाज़िर हो जाती हैं और ग़रीब घरों में श्रीमान् पुत्रदेव को अपनी
जननी से कहना ही तो पड़ता है कि बहू से इतना काम न लिया

जाय, क्या वह यहाँ मरने के लिए—जान देने के लिए ही—बुलाई गई है। बस, शर्मदार माताएँ तो उस दिन से लोहू का घूँट पीकर ऐसी चुप हो जाती हैं कि चाहे घर रहे या बिगड़े, चाहे सास को ही बहू की ग़ुलामी करनी पड़े, किन्तु फिर वे बहू से एक अक्षर नहीं कहतीं। तब पतिदेव का—नहीं-नहीं, पत्नी देवी का—साम्राज्य छा जाता है और उस समय पतिदेव जिस सङ्कट में फँसते हैं। वह वे ही जानते हैं, जिनपर बीत चुकी है। ऐसी स्त्रियाँ प्रचण्ड हो जाती हैं और सब कुछ भली होने पर भी कुटुम्ब की प्यारी नहीं हो सकतीं। बड़ी होने पर यही महान् अनर्थकारिणी सास बनतीं हैं और यों ही परम्परा चलती रहती है, किन्तु यह होता है कुछ तो सास-श्वसुर के कम दवाव के प्रभाव अथवा भोलेपन के कारण और अधिकांश में पतिदेव की मूर्खता, अनुभवहीनता और निर्बलता के कारण।

इधर यदि कहीं सास भयङ्कर मिल गई, तब तो बड़ा ही मज़ा होता है। उस समय डार्विन के Survival of the fittest का सच्चा Experiment (प्रयोग) होता है। तब या तो सास की समता में बहू घुल-घुल कर मिट जाती है या उसके ज़हरीले कीड़े उसके हृदय में घुस कर बढ़ने लगते हैं और कुछ ही काल में वे इतने सबल हो जाते हैं कि वे सास की समता में अतिशय उच्च हो जाते हैं। फिर उच्च दृश्य देखने को मिलता है। वहू इतनी दबङ्ग, उजड्ड और बेलगाम हो जाती है कि सास भी उसके आगे नाक रगड़ती है और पानी भरती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि स्त्रियाँ अत्याचार करने के लिए निम्न प्रकार से तैयार होती हैं:—

सास सबल या दुष्टा और बहू सीधी

या तो अत्याचार सहते सहते मर जाती है

ऐसी स्त्रियाँ प्रायः स्वयँ ही अत्याचार सहती हैं।

अत्याचार सहते सहते इतनी कर्कश हो जाती है कि अपने आगे पति, सास, श्वसुर आदि किसी को कुछ नहीं समझती।

ऐसी स्त्रियाँ थोड़े दिन के अत्याचार सहने और पति की आदतों से वाक़िफ़ होकर उस पर अपना रौब जमाने के बाद इतनी निष्ठुर हो जाती हैं कि अच्छे भले आदमी के भी होश दुरुस्त हो जाते हैं।

यह सब इसलिए होता है कि—

१—पत्नी या तो अशिक्षित होती है या अर्द्धशिक्षित और नूतन सभ्यता की नक़्क़ाल होती है।

२—पति निर्बल होता है या पत्नी के वशीभूत हो जाता है।

३—सास कठोर होती है और कठोर यातनाएँ देती है।

४—सास की कठोरता से या अपने स्वाभाविक संस्कारों से बहू उद्दण्ड हो जाती है।

यों अत्याचार के लिए स्त्रियों की तैयारी होती है।
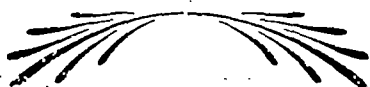
अत्याचार और स्त्रियों की अयोग्यता

अत्याचार के कारणों का सूक्ष्म विश्लेषण करने पर हमें प्रतीत होता है कि यों तो देखने में साधारण रीति से पुरुषों ही पर अत्याचारों का समस्त दोषारोपण किया जाता है, किन्तु बात ऐसी नहीं है। सब कुछ मान लेने पर भी कोई निष्पक्ष व्यक्ति यह नहीं मान सकता कि स्त्रियाँ किसी प्रकार भी दोष-पात्र हैं ही नहीं। हाँ, यह ठीक है कि पुरुष ने अपने सुख और स्वार्थ के लिए स्त्रियों को आवश्यकता से अधिक अधिकृत कर लिया है; किन्तु यह भी तो ठीक है कि स्त्रियों में अब आवश्यकता से अधिक दुर्गुण आ गए हैं। हम अन्यत्र कहीं लिख आए हैं कि अत्याचार के कारणों में स्त्रियों का जो कुछ भाग रहता है, वह पुरुषों के ही कारण और उन्हीं की भूल व त्रुटियों की वजह से। सत्य है, ऐसा ही होता है। फिर यह बात कहना युक्तिसङ्गत भी तो है! क्योंकि जब पुरुष स्त्रियों के समस्त स्वत्वाधिकारी होने का दावा करते हैं तो कोई वजह नहीं पाई जाती कि स्त्रियों के सद्गुणों के कारण प्रशंसा पाकर, उनके दुर्गुणों के कारण बदनामी न सहें या उनकी कुप्रवृत्तियों के उत्तराधिकारी न बनें।

यह होते हुए भी हमारी समझ से तो यदि स्त्रियों का जीवन वास्तविक जीवित व्यक्तियों का जीवन है और यदि उनके इन्द्रिय-जन्य एवँ मानसिक विकार पुरुषों की तरह ही प्रभावशाली होते हैं तो यह मानना ही पड़ेगा कि स्त्रियों पर अपने जीवन का सचमुच कोई भार है। अब उसके लिए वे पुरुषों की आधीनता स्वीकार करती हैं तो दूसरी बात है, पर इसके कारण वे न्याय की दृष्टि से बच नहीं सकतीं। कारण, कि यदि उन्हें जीवित रहने का हक़ है तो उन्हें अपने भले व बुरे पहिचानने का भी हक़ है। इसलिए जहाँ यह कहा जाता है कि पुरुष ही समस्त अत्याचारों की जड़ हैं वहीं यह भी कहा जाना चाहिए कि उस जड़ को सींचने में स्त्रियों का भी हाथ है। अतएव हमारा यह कहना अनुचित न होगा कि जिन अयोग्यताओं, त्रुटियों व अभावों के कारण स्त्रियों को अत्याचार सहना पड़ता है या जिनके कारण वे स्वयम् ही अपनी जाति पर अत्याचार करने लगती हैं, उन समस्त अयोग्यताओं, त्रुटियों व अभावों को समझना और अनुभव करना स्त्री मात्र का परम कर्त्तव्य है। हमारे पास इतना अवकाश नहीं और न इतना स्थान ही है कि स्त्रियों की उन सब अयोग्यताओं का वर्णन कर सकें। हाँ, वस्तु-स्थिति के अनुसार हमने जितना निरीक्षण किया है और अपने अनुभव से जहाँ तक अनुमान किया है वहाँ तक हमें जो थोड़े से—किन्तु मुख्य कारण—नज़र आए हैं, हम उन्हीं का यहाँ संक्षिप्त विवेचन करते हैं।

चरित्र-गठन की कमी सबसे बड़ा दोष है। स्त्रियों में यह कमी

विशेष-रूप से पाई जाती है। स्त्रियों का चरित्र शृङ्खलाबद्ध अथवा नियम-विहित नहीं होता। वह बड़ा ही विषम और दूषित परिणाम उत्पन्न करने वाला होता है। उनका जीवन प्रारम्भ ही से ऐसे ढाँचे में ढाला जाता है कि किसी स्वाभाविक सद्गुण का पूर्ण विकास नहीं हो पाता। स्त्रियों में यदि चञ्चलता अधिक है, गम्भीरता की कमी है, यदि उनके व्यवहार में मूर्खता और उचित-अनुचित बातों की ओर लक्ष्य नहीं है या उनमें अतिशय निरङ्कुशता पाई जाती है, तो इसका मुख्य कारण चरित्र-गठन की कमी है। जिन बातों से चरित्र का सङ्गठन होता है, उनका साधारण गृह-जीवन में अभाव सा रहता है और अशिक्षा तथा गृह-परिस्थिति की विषमता के संस्कारों से यह परिणाम होता है कि बालिका आवारा सी हो जाती है अथवा उसे यह ज्ञात ही नहीं होता कि भावी जीवन में उसे महत्वपूर्ण कर्त्तव्य का सम्पादन करना है और संसार के सबसे बड़े दायित्व को अपने कन्धों पर उठाना है। इस चरित्र-गठन की कमी के कारण स्त्रियाँ पुरुषों की दृष्टि में क्षुद्र मान ली जाती हैं। इसी के कारण एक तो वे पुरुषों का सम्मान खो बैठती हैं दूसरे अनेक ऐसी भद्दी भूलें कर बैठती हैं या ऐसा करने की उनकी आदत सी हो जाती है कि जिसकी वजह से स्त्रियों को स्वयम् ही अपनी सहयोगिनियों, संरक्षिकाओं आदि से कष्ट भोगना पड़ता है। चरित्र-सङ्गठन के अभाव में न मानवी गुणों का समुचित विकास होता है और न चरित्र में दृढ़ता तथा उज्ज्वलता ही आती है। ऐसी दशा में मनुष्य को कैसी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, यही

गृह-धर्म का अज्ञान दूसरी बात है, और वह अनेक अत्याचारों की जड़ है। प्रायः यही समझा जाता है कि दोनों समय या सुविधानुसार एक समय रोटी बना लेना, चक्की पीस लेना और चौका-बर्तन कर लेना अथवा कुछ अन्य ऐसे ही अत्यन्त अनिवार्य, किन्तु साधारण काम कर लेना ही गृहस्थ-धर्म की इतिश्री है। यह तो किसी को ख्याल ही नहीं होता कि गृह-धर्म का क्षेत्र कितना विस्तृत और उसका दायित्व कितना अधिक है। जीवन-निर्वाह के लिए, पेट भरने के सब से आवश्यक कर्त्तव्यों को पालन करने में कोई नवीनता नहीं है। ऐसा तो पुरुष भी कर लेते हैं, चाहे उन्हें कठिनाई भले ही हो। भला, पेट भरने के लिए आवश्यक कार्य कर लेना भी कोई विशेषता है या उन कामों के करने में कोई प्रशंसा की बात है! इन बातों से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि स्त्रियों को गृह-धर्म का बहुत कम ज्ञान होता है। यहाँ हम गृह-धर्म का कुछ अधिक विवेचन करने में असमर्थ हैं। हाँ, इतना अवश्य बतला देना चाहते हैं कि गृह-धर्म रोटी-पानी से परे भी कोई कर्त्तव्य है। गृह की सफ़ाई, भोजनों का सुप्रबन्ध आदि बातें अवश्य ही प्रयोजनीय हैं; किन्तु प्रत्येक स्त्री जैसे होता है वैसे इस काम को करती है, चाहे उसमें सफ़ाई या सुप्रबन्ध की कमी भले ही हो। जैसा आप समझते हैं कि भोजन आदि कार्य यद्यपि साधारण-सी बात है, तथापि उसका प्रबन्ध ठीक ठीक नहीं होता। फिर यह कौन जानता है कि सास का बहू के प्रति, बहू का सास के प्रति, पुत्री का पिता-माता के प्रति और स्त्री का पति तथा अन्य छोटे-बड़ों के

प्रति क्या कर्त्तव्य है! गृहस्थी का व्यवहार कैसे होता है और उसमें कितनी सावधानी की आवश्यकता है? गृह की सुव्यवस्था कैसे हो सकती है और बड़ों की परिचर्या कैसे की जाती है? मान-मर्यादा और आत्म-सम्मान क्या चीज़ है? धर्म की आवश्यक सीमा गृहस्थ के लिए कहाँ तक है और गृह-शासन कैसे सुव्यवस्थित हो सकता है? इन बातों का ध्यान बहुत कम रहता है। जो थोड़ा-बहुत जानती भी हैं, वे उसका उपयोग करना नहीं जानतीं। इसी से कौटुम्बिक कलह उत्पन्न होता है और इसी से पुरुषों के भाव स्त्रियों के प्रति बिगड़ जाते हैं। ऐसी स्त्रियाँ समय-असमय का ध्यान नहीं रखतीं, पुरुष के स्वभाव और प्रकृति की चिन्ता नहीं करतीं व जब जो जी में आया वही कह डालतीं या कर डालती हैं। पुरुष इस समय किस ध्यान में है, वह किस चिन्ता में है, उसे क्या करना है, आदि बातों का तो मुतलक़ ख्याल नहीं रहता। इस प्रकार के जितने कार्य स्त्रियों द्वारा किए जाते हैं वे प्रशंसनीय नहीं माने जाते और उनसे प्रायः उनकी अयोग्यता ही प्रकट होती है।

कोमलादि भावों की अधिकता तीसरा कारण है। प्रत्येक वस्तु अपनी मर्यादा के भीतर ही शोभनीय समझी जाती है और तभी उसका परिणाम भी भला होता है। स्त्रियों में मानसिक विकारों और भावों की प्रायः अधिकता पाई जाती है। कोई भी गुण अपनी सीमा को पार करते ही दुर्गुण में परिणत हो जाता है। स्त्रियाँ अपने भावों की अतिशय वृद्धि के कारण बहुत दुख उठाती

हैं। हम देखते हैं कि प्राचीन काल में स्त्रियाँ बड़ी वीर होती थीं और अब भी कहीं-कहीं ऐसे उदाहरण पाए जाते हैं; किन्तु सम्प्रति अधिकांश में स्त्रियों के कोमल भावों का—स्त्रियोचित भावों का—बड़ा दुरुपयोग होने लगा है। यह दुरुपयोग स्त्रियों की ओर से ही प्रारम्भ हुआ है। दया, क्षमा, प्रेम और सहानुभूति आदि सद्गुण प्रशंसनीय अवश्य हैं, किन्तु उनका समुचित प्रयोग ही श्रेयस्कर है। साथ ही दूसरों पर दया दिखाना अधिक अच्छा है, बनिस्बत इसके कि अपनी स्थिति को दयाजनक बना लेना। आजकल यही हो रहा है। जहाँ यह होना चाहिए था कि स्त्रियाँ दूसरों पर दया दिखाएँ; वहीं उन्होंने अपनी स्थिति ऐसी बिगाड़ ली है कि दया स्वयँ ही उन पर दया करती है। फिर कोमलता आदि भाव वहीं तक अच्छे प्रतीत होते हैं जहाँ तक उनका सम्बन्ध दूसरों से है। अब तो यह कोमलता इस अवस्था को पहुँच गई है कि जो कोमलता स्त्रियों का एक गुण था, वही अब उनके लिए दोष हो गई है। यह कोमलता अब नज़ाकत और नाज़ोनख़रे के रूप में प्रकट हुई है। कोमलता का उपयोग और कोमल भावों का दर्शन अब दूसरों के प्रति नहीं है। अब तो उनके भाव क्या, सारा शरीर ही कोमलता की खान हो रहा है। एक बात को दूसरी तरह समझ लेने का कैसा भयङ्कर परिणाम हुआ है, यह इसी से जाना जा सकता है। आप भले ही सैकड़ों नए व पुराने उदाहरणों द्वारा इस बात को सिद्ध करने की चेष्टा करें कि स्त्रियों में बड़ा बल है, स्त्रियाँ देवी-स्वरूपिणी हैं, उनका हृदय कुसुम से भी कोमल और वज्र से भी कठोर है,

स्त्रियाँ अमुक प्रकार की वीरता दिखलाती हैं आदि, परन्तु ये बातें अब सङ्कुचित सीमा में रह गई हैं। व्यापक दृष्टि से देखिए ! आज हिन्दू-स्त्रियों में कितनी कायरता और सुकुमारता आ गई है। निरपेक्ष होकर देखने से आप इस सत्य की गूढ़ता समझ सकेंगे। यदि आज हमारी माताओं में वीरता होती तो हम जैसे कायर कुपूतों का जन्म ही क्यों होता ! यदि आज हम बुज़दिल हैं, यदि आज हमारे हृदयों में नैतिक बल और साहस नहीं है, यदि हम आज अपने गौरव और सम्मान की रक्षा नहीं कर सकते, यदि आज हम देश के जीवन-मरण के संग्राम में अपने जीवन के मोह से योग नहा दे रहे हैं तो यह सब किस का परिणाम है ? हम तो कहेंगे, माताओं की कायरता का ? सोचो तो सही, हिन्दू-स्त्रियों की दशा कितनी अधमता को प्राप्त हो चुकी है ? आज यदि कहीं से कोई स्त्री गुम होती है तो वह हिन्दू-स्त्री, यदि कोई वेश्या बनती है तो हिन्दू-स्त्री, यदि कोई अपमान सहती है तो हिन्दू-स्त्री ! बतलाइए तो सही कि इसे कोमलता कहें या कायरता। आप कहेंगे कि फिर वे स्त्रियाँ कैसीं, जिनमें कोमलता नहीं ! तो मैं कहूँगा कि कोमल भावों को धारण करना दूसरी बात है और स्वयँ ही कोमलता का एक अङ्ग हो जाना दूसरी बात है। आज दूसरी बात ही हो रही है और इसी के कारण स्त्रियाँ अनेक कष्टों और अत्याचारों का अनुभव कर रही हैं।

इसी के कारण शारीरिक और मानसिक दुर्बलता का प्रादुर्भाव हुआ है। नज़ाकत और सुकुमारता के आज एक दो नहीं,

लाखों दृश्य देख पड़ते हैं। हमें दुख तो इस बात का है कि पुरुष-जाति ने भी इन गुणों को भली-भाँति नहीं समझा। स्त्रियों में यदि सुकुमारता भूषण है तो वह तभी तक जब तक कि उसका सम्बन्ध मर्यादा के अन्तर्गत है। यदि आज स्त्रियों पर अत्याचार होते हैं, उनकी लज्जा और धर्म का अपहरण किया जाता है और उनके मान व सम्भ्रम पर चोट होती है तो उस समय भी क्या आप सुकुमारता की सराहना करेंगे, उस समय भी आप स्त्रियोचित गुणों की प्रशंसा करेंगे! यदि स्त्रियाँ मनुष्य हैं और यदि पुरुष जाति अपनी मान-रक्षा का उपाय कर सकती है तो कोई कारण नहीं देखा जाता कि स्त्रियों में यह सुकुमारतारूपी कायरता क्यों अड्डा जमाये रहे! हाँ, जब कोई दुखी हो, प्रपीड़ित हो, उस समय दया और कोमलता के भाव यदि पुरुषों से अधिक स्त्रियाँ प्रकट करें तो वहाँ यह बात मान्य होगी। किन्तु, जहाँ स्त्रियों पर ही हाथ साफ़ हो रहा हो, वहाँ अपने लिए ही इन कायर भावों का अनुसरण करना कहाँ तक उचित है? यही बड़ी भूल है, जिससे स्त्रियों में शारीरिक दुर्बलता के साथ साथ मानसिक दुर्बलता भी उत्पन्न हो गई है और जिसके फल-स्वरूप स्त्रियों के नैतिक बल का नाश हो रहा है।

पाँचवाँ कारण है—मूढ़ विश्वास। स्त्रियों में इस विश्वास की अतिशय प्रबलता है और यह भी उनके भोलेपन अथवा दूसरी दृष्टि से उनके वास्तविक ज्ञान की कमी का सूचक है। इन मूढ़ विश्वासों का नीति और धर्म दोनों ही से सम्बन्ध है व इनके ही कारण

स्त्रियों को अपने ही द्वारा उत्पन्न किए कष्टों का सामना करना पड़ता है। जोसफ़ एडीसन ने अपने एक निबन्ध Household Superstition बतलाया है कि मूढ़ विश्वासों के कारण एक स्त्री किस प्रकार स्वयँ ही कष्ट उठा रही थी। उसके लिए न कहीं भय था न कष्ट, किन्तु उसका मूढ़ विश्वास उसे व्यर्थ ही कष्ट में डाल रहा था। इन मूढ़ विश्वासों के कारण स्त्रियाँ जान तक से हाथ धो बैठती हैं। आप देखते हैं कि स्त्रियाँ गण्डे-तावीज़, मन्त्र-तन्त्र आदि में आवश्यकता से अधिक विश्वास रखती हैं। वे अपने बच्चे को बीमार देखकर तुरन्त ही कुछ मन्त्र-तन्त्र करना चाहती हैं। दवा वग़ैरह कुछ हो या न हो, लेकिन मन्त्र-तन्त्र पहले होगा। यदि किसी स्त्री के लड़का न हो तो किसी साधू बाबा के फेरे में आकर लड़के के लिए अपना धर्म तक नष्ट कर देने के उदाहरण अब भी बीसों पाए जाते हैं। इन्हीं अन्ध-विश्वासों के कारण, देवी-देवताओं के कभी कभी झूठे स्वाँग बनाकर, उनके लिए नाना प्रकार के आर्थिक और शारीरक कष्ट सहना भी कोई नई बात नहीं है। धन के लिए, पीतल-ताँबे से सोना बनाने के लिए, अपने घर का सब गहना खो बैठना भी कोई नवीनता नहीं है। धर्म के नाम पर और झूठे विश्वास पर शारीरक क्लेश सहन करना भी साधारण काम है। मतलब यह कि इन अन्ध-विश्वासों के कारण स्त्रियों ने जान-बूझ कर अपने को सङ्कटों का आखेट बनाया है। इसी के कारण उन्हें बिना भय के भय मालूम होता है—ज़रा सा सङ्कट पहाड़ मालूम होता है। एडीसन ने क्या ही ठीक लिखा है—

"Such an extravagant cast of mind engages multitudes of people, not only in impertinent terrors, but in supernumerary duties of life, and arises from that fear and ignorance which are natural to the soul of man. The horror with which we entertain the thoughts of death or indeed of any future evil, and the uncertainity of its approach, fill a melancholy mind with innumerable apprehensions and suspicions, and consequently dispose it to the observation of such groundless prodigies and predictions. For as it is the chief concern of wise men to retrench the evils of life by the reasonings of philosophy, it is the employment of fools to multiply them by the sentiments of superstition."

हमारे मत से यह वात विल्कुल ठीक है।

निर्णय-शक्ति ऐसी वस्तु है जो न तो सभी पुरुषों और न सभी स्त्रियों को प्राप्त होती है। विरले ही व्यक्ति ऐसे होते हैं जिनमें निर्णय-शक्ति ठीक रूप से काम करती है। किन्तु, हमारा तात्पर्य उस निर्णय-शक्ति से नहीं है, जो कठिन अवसरों पर किसी क्लिष्ट समस्या को ठीक ठीक समझने और उसे सुलझाने में काम आती है, वरन् हमारा तात्पर्य उस साधारण निर्णय-बुद्धि से है जो प्रतिदिन जीवन के व्यवहार में व्यवहृत होती है और जिसके आधार पर हम अपनी समस्त जीवन-अवस्था का प्रबन्ध करते हैं। स्त्रियों में ऐसे निर्णय की कमी होती है। उनकी प्रकृति प्रायः इतनी प्रभावहीन होती है कि अच्छी और बुरी सभी बातें उन पर अपना

समान-रूप से प्रभाव डाल सकती हैं। स्त्रियों को क्षण भर पहिले जो समझा दिया जाता है, क्षण भर बाद ही उसके विरुद्ध समझाया जा सकता है। एक व्यक्ति एक क्षण पहले उसे जिस मार्ग से ले जाना चाहता है, दूसरा व्यक्ति दूसरे क्षण ही उसे दूसरे मार्ग से ले जायगा और वह उसी को ठीक समझ कर उसका अनुसरण करेगी। यही कारण है कि उनमें स्वतन्त्र-चिन्तना का अभाव पाया जाता है और इसी बुद्धि के अभाव के कारण वे प्रायः धोखा खाती हैं। पुरुषों की बातों का वे ठीक ठीक अर्थ नहीं समझ सकतीं और जब तक उन्हें पुरुषों द्वारा ही उसका तात्पर्य न समझा दिया जाय वे उससे अनभिज्ञ रहती हैं। हमारी धारणा है कि इसी निर्णय की कमी से पुरुष स्त्री को अपनी समानता में नहीं मानना चाहते। वे कहते हैं, स्त्रियों में बुद्धि नहीं, वे स्वयँ किसी बात को सोच नहीं सकतीं। यह बात नहीं है कि स्त्रियों में इस बुद्धि का या इस शक्ति का बीज ही मौजूद न हो। बात यह है कि स्त्रियाँ चिरकाल से ऐसी सामाजिक परिस्थिति में रह रही हैं, जिसने उनकी प्रकृति को अनुगामिनी बना दिया है।

यह अनुगामिनी प्रकृति भी स्त्रियों की अयोग्यता-सूचक चिन्ह है। किसी अच्छे सिद्धान्त, व्यक्ति या नेता का अनुसरण यह तो सूचित नहीं करता है कि उसके अनुगामी अयोग्य हैं। हाँ, जो लोग, किसी सिद्धान्त, मत या व्यक्ति का, बिना सोचे समझे और बुद्धि को कुछ श्रम दिए बिना ही, अन्धों को तरह अनुसरण कर, किसी काम को कर डालते हैं या किसी मार्ग में चले जाते हैं, वे अवश्य

ही अयोग्य ठहराए जाँयगे। आज भी क्या हुआ है? महात्मा गाँधी के असहयोग-आन्दोलन की सत्यता, उसकी मर्यादा। व उपयोग तथा उसकी ठीक-ठीक कार्य-पद्धति एवँ उसकी महत्ता कहाँ तक थी, इस वात को ठीक-ठीक समझे विना ही, सहस्रों, लाखों व्यक्ति एकदम खड़े हो गए और उन्होंने ऐसे नेताओं का अनुसरण किया, जिनमें से वहुत कम व्यक्ति उस सिद्धान्त की वास्तविकता को समझे हुए थे। फल यह हुआ कि भिन्न-भिन्न व्यक्ति उस सिद्धान्त को भिन्न-भिन्न अर्थों में समझे और अपना अपना निराला मार्ग निकाल कर उसका पोषण भी असहयोग-सिद्धान्त द्वारा करने लगे। जनता में जो व्यक्ति समझदार थे, वे ठीक मार्ग पर चलते गए और उन्होंने अनेक झूठे और ख्याति-काँक्षी नेताओं की कुछ परवाह न की। किन्तु, जिन लोगों की वुद्धि अतिशय परतन्त्र थी, जो लोग केवल अनुसरण करना ही जानते थे, वे लोग वुरी तरह ठगे गए। उन्हें कुछ का कुछ समझाया गया, वड़ी वड़ी झूठी आशाएँ दिलाई गईं। अव जव कि काङ्ग्रेस में ही मत-भेद उत्पन्न हो गया तो ऐसे लोग सिद्धान्त की वास्तविकता को न समझ कर असहयोग सिद्धान्त को ही दोष देने लगे और उसे व्यर्थ समझने लगे। यही बात विश्वरूपेण या प्रत्येक कुटुम्ब और व्यक्ति पर लागू होती है। स्त्रियों की प्रकृति इतनी अनुगामिनी होती है कि वे चाहे जब भुलाई और भरमाई जा सकती हैं। इसका दृश्य साधारण कुटुम्बों में प्रायः देखने में आता है। यदि हम कह दें कि यह बात अच्छी है तो स्त्रियाँ भी कह देंगी—हाँ, अच्छी है। यदि हम कह दें बुरी है तो

[ज़]री है; चाहे इसके विरुद्ध ही क्यों न हो। इससे तो यह प्रकट [ह]ोता है कि स्त्रियाँ स्वयँ कुछ करना ही नहीं चाहतीं। उनका व्यक्तित्व [क]ोई वस्तु ही नहीं है। वे पुरुषों के हाथों एक यन्त्र (Instrument) [क]ी तरह काम करती हैं। ऐसी हालत में यदि पुरुषों की चिर-प्रकृति स्वार्थपूर्ति के मार्ग में स्त्रियाँ अनेक सङ्कट सहें तो इसमें दोष किसका! हम तो कहेंगे स्त्रियों का। कारण, वे अब इतनी साहसहीन हो गई हैं कि पुरुषों की शान में अपनी ओर से उनका कुछ कहना या करना भयङ्कर आज्ञा-भङ्ग, घोर-स्वच्छन्दता और एक प्रकार से सामाजिक-विद्रोह माना जाता है।

इस चिर अनुगामिनी प्रकृति की प्रवृत्ति के कारण ही पहले तो स्त्रियों को कुछ कहने या करने का साहस ही नहीं होता, फिर जिन कुटुम्बों में स्त्रियों को कार्य करने का कुछ क्षेत्र और अवसर भी मिलता है, वहाँ उनकी वही हालत होती है जो निराशा से एक दम ऊपर उठने वाले व्यक्ति की होती है। अकाल में जब खाने को नहीं मिलता है और घास-पात खाते-खाते सुकाल का समय आता है तब खूब खाने के कारण जो दशा मनुष्यों और पशुओं की होती है—उन्हें जिस भयङ्कर बीमारी और मौत का सामना करना पड़ता है—वही अवस्था उन स्त्रियों की भी होती है जो अधिकारों के सर्वथा अभाव की दशा में अधिकारों को प्राप्त कर लेती हैं और तब व्यवहार-अनभिज्ञ होने के कारण उनका ठीक-ठीक उपयोग न समझ कर तथा निरङ्कुश मार्ग पर चल कर घोर अनर्थ कर बैठती हैं व पुरुषों को इस बात का मौक़ा देती हैं कि जिससे

वे कहें कि स्त्रियों में सङ्गठन की कमी है, उनमें स्वतन्त्र-विचार-शक्ति का अभाव है, वे स्वयँ अपने पैरों खड़ी होकर कुछ कार्य नहीं कर सकतीं, वे सामाजिक अथवा राजनैतिक अधिकारों के अयोग्य हैं। पुरुषों की आधीनता ही उन्हें इष्ट है। जहाँ कहीं स्त्रियाँ स्वतन्त्र हुई भी हैं, वहीं घोर सामाजिक विषमता उत्पन्न हो गई है—कुटुम्ब का सच्चा आनन्द तिरोहित हो गया है, इत्यादि इत्यादि। पुरुषों द्वारा ऐसे उद्गार प्रकट किया जाना स्वाभाविक है और इससे स्त्रियों की अयोग्यता का अच्छा परिचय मिलता है व इसी के कारण जब स्त्रियाँ पुरुषों से कुछ चाहती हैं तो उन्हें सदैव निराश होना पड़ता है। यही नहीं, उन्हें बहुधा पुरुषों के क्रोध और घृणा का पात्र भी बनना पड़ता है।

जहाँ कृत्रिमता की वृद्धि होती है, वहाँ स्वभावतः ही वास्तविकता बहुत दूर रहती है और वास्तविकता के अभाव में सत्य का संहार होता है; जिसके कारण हमारा प्रत्येक कार्य उत्तमता से शून्य होता है और उसका कोई सुप्रभाव या परिणाम नहीं होता। स्त्रियों में कृत्रिमता की वृद्धि बड़ी तेजी से हो रही है, यह बात तो निस्सङ्कोच-भाव से माननी ही पड़ेगी। आज साधारण से साधारण श्रेणी की स्त्रियों से लेकर उच्च से उच्च कोटि तक की स्त्रियों में कृत्रिमता ने वृद्धि प्राप्त की है। [illegible] व्यवहार में कृत्रिमता है और उनके रहन-सहन व विचार में कृत्रिमता है। उनके स्वाभाविक सद्गुण, जो पहिले हृदय से धारा की तरह प्रवाहित होते थे, आज कृत्रिमता में बँधकर कृत्रिमरूप से प्रकट हो रहे हैं! इस कृत्रिमता ने स्त्रियों

के स्वाभाविक गुणों पर पानी फेर दिया है। कृत्रिमता की वृद्धि में स्त्रियों की दूषित एवँ अयोग्य व अपूर्ण शिक्षा ने बहुत कुछ सहायता दी है। यदि हम भूल नहीं करते हैं और यदि हम सत्य प्रकट कर रहे हैं तो हमें निस्सङ्कोच भाव से यह कहना पड़ेगा कि अब दूषित शिक्षा की जहाँ हवा लगी—ऐसी शिक्षा-प्राप्त स्त्रियों से जहाँ अन्य स्त्रियों का संसर्ग हुआ—बस तुरन्त ही उनमें कृत्रिमता देवी ने अपना अड्डा जमा लिया। अब उनकी पोशाक का ढङ्ग कुछ और होता है, अब उनकी बातचीत से वह स्वाभाविक सरलता प्रकट नहीं होती, अब उनके मुख से वह भोलापन नहीं टपकता, अब उनके नेत्रों में वह प्रेम नहीं दीख पड़ता और न अब उनके सौन्दर्य में वह पवित्रता, तेजस्विता और प्रतिभा प्रकट होती है। गृहस्थी के धन्धों में तो इस कृत्रिमता का अतिशय उपयोग किया जाता है; जिससे, न केवल व्यर्थ कष्ट ही उठाना पड़ता है, वरन् धन और समय के नाश के साथ ही गृहस्थी में घोर वैषम्य भी उपस्थित हो जाता है। यदि हमारी शिक्षा-प्राप्त बहिनें अपने व्यवहार में कृत्रिमता को स्थान न दें, यदि वे अपनी स्वाभाविक शक्तियों का विकास कर सरल भाव से प्रत्येक कार्य करें तो उनकी अशिक्षित बहिनों और उनके शिक्षित, अर्द्ध-शिक्षित अथवा अशिक्षित कुटुम्बियों को कभी सन्देह या [illegible] का अवसर न मिले। जहाँ तक हो वे इस प्रकार मिलकर रहें कि किसी को यह प्रकट हो न हो कि अमुक स्त्री इतनी सुशिक्षित है। शिक्षा का फल वास्तविक होना चाहिए। उसका सम्बन्ध कृत्रिमता से नहीं है।

यह ठीक है कि दूषित शिक्षा ने पुरुषों में भी घोर कृत्रिमता उत्पन्न कर दी है, किन्तु इसका फल वे आज अच्छी तरह चख रहे हैं और अपनी इस कृत्रिमता को—इस दिखावट को—वे बुरी तरह कोस रहे हैं। इसी से जब आज वे अपनी ही समता में स्त्रियों में भी इस कृत्रिमता की वृद्धि देखते हैं तो अवश्य ही उन्हें दुख होता है और वे उसे हटा देना चाहते हैं। इसके लिए जब वे कठोर उपायों से काम लेते हैं तब हमारी बहिनों को दुख होता है। अतः यह मानना पड़ेगा कि कृत्रिमता की वृद्धि भी स्त्रियों के कष्टों को बढ़ाने में सहायक है।

प्रायः स्त्रियाँ परिस्थिति देख कर कार्य करना नहीं जानतीं। उन्हें समय-असमय अथवा व्यक्ति-विशेष व व्यवहार-ज्ञान का ध्यान नहीं रहता; यह भी महान् अयोग्यता है। जो व्यक्ति परिस्थिति देखकर कार्य नहीं कर सकता, वह अवश्य ही जान बूझ कर सङ्कट का सामना करता है। हम देखते हैं, स्त्रियाँ अपनी अनुभव-हीनता से तथा अधिकांश में व्यवहार-ज्ञान-शून्य होने के कारण अपने कुटुम्ब तथा पुरुष की परिस्थिति का ख़्याल नहीं रखतीं। वे नहीं सोचतीं कि आज उनके कुटुम्ब की क्या अवस्था है और पति को जीवन-निर्वाह के लिए कितने सङ्कट का सामना करना पड़ता है। फिर वे पुरुषों की प्रकृति का ठीक ठीक अध्ययन नहीं करतीं। समय-असमय जब जी चाहा कुछ बक-झक देना और अएट-सएट कर बैठना ही वे जानती हैं। हमने देखा है, पुरुष अत्यन्त आवश्यक कार्य में संलग्न है, उसे इस समय पूर्ण

शान्ति की आवश्यकता है, वह विचार मग्न है; किन्तु स्त्री आती है और इधर-उधर की बातों, हँसी-मज़ाक़, किसी की बुराई या चीज़ों के अभाव की शिकायत आदि का ताँता बाँध देती है। वह कार्य की गुरुता और महत्ता को नहीं समझती। फल यह होता है कि पुरुष को क्लेश उठाना पड़ता है—कभी-कभी तो उसे घोर हानि उठानी पड़ती है। उसी अवस्था में जरा तेज़ आदमी तो डाँट डपट देते हैं, अनेक बेचारे जी मसोस कर बाहर चले जाते हैं। जो गृह उन्हें शान्ति-सदन होना चाहिए था, वही कलह का पिञ्जरा हो जाता है! यह प्रायः स्त्रियों की इसी भूल के कारण होता है। वे परिस्थिति नहीं देखतीं और अपनी इस अयोग्यता से स्वयँ तो रोती-कलपती ही हैं; साथ ही पुरुषों का भी जीवन दुखमय बना देती हैं।

अपूर्ण शिक्षा के सम्बन्ध में हम यत्र-तत्र कुछ लिख आए हैं। पर स्मरण रखो, किसी वस्तु का ठीक-ठीक ज्ञान (Proper Conception) ही सत्य-मार्ग की ओर ले जाता है और तभी अपनी त्रुटियों का बोध होता है। यहाँ हम देखते हैं कि प्रथम तो स्त्री-जाति में शिक्षा का अभाव है ही, फिर जो कुछ शिक्षा दी भी जाती है वह इतनी अपूर्ण और कृत्रिम होती है कि स्त्रियों को उससे हानि उठानी पड़ती है। चाहे यह पुरुषों की ही ग़लती से हो, परन्तु हम तो इसे स्त्रियों की घोर अयोग्यता ही मानेंगे। शिक्षा, यदि वह वास्तविक है, तो उत्तमता को अवश्य ही प्रकट करेगी; पर किसी चीज़ का अधूरा ज्ञान भी तो बड़ा ख़तरनाक है। फिर यदि थोड़ी बहुत जो शिक्षा मिलती है, उसका ही

ठीक ठीक उपयोग किया जाय तो भी ग़नीमत है; किन्तु यह भी तो नहीं होता। एक बार हम मान लेते हैं कि स्त्रियाँ बड़ी दिग्गज पण्डिता न बनें, उन्हें शिक्षा का साधारण ज्ञान ही मिले; किन्तु उनके व्यवहार तो पूर्ण होने चाहिएँ। व्यवहार तो अधूरे रहते ही हैं, तिसपर अधूरी शिक्षा बड़ा बुरा प्रभाव डालती है, उन्हें किसी भी तत्व का पूरा-पूरा ज्ञान नहीं हो पाता और तब होता यह है कि स्त्रियों को विकट अवस्था का सामना करना पड़ता है। किसी ने ठीक ही कहा है कि—

नीम हकीम ख़तरए जान।
नीम मुल्ला ख़तरए ईमान॥

और यह बात ठीक भी है कि स्त्रियों की कच्ची, अधूरी और अपूर्ण व दूषित शिक्षा ने स्त्रियों के ईमान को सचमुच ख़तरे में डाल दिया है। अपूर्ण शिक्षा के कुफल यही हैं कि आज स्कूलों में पढ़ी हुई अधिकांश स्त्रियाँ अपनी अवस्था को समझने के स्थान में उलटा उसे भूल जाती हैं और सभ्यता के नवीन रङ्ग में वे सरा-बोर हो जाती हैं।

महात्मा तुलसीदास जी ने ठीक लिखा है कि—

को न कुसङ्गति पाय नसाई।
लहहि को नीच मतै चतुराई॥

एक बार यदि पूर्व के ग्रामों में आपको सैर करने का मौक़ा मिले तो आप स्त्रियों के सम्बन्ध में घोर कुसङ्ग की प्रवृत्ति और उसके परिणाम का ठीक ठीक पता पा सकेंगे। वहाँ जाकर आप

स्त्रियों का जीवन देखिए। कैसी दुर्दशा है ? उनमें समस्त दोषों ने अपना स्थान बना लिया है। जहाँ स्त्रियाँ एकत्र हुईं, वहाँ क्या होता है ? कभी गाँव की बुराई होती है तो कभी गृह या कुटुम्ब-विशेष की खबर ली जाती है, कभी अमुक स्त्री की बुराई की जाती है तो कभी अमुक स्त्री पर लाञ्छन लगाया जाता है । दुनियाँ भर की बुराइयाँ उनमें अड्डा जमाए रहती हैं । यह विषैली हवा एक कुटुम्ब से दूसरे कुटुम्ब तक सहज ही पहुँच जाती है और इस प्रकार दूषित वायुमण्डल स्त्रियों को कुमार्ग की ओर प्रवृत्त कर देता है। इसी का नाम है कुसङ्गति और कुप्रवृत्ति। स्त्रियों में यह कुसङ्गति बड़ा बुरा असर पैदा करती है। बहुधा स्त्रियों के जीवन का यह एक अङ्ग हो जाता है। वे जब तक थोड़ी देर बैठकर किसी की बुराई न कर लें, किसी को गालियाँ न सुना ल, किसी पर झूठा इल्जाम न लगा लें और कम से कम अपने अधिकार के अन्तर्गत अपने कुटुम्बियों को—पुरुषों और स्त्रियों दोनों को ही—जली-कटी न कह लें, तब तक उनका अन्न नहीं पचता, उन्हें चैन नहीं पड़ती। ऐसी स्त्रियाँ बड़ी कलहकारिणी एवँ अत्याचारिणी होती हैं । वे अपनी बहू-बेटियों को सद्गुण नहीं सिखा सकतीं, उन्हें सुख से नहीं रहने देतीं। इसके विरुद्ध मार-पीट और कुवाक्यों तथा दुर्व्यवहारों द्वारा ये कुटुम्ब की शान्ति भङ्ग कर देती हैं। उन्हें सच्चे गृह-जीवन की कल्पना ही नहीं होती। ऐसी स्त्रियों के इस प्रकार के विषम व्यवहारों को देखकर यदि पुरुषों को अत्याचारों का मौका मिले तो इसमें आश्चर्य ही क्या ?

अनुचित लालसाओं की प्रवृत्ति भी आजकल स्त्रियों में बढ़ रही है। अनुचित लालसा से हमारा मतलब है उन बातों से, जो एक कुटुम्ब की परिस्थिति के विरुद्ध हैं, जो अनावश्यक और अनुचित परिणामकारक हैं। सभ्यता और उसके साथ कृत्रिमता की वृद्धि ने स्त्रियों में अनेक अनुचित लालसाएँ उत्पन्न कर दी हैं। ये लालसाएँ कौन सी हैं और कितनी हैं, इसका ठीक-ठीक विवरण तो इस थोड़े से स्थान में नहीं किया जा सकता, साथ ही उसका पूरा ज्ञान भी दुर्गम है। हाँ, थोड़े से में यह जान लेना चाहिए कि जिस स्त्री को अपने कुटुम्ब की दशा और जीवन-संग्राम की कठिनता का ध्यान नहीं रहता, वही प्रायः अनुचित लालसाओं की शिकार बनती है। जिस वस्तु की आवश्यकता न हो उसे चाहना, जिसके प्राप्त करने में व्यर्थ के लिए कष्ट उठाना पड़ता है व फिर भी जिसका कोई उपयोग नहीं होता हो ऐसे पदार्थ की आकांक्षा करना, अपनी स्थिति के बाहर वैभव दिखलाना, दूसरों की सम्पत्ति देखकर रीझना, दूसरों की समानता करने का व्यर्थ प्रयत्न करना, अनावश्यक कार्यों का करना और उनमें अपनी अभिरुचि दिखलाना, न जाने योग्य अथवा वर्जित-स्थानों में जाने के लिए आग्रह करना, पुरुषों पर व्यर्थ की आवश्यकताओं का भार लादना, आदि बातें अनुचित लालसाएँ हैं। इनके कारण अवस्था ठीक नहीं रह सकती और न शान्ति ही मिल सकती है। प्रायः स्त्रियों में दो चार ऐसी अनुचित लालसाओं की प्रवृत्ति रहती ही है। स्त्रियों के हृदय यद्यपि सरल माने जाते हैं, तथापि यही सरलता शीघ्र ही घोर कुटिलता में परिणत हो

जाती है। ईर्षा, द्वेष, शत्रुता, निन्दा आदि दुर्गुण स्त्रियों में इसीलिए उत्पन्न हो जाते हैं। अनुचित लालसाओं का दबाना धर्म है। इनसे, न केवल आर्थिक हानि होती है, वरन् शारीरिक और मानसिक ह्रास भी होता है और नैतिक बल तो नष्ट ही सा हो जाता है। देखने में तो ये बातें क्षुद्र सी जान पड़ती हैं, किन्तु इन्होंने हमारे जीवन के प्रत्येक कार्य में अपना घर कर लिया है और इनके द्वारा बड़े भयङ्कर परिणाम उत्पन्न हो जाते हैं।

रहन-सहन में अशुचिता सबसे बड़ा दुर्गुण है और भारतीय स्त्रियों में यह बड़े ही विस्तृत भाव से व्याप्त है। सच पूछिए तो यह दुर्गुण बड़े भारी अनर्थों की जड़ है। जहाँ रहन-सहन में शुद्धता और पवित्रता नहीं है, वहाँ शारीरिक अपवित्रता रहती है। शरीर अपवित्र रहने से अच्छे से अच्छा विचार वाला व्यक्ति अपने पथ से विचलित हो जाता है, उसके विचार भी दूषित हो जाते हैं, मन मलीन रहता है और सदैव कुकर्मों की ओर ही प्रवृत्ति रहती है। लोग कहा करते हैं कि दरिद्रता के कारण कहाँ से अच्छे-अच्छे वस्त्र लाएँ और कहाँ से उत्तमोत्तम वस्तुएँ संग्रह करें, किन्तु यह भद्दी भूल है। सफ़ाई-सुथराई का दारिद्र्य से कोई सम्बन्ध नहीं। सफ़ाई से रहने के लिए धन की आवश्यकता नहीं है। हम कब कहते हैं कि आप ठाठ से रहें, बल्कि ठाठ से रहने वाले तो और भी आचार-व्यवहार में अधिकतर अशुद्ध पाए जाते हैं। रहन-सहन में सफ़ाई अपने वश की बात है। इसमें थोड़े से परिश्रम और देख-रेख व नियम से रहने की जरूरत है। आप यदि दरिद्र

हैं तो इसका यह अर्थ तो नहीं हो सकता कि आपके शरीर में शक्ति नहीं है या आपके हाथ-पैर काम नहीं करते। यदि चार पैसे कमा-कर पेट भरने के लिए आपकी शक्ति काम में आ सकती है तो क्या कारण है कि आपकी शक्ति सफ़ाई से रहने का परिश्रम न वहन करे। हम देखते हैं, घरों में ८० फ़ी सैकड़ा स्त्रियाँ गन्दी रहती हैं। उन्हें अपने शरीर और वस्त्रों का ख़्याल नहीं रहता। जो वस्त्र वे पहन कर शौच आदि करती हैं, वही उतार कर स्नान के समय रख देती हैं और स्नान के बाद फिर उसी वस्त्र को पहिन लेती हैं; उसी वस्त्र को पहन कर भोजन करती हैं और रात को सोते समय भी उसी का व्यवहार करती हैं। ऐसी बातें हमारी देखी हुई हैं। अनेक स्त्रियों के शरीर इतने गन्दे रहते हैं कि उनके पास बैठने से उनके शरीर से दुर्गन्ध निकलती है। ऐसी स्त्रियाँ जब अपने शरीर की ही सफ़ाई नहीं कर सकतीं तो घर की सफ़ाई की तो उनसे आशा ही क्या की जा सकती है। जहाँ गृह की सफ़ाई नहीं है, वहाँ फिर सुप्रबन्ध रहेगा ही क्यों ? सुप्रबन्ध न रहने से कष्टों और अत्याचारों का स्वभावतः ही जन्म होता है और तब स्त्रियाँ पुरुषों को दोष देती हैं; लेकिन अपनी गन्दी आदतों को नहीं सुधारतीं !

बहुधा स्त्रियाँ ऐसी अकर्मण्य होती हैं कि कोई काम ठीक-ठीक रूप से ठीक समय पर नहीं कर सकतीं। अकर्मण्य से यही मतलब नहीं है कि काम ही न किया जाय, वरन् जो काम बड़ी धींगा-धींगी से और झोंक कर किया जाता है, जिसका कोई नियमित प्रबन्ध नहीं

रहता और जिसके करने का उपयुक्त समय निकल जाता है, ऐसे समय काम करने वाले व्यक्तियों की भी अकर्मण्यों में ही गणना की जानी चाहिए। प्रमाद अकर्मण्यता का एक अङ्ग है और प्रमादपूर्वक कार्य करने वाले व्यक्ति भी अकर्मण्य गिने जाते हैं। हमने देखा है, अनेक स्त्रियों की कार्य-व्यवस्था का कोई सुप्रबन्ध नहीं रहता। उनके सोकर उठने, काम करने और फिर सोने का भी कोई नियम नहीं रहता। देर से उठना, घर वैसा ही गन्दा पड़ा रहना, कपड़े वैसे ही मैले पहने रहना, बच्चों का वैसे ही आँखों में कीचड़ लपेटे और मुँह में सींड़ साने फिरते रहना, चीज़ें इधर-उधर धूल में पड़ी रहना, भोजन में बड़ी बेतरतीबी और अशुचिता आदि बातें अकर्मण्य स्त्रियों की ही हैं। ऐसी स्त्रियाँ गृह-देवी तो नहीं, किन्तु गृह-कालिका अवश्य होती हैं। फिर ये ही स्त्रियाँ पुरुषों के कुछ कहने पर झट झल्ला उठती हैं और बिगड़े हुए काम को जान-बूझ कर और बिगाड़ देती हैं, मुँह फुलाकर बैठ जाती हैं और फिर गृह में ऐसी कलह मचा देती हैं कि शान्ति तो कोसों दूर भाग जाती है। पुरुष ऐसी स्त्रियों से दूर भागना चाहते हैं, वे घर से बाहर ही रहना पसन्द करते हैं। घर तो उन्हें नर्क-तुल्य बोध होता है। एक तो वैसे ही हारे-थके बाहर से आते हैं, तिस पर चारों ओर गन्दगी देखकर जी घबड़ा उठता है। भोजन की अशुचिता देखकर मन भी मैला हो जाता है, तिस पर स्त्रियों की लड़ाई, एक दूसरे की बुराई, किसी की मार-पीट और किसी की गालियाँ आदि बातें देख-सुन कर तो अच्छे से अच्छा आदमी अपने वश में नहीं रह सकता और हार

कर उसे स्त्रियों को उनकी अकर्मण्यता का दण्ड देना ही पड़ता है। स्त्रियों को चाहिए, अपनी आदत पहले सुधारें; फिर आप ही उनके कष्ट कम हो जायँगे।

अनेक स्त्रियाँ, या तो सच्चे प्रेम के सम्बन्ध और उसके तत्व को समझती ही नहीं, और यदि समझती भी हैं तो उसका दुरुपयोग करती हैं। प्रेम का अनुचित उपयोग करना भी स्त्रियों का एक दोष है व उनकी अयोग्यता का सूचक है। प्रायः स्त्रियों की ऐसी प्रवृत्ति होती है कि वे पुरुषों को अपने वश में कर अपने हाथ का खिलौना बनाना चाहती हैं—वे चाहती हैं कि पुरुष उनके वशीभूत होकर उन्हें छोड़ और कुछ काम ही न करें, चाहती है कि पुरुष उनका ऐसा गुलाम हो जाय कि उनकी सेवा में ही अपना सारा श्रेय समझे। स्त्रियों से प्रेम करना और सम्मान करना अनुचित नहीं, यह तो आवश्यक है; किन्तु, यह तो एक ऐसे आश्चर्य की बात है कि जिसे अपने ही अधिकार का ज्ञान नहीं, जो अपनी ही परिस्थिति से अनभिज्ञ है, जिसे स्वतन्त्र कार्य करने का ज़रा भी शऊर नहीं, वही स्त्री चाहती है कि पुरुष उसके वशीभूत होकर रहे। अवश्य ही प्रेम का यह अनुचित उपयोग है। प्रथमतः पुरुष स्त्रियों की इस प्रकार की अयोग्यताओं को देखकर उससे कदापि पूर्णतया सन्तुष्ट नहीं रह सकता, फिर जब वह देखता है कि स्त्री अपने प्रेम के अधिकार का ऐसा अनुचित उपयोग करना चाहती है तब तो वह और भी निष्ठुर होकर स्त्रियों पर आघात करता है। जहाँ कहीं पुरुष इस प्रकार स्त्रियों के वशीभूत होकर अपने व्यक्तित्व को एवँ स्वतन्त्र-

विचारों को खो बैठे हैं, उनका जीवन कदापि सुख में नहीं कटा है; यह एक सत्य बात है। अपने प्रेम का अनुचित उपयोग कर स्त्रियाँ कॉलेज में पढ़ने वाले नौजवानों की विद्या, बुद्धि और बल का नाश कर देती हैं, सुन्दर और बलिष्ठ लोगों को क्षीण और प्रतिभाहीन बना देती हैं। इसी प्रेम का अनुचित उपयोग कर स्त्री पुरुष द्वारा अनेक अनर्थ ढा देती हैं। कुटुम्ब में कलह, फूट, भेद-भाव, हिस्सा-बाँट, लड़ाई-झगड़ा आदि बातें स्त्रियों के प्रेम के अनुचित प्रयोग के ही परिणाम हैं। फिर जब इसी प्रयोग के फल-स्वरूप स्त्रियों पर उल्टी आफ़त आती है, जब पुरुष अपनी भूल-सुधार कर स्त्री को इसके लिए दण्ड देना चाहता है, तभी अन्याय-अन्याय और अत्याचार-अत्याचार की चिल्लाहट होती है, जो हमारी समझ में सर्वथा अनुचित है। स्त्रियों को उनकी अनुचित बातों का दण्ड अवश्य मिलना चाहिए, वे भला कर्म-फल से कैसे वञ्चित रह सकती हैं ?

स्पर्द्धा और द्वेष, इन दो बातों ने स्त्रियों को विशेष सङ्कट में डाल दिया है। स्पर्द्धा कोई बुरी बात नहीं, यदि उसका प्रयोग अच्छी दशा में किया जाय। किन्तु, हम देखते हैं कि स्त्रियों में स्पर्द्धा की उद्भावना केवल विषम-परिणाम उत्पन्न करने के लिए ही होती है। स्त्रियाँ देखती हैं, अमुक स्त्री के पास अमुक गहना है, अमुक स्त्री के पास अमुक प्रकार की साड़ी, चोली या अन्य वस्त्र है, अमुक स्त्री के पास अमुक प्रकार की उत्तम वस्तु है, अमुक स्त्री का कमरा ऐसा सजा है और उसमें खिलौने व बाजे वग़ैरह अनेक उत्तमोत्तम वस्तुएं मौजूद हैं; बस, फिर वे न तो यह

देखती हैं कि वे उन वस्तुओं को पाने व उपयोग में लाने की कहाँ तक योग्यता रखती हैं और न उनको अपने कुटुम्ब की शोचनीय परिस्थिति का ध्यान रहता है। वे पुरुषों से उन वस्तुओं की माँग करती हैं; यहाँ तक कि उनके लिए वे पुरुषों को क्षण भर भी शान्ति से नहीं रहने देतीं और रात-दिन उनके कान खाया करती हैं। बस, फिर पुरुष या तो अपने को सङ्कट में डालकर उनकी इच्छा पूर्ण कर देते हैं या फिर उन्हें समझा देते हैं और न समझने पर उन्हें बलात् समझा देते हैं। इसके अतिरिक्त स्त्रियाँ द्वेष के आधीन भी बहुत जल्द हो जाती हैं। अपनी इच्छा के प्रतिकूल ज़रा-सा काम होते ही, अपनी परिस्थिति से बढ़कर दूसरों की स्थिति देखते ही, उनमें द्वेष-भाव आ जाता है। व्यवहार में तनिक त्रुटि होने पर ही या मुख से कोई कटु बात निकल जाने पर चट से वे द्वेषपूर्ण हो जाती हैं। स्त्रियों में कलह अधिक होने का यही कारण है। प्रथमतः अपनी स्पर्द्धा की पूर्ति न होने पर वे घर में तो असन्तुष्ट हो ही जाती हैं, फिर अपनी इस शर्म, झेंप या जलन को मिटाने के लिए वे द्वेष का आवाहन कर घोर शत्रुता उत्पन्न कर देती हैं। प्रायः देखा गया है कि अनेक दुर्घटनाएँ, जिनमें अनेकों को जान-माल से हाथ धोने पड़े हैं, स्त्रियों के इन्हीं दुर्गुणों के कारण हो गई हैं। ऐसी प्रकृति का होना भी स्त्रियों की अयोग्यता का सूचक है। कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने एक स्थान पर लिखा है कि क्षुद्र से क्षुद्र बात स्त्रियाँ जन्म भर स्मरण रखती हैं और उसका अपने व्यवहार तथा भाषण में बार बार उपयोग करती हैं। जहाँ अच्छी बातों के स्मरण रखने

के लिए इसे सद्गुण कहा जा सकता है, वहीं बुरी बातों को याद रख कर घाव को हरा-भरा रखने के कारण यह एक महान दुर्गुण मालूम होता है। 'नेकी कर और पानी में डाल' के सिद्धान्तानुसार अच्छी बातों को अर्थात् उपकार आदि बातों को एकबार भूल जाने में कोई बुराई नहीं; किन्तु एक भूल को बार बार दोहराने और एक बात को जो उन्हें बुरी लग गई है जन्म भर स्मरण रख कर कलेजा पकाने व अपने नित्य-जीवन को उसके कारण सङ्कटमय बनाने की प्रवृत्ति महान दुर्गुण है। हमें तो आश्चर्य होता है कि पुरुषों को जिन गई गुजरी बातों का ख्याल ही नहीं होता, वहीं ज़रा वैसी ही समान परिस्थिति देख कर पुरानी बात को झट दुहराकर स्थिति की गम्भीरता को और बढ़ाकर स्त्रियाँ अनर्थ कर डालती हैं। स्त्रियों से थोड़ी देर बातें कीजिए और तब वे ऐसी निरर्थक, पुरानी और गई-गुज़री बातें करेंगी, पुरानी घटनाओं की इस प्रकार पुनरावृत्ति करेंगी कि बस चुप ही रह जाना पड़ता है। यदि अच्छे भाव से अपनी स्थिति को सुधारने की ओर स्त्रियों का ध्यान होता तब तो ठीक था; किन्तु यहाँ तो वे ये सब बातें इसलिए जी में रखती जाती हैं कि वक्त पड़ते ही वे इन्हें दुहरा कर स्थिति को और विकट बना देंगी। जहाँ कहीं स्त्रियों में लड़ाई हो रही हो, वहाँ थोड़ी देर ठहर कर दृश्य देखिए! कैसा मज़ा आता है, कैसी कैसी चोंचें होती हैं और गड़े हुए मुर्दे किस प्रकार उखाड़े जाते हैं तथा सात पीढ़ियों तक की कैसी खबर ली जाती है। ऐसी घटनाएँ प्रायः हुआ करती हैं और प्रत्येक स्त्री में यह कला विराजमान

है, चाहे सुशिक्षा आदि के कारण वह उसका अधिक उपयोग भले ही न करें। हमारी समझ से तो यह भी एक कारण है जिससे स्त्रियाँ स्वयँ ही आपत्ति उपस्थित कर देती हैं !

स्त्रियों में असन्तोष की मात्रा भी अधिक परिमाण में रहती है। उनका यह असन्तोष भावी उन्नति व कुटुम्ब के प्रति सद्भावना तथा सदुद्देश से पूरित हो, तब तो ठीक है; पर, ऐसा होता नहीं। असन्तोप प्रकट करने की उनकी स्वतः प्रवृत्ति होती है। कहा जा सकता है कि पुरुष भी तो असन्तोषी होते हैं, वे क्या ऐसा नहीं करते ? ठीक है; किन्तु पुरुषों का असन्तोष अपनी उन्नति के लिए होता है। इधर स्त्रियों का असन्तोष अपनी लालसाओं की पूर्ति, स्थिति को विगाड़ने, पुरुषों पर व्यर्थ ही भार लादने और उन्हें रात-दिन उपालम्भ का पात्र वनाने के लिए ही होता है। प्रत्येक गृह की स्त्रियों में इस प्रकार के असन्तोष की भावना दीख पड़ती है। इस प्रकार असन्तोष प्रकट करना अनेक स्त्रियों की आदत में शुमार हो जाता है और इसी के प्रभाव से उनकी प्रकृति छिद्रान्वेषिणी हो जाती है। उन्हें पुरुषों के किसी कार्य से सन्तोष नहीं होता। जी-जान लड़ाकर कुटुम्व-पालन करने पर भी वे पुरुषों को दोष देने में नहीं चूकतीं और उनके प्रति असद्-व्यवहार का प्रयोग करती हैं। ऐसी दशा में स्त्रियों पर यदि पुरुषों की कुदृष्टि हो जाय, यदि वे स्त्रियों से घृणा करने लगें, उन्हें अयोग्य समझ कर उनसे सच्चा सहयोग न करें और उसके कारण यदि स्त्रियाँ नाक-भौं चढ़ाएँ और वे पुरुषों के अन्यायों की शिकायत

करें तो निर्णयपूर्वक हमें कहना पड़ेगा कि इसमें स्त्रियों का ही अधिक दोष है। उनके इस झूठे असन्तोष की भावना ने ही उनकी योग्यता में बाधा पहुँचाई है, जिसके कारण वे पुरुषों के प्रति सच्चा व्यवहार नहीं करतीं। हमारे विचार से पुरुष-जाति यदि इसमें थोड़े-बहुत दोष की अधिकारिणी है तो स्त्रियाँ इसमें विशेष-रूप से अपराधिनी हैं। गृह में शान्ति न होने का कारण स्त्रियों का घोर असन्तोष ही है। इस असन्तोष की उत्पत्ति के जहाँ अनेक कारण हैं, वहाँ स्त्रियों की कार्य करने की अयोग्यता भी मुख्य हेतु है। पुरुषों में जब असन्तोष उत्पन्न होता है तो वे उसको स्वतन्त्र उद्योग द्वारा पूर्ण करते हैं। किन्तु, स्त्रियों का असन्तोष अकर्मण्यता का असन्तोष है, अधिकारहीन मस्तिष्क की खोज का एक विचित्र परिणाम है।

इस प्रकार हमने अपने अनुभव से जिन कारणों का पता लगाया है उन्हें संक्षेप में यहाँ लिख दिया है। यहाँ स्मरण रखना चाहिए कि उपर्युक्त सभी बातें सभी स्त्रियों में नहीं पाई जातीं और न यह आवश्यक ही है। जिन कुटुम्बों में अन्याय होता है, जहाँ स्त्रियों पर अत्याचार की प्रतिध्वनि उठती है, वहाँ विचार-पूर्वक देखने पर यह प्रकट होगा कि उपर्युक्त समस्त अयोग्यताओं, दोषों अथवा त्रुटियों में से अधिकांश उपस्थित होंगी। ऐसी स्त्रियाँ बहुत कम हैं, जिनमें थोड़े-बहुत रूप में ये बातें न पाई जाती हों। हम तो यह कहेंगे कि कोई स्त्री इससे वञ्चित नहीं है। हाँ, यह हो सकता है कि समझ आ जाने के कारण

वह सँभल गई हो और समझ बूझ कर इन दुर्गुणों से बचने लगी हो।

अब स्त्रियाँ स्वयँ ही विचार कर लें कि पुरुषों द्वारा होने वाले अन्यायों में उनकी अयोग्यता का क्या भाग है। यदि स्त्रियों में सच्ची योग्यता उत्पन्न हो जाय, वे यदि अपने कर्त्तव्यों को भली-भाँति समझ कर उनका पालन करने लगें तो वे अपनी ही बुद्धि से ऐसी परिस्थिति तैयार कर लेंगी कि पुरुषों को अन्याय करने का बहुत कम साहस होगा। मनमानी वहीं चलती है जहाँ अज्ञान है। ज्ञान के आगे अन्याय ठहर नहीं सकता। स्त्रियाँ यदि अपने गुणों से पुरुषों को प्रसन्न रखें और उनकी सचमुच सहधर्मिणी—भार स्वरूप नहीं—होकर अपना कुटुम्ब एवं गृह सङ्गठित करें तो हम कोई कारण नहीं देखते कि पुरुषों को अन्यायों से हाथ न उठा लेना पड़े। परिस्थिति को उत्पन्न करने की आवश्यकता है।
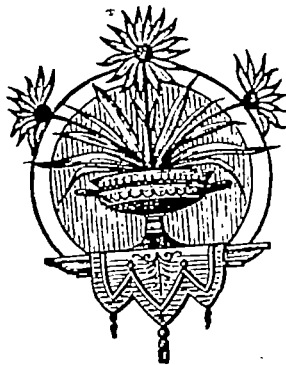
पतन की ओर

व एक बार प्रारम्भ से लेकर अब तक की सारी स्थिति का सिंहावलोकन कर डालिए। आप देखेंगे कि हमारा समाज क्रमशः अधःपतन की ओर अग्रसर हो रहा है। नाश का सामान इतनी सफ़ाई से सजाया जा रहा है कि लोग उसे उन्नति और अभ्युदय का उत्तम साधन समझ बैठे हैं और कृत्रिम भावों की चकाचौंध में ऐसे चकित हो रहे हैं कि सत्य-वस्तु का ज्ञान उनकी स्थिर-दृष्टि के बाहर हो रहा है।

स्त्री-समाज की स्थिति को यथारूप बतलाने के लिये हमने जो कुछ दुष्कर प्रयत्न किए हैं उससे इतना तो सिद्ध हो ही जाता है कि हमारा सामाजिक भविष्य श्रेयस्कर नहीं है। हमारी भावी उन्नति अत्यन्त सङ्कटमय है। यही नहीं, हम तो देखते हैं कि लोग यदि इसी प्रकार भूल भुलैयाँ में पड़े रहे, यदि उन्होंने अपनी स्वार्थ-वृत्ति को मर्यादित न किया और इसी ढङ्ग से आगे बढ़ते गए तो वह दिन दूर नहीं है जब समाज एक कौतुक हो जायगा, सामाजिक नियम उपहासनीय हो जाएँगे और उन्नति व अभ्युदय क

सवाल केवल चर्चा का विषय रह जायगा। हमारा तो विश्वास है कि पुरुष-जाति अपने सामाजिक अधःपतन में और भी अधिक योग दे रही है।

यहाँ इतना स्थान नहीं कि इस अधःपतन के कारणों की अच्छी तरह विवेचना की जा सके। अपनी 'सुधार' नामक पुस्तक में सामाजिक पतन के इतिहास और उसके कारणों पर विचार करते हुए हमने लिखा था—

"जो शक्ति आज प्रबल है, वही कल शक्तिहीन हो सकती है। जिन साधनों द्वारा उस शक्ति का उत्थान हुआ है वे ही कालान्तर में प्रकार-भेद से उसके पतन के कारण हो जाते हैं। मानव-समाज का उत्थान, उसकी शक्ति का विकास और उसके अधिकारों की प्रबलता मनुष्यों के एक मत होने से ही हो सकती है। मनुष्य-समाज का उत्थान पारस्परिक प्रतिस्पर्द्धा और आधीनता-स्वाधीनता के विचारों से नहीं हो सकता और न हुआ है। मानव-समाज में जिस समय स्वतन्त्र विचारों का उदय होता है, जिस समय ऊँच और नीच की प्रतिस्पर्द्धा का लोप होता है, जिस समय ममत्व और समत्व का आवाहन होता है, जिस समय मनुष्य मात्र के स्वत्व समान समझे जाते हैं, उसी समय समाज का उत्थान होता है। आन्तरिकरूप से इस उत्थान-कार्य में जाति और देशगत सामाजिक व्यवहारों के सुधारने का भी अंश सम्मिलित है। मनुष्य अपने ही ... से पाठ पढ़ता है। प्रत्येक देश के मनुष्य अपने ही देश द्वारा उन्नति कर सकते हैं। इसी प्रकार स्वाधीनता और समानाधिकारों का मूल्य भी मनुष्य तभी समझता है; जब वह स्वयँ उनसे विहीन होता है अथवा उन्हें प्राप्त कर उनके आनन्द का सुखोपभोग करता है। एक जाति ने दूसरी जाति

को दबा कर क्षणिक आनन्द ले लिया तो यह वास्तविक उन्नति नहीं कही जा सकती। इससे मानव-जाति का उत्थान नहीं हो सकता। यह तो समाज के पतन का सूत्रपात है। प्रश्न हो सकता है कि मनुष्य-समाज का जो अङ्ग समान अधिकारों का अपेक्षी नहीं अथवा जो वास्तव में अयोग्य है, वह क्योंकर समाज के उत्थान में भाग ले सकता है, जब तक कि प्रबल शक्ति द्वारा वह सञ्चालित न किया जाय? ठीक है, समाज का वह अङ्ग शिथिल है, उसका नाश होगा। पर, इस नाश का कर्त्ता कौन है? वही प्रबल शक्ति! यदि देखा जाय तो प्रबल शक्ति ने ही उसको बलहीन और परमुखापेक्षी बनाया है। यह उसी बलवान शक्ति के आनन्द का कारण है; जिसे उसने केवल इसी के लिए विवश बनाया है। अपना आनन्द किसे नहीं भाता? अपने सुख के आगे हीनशक्ति को दबाना किसे अच्छा नहीं लगता? मानव-समाज के पतन का यह बड़ा ही गूढ़ कारण है। इस उत्थान में ही पतन का बीज बोया हुआ है।"

सामाजिक पतन का जो क्रम हमने ऊपर दिखाया है, वह मनन करने योग्य है। आप देखेंगे कि हमारे समाज पर वह ठीक तरह घटित होता है। कहीं पर पुरुषों ने स्त्रियों को बेतरह विवश कर डाला है, कहीं थोथे सुधारों के आसमान पर उन्हें चढ़ा दिया है; दोनों ही प्रकार में हानि है। दोनों का ही अन्त बुरा है। दोनों ही मार्ग कुटिल हैं।

हम नित्य-प्रति अपनी हीनावस्था का अनुभव कर रहे हैं। हम देखते हैं कि सबसे पहिले हमारे चरित्र-सङ्गठन में ही बड़ी निर्बलता है। हमें अपने व्यक्तित्व का भरोसा नहीं है। हाँ, व्यक्तित्व का झूठा अभिमान ज़रूर है, व्यक्तिगत-स्वार्थ साथ में ज़रूर लगा है, व्यक्तिगत-विजय, पराक्रम, यश और वैभव की लालसा

अवश्य बढ़ रही है, किन्तु इस व्यक्तित्व में सच्चाई नहीं है, इस व्यक्तित्व में ईमानदारी और व्यवहार की सरलता नहीं है। पद-पद पर कुटिलता और विश्वासघातकता भरी है, पद-पद पर स्वार्थ भावना हमें प्रेरित कर रही है। ऐसी अवस्था में न तो चरित्र है और न बल। अब आपही बतलावें कि जिन व्यक्तियों के समूह को सङ्गठित कर समाज का निर्माण हुआ है, वे ही जब सुसङ्गठित नहीं हैं तब समाज का अस्तित्व कैसे निर्भर रह सकता है? आप प्रश्न करेंगे कि जब सङ्गठन नहीं है तो समाज कहाँ है? हम तो कहेंगे कि वह नहीं है, किन्तु यह दीख क्या पड़ता है? यह तो तिनकों के ढेर की तरह है। तिनकों का ढेर एकत्र कर देने से तिनकों में सङ्गठन-शक्ति नहीं आ जाती। हाँ, यदि वे ही तिनके एकता से एक दूसरे में लिप्त हो जायँ, तब तो वह सुदृढ़ रस्सी के रूप में काम दे सकेंगे, अन्यथा हवा के एक झोंके से वे इधर-उधर उड़ते नज़र आएँगे।

हमारे व्यक्तिगत चरित्र की जब यह दुर्दशा है, तब हमारे जीवन में विषमता क्यों न उत्पन्न हो? हम लोगों में न तो परस्पर प्रेम-भाव है, न एक दूसरे की उन्नति की अभिलाषा और न उससे सन्तोष। कलह और द्वेष घर घर अड्डा जमाए हैं, न कार्य-क्रम सुव्यवस्थित है न कुटुम्ब सुसङ्गठित है। यत्र-तत्र घोर निरङ्कुशता कार्य कर रही है। कहीं कठोर नियन्त्रण है तो कहीं उसका बिल्कुल अभाव है। न घर चैन है न बाहर। रात दिन गुलामी में पेट पालकर भी लोग अपनेपन का दावा करते हैं और

ने अधिकारों और स्वत्वों की चर्चा करते हैं। यह चर्चा जैसी
द होती है, उनका ही जी जानता है। मन बहलाने के लिए ही यदि
लोग इस ओर अग्रसर हो जाते, तब भी सम्भव था कि किसी
दिन उनका ध्यान सचमुच इस ओर हो जाता; किन्तु इस मन
बहलाने में भी लोगों को भय हुआ और अपने स्वार्थी जीवन की
लालसा ने उन्हें कर्त्तव्य से विमुख कर दिया। बाहर तो दूसरों की
गालियाँ सुनकर, घूँसे थप्पड़ खाकर, अपना सा मुँह लिए घर आएँ
और घर पर बिल्कुल ज़ारशाही और डायरशाही का अभिनय
करें। भला इन लोगों की उपमा नटों से न दी जाय तो क्या किया
जाय? कोई भी तो सच्ची धारणा इनके हृदयों में स्थान नहीं पाती;
किसी भी काम में तो ये अपनी सच्ची मनोवृत्ति और आत्म-त्याग का
परिचय नहीं देते। फिर भी चिल्लाते यह हैं कि हमारी उन्नति नहीं
होती, हमारी अवस्था दिनों दिन बिगड़ रही है, हमारा क्रमशः ह्रास
हो रहा है। सच पूछो तो ऐसी बातें करने का इन लोगों को कोई
अधिकार नहीं है। जो झूठे हैं, स्वार्थी हैं, द्वेषी हैं; उन्हें सद्गुणों
पर बहस करने का क्या अधिकार? फिर यदि वे कुछ कहें भी तो
उनके कथन में सार नहीं है! वे समाज का कदापि भला नहीं कर
सकते, प्रत्युत उत्तरोत्तर वे उसे उपहास का पात्र बनाकर अपनी
और भी दुर्गति कराते हैं।

सामाजिक विषमता, दोषों या अपराधों के कारणों की सच्ची
खोज का अभाव, अयोग्यता का अनुचित दण्ड, कुटुम्ब की विशृ-
ङ्खलता, एवं समष्टि में व्यष्टि का प्राबल्य बढ़ाने की अनुचित

लालसा आदि अनेक कारण हैं, जो हमारे समाज को अधःपतन की ओर अग्रसर करा रहे हैं। फिर सब से बुरी बात तो यह है कि मनुष्य-समाज के स्त्री-पुरुष रूपी दोनों अङ्ग भी विपरीत दिशाओं में कार्य कर रहे हैं। पुरुष अपने स्वार्थ के आगे स्त्री के स्वार्थ की परवाह नहीं करता। वह सोचता है कि वह जो कुछ अपने लिए करता है, स्त्री को वह अवश्य मान्य होगा—न होगा तो करना पड़ेगा; किन्तु उसे स्वप्न में भी ध्यान नहीं होता (सब ही को नहीं !) कि स्त्री का दुख-सुख भी कुछ अस्तित्व रखता है और उसे भी अपनी उन्नति करने और सामाजिक प्रश्नों पर विचार करने का अधिकार है। इस समय तो हमारे समाज में यद्यपि स्त्री-जाति पुरुष के सर्वथा आधीन है, तथापि उसकी आन्तरिक शक्ति एक विपरीत दिशा में कार्य कर रही है। उसका मनोवेग उस ओर बढ़ रहा है जिसका पुरुष को पता भी नहीं है और यह उसी का परिणाम है कि हम आज सुखी नहीं हैं—शक्ति-सम्पन्न नहीं हैं। नहीं मालूम किसी ने इस गुह्यतम चमत्कार का, स्त्रियों के इस आन्तरिक प्रभाव का कुछ अनुभव भी किया है या नहीं। यों तो प्रत्यक्ष हम रो रहे हैं और अपनी अवनति पर हाय-तोबा मचा रहे हैं, पर यह सब ऊपरी बातें हैं। हम आन्तरिक परिस्थिति को या तो देखना नहीं जानते या देख सकते हैं तो उसके सुधारने का हमें साहस नहीं होता। ऐसी दशा में यदि उत्तरोत्तर हमारा समाज अधःपतन की ओर अग्रसर हो तो इसमें आश्चर्य ही क्या ?

नैतिक अत्याचार

हाँ अवसर आ गया है कि इस कुटिल लेखनी द्वारा ग्रन्थ के अन्तर्गत कलङ्कित कथा भी अङ्कित कर दी जाय। इस प्रकरण को प्रारम्भ करते समय हमारे हृदय में जो भाव उठ रहे हैं उन्हें व्यक्त करना सम्भव नहीं। कौन जानता था कि आज हमारा समाज इतना पतित हो जायगा कि उसके कारण उन ललनाओं पर ऐसा अनर्थ रचा जायगा, जिन्हें हम देवी मानते हैं और गृह-देवी के रूप में जिनका सम्मान करते हैं। सचमुच अपने घोर नैतिक पतन को देखकर हृदय में अग्नि प्रज्वलित हो उठती है और जी चाहता है कि ईश्वर कोई ऐसा उपाय कर दे कि क्षण भर में हमारा समाज लय को प्राप्त हो जाय। परन्तु, ईश्वर क्यों यह करने लगा? वह तो न्यायी है। हमारे पाप-कर्म क्या निष्फल हो जायँगे? नहीं; उनका फल तो भोगना ही पड़ेगा।

इस प्रकरण में हम अधिकतः उदाहरण लिखना चाहते हैं—वे कपोल-कल्पित नहीं हैं, वे हो चुके हैं और पापी अपने कर्मों का फल भी पा चुके हैं। आश्चर्य तो इस बात का है कि स्त्रियों पर होने वाला यह घोर नैतिक अत्याचार पुरुषों की दृष्टि में न जाने कैसे

लालसा आदि अनेक कारण हैं, जो हमारे समाज को अधःपतन की ओर अग्रसर करा रहे हैं। फिर सब से बुरी बात तो यह है कि मनुष्य-समाज के स्त्री-पुरुष रूपी दोनों अङ्ग भी विपरीत दिशाओं में कार्य कर रहे हैं। पुरुष अपने स्वार्थ के आगे स्त्री के स्वार्थ की परवाह नहीं करता। वह सोचता है कि वह जो कुछ अपने लिए करता है, स्त्री को वह अवश्य मान्य होगा—न होगा तो करना पड़ेगा; किन्तु उसे स्वप्न में भी ध्यान नहीं होता (सब ही को नहीं !) कि स्त्री का दुख-सुख भी कुछ अस्तित्व रखता है और उसे भी अपनी उन्नति करने और सामाजिक प्रश्नों पर विचार करने का अधिकार है। इस समय तो हमारे समाज में यद्यपि स्त्री-जाति पुरुष के सर्वथा आधीन है, तथापि उसकी आन्तरिक शक्ति एक विपरीत दिशा में कार्य कर रही है। उसका मनोवेग उस ओर बढ़ रहा है जिसका पुरुष को पता भी नहीं हैं और यह उसी का परिणाम है कि हम आज सुखी नहीं हैं—शक्ति-सम्पन्न नहीं हैं। नहीं मालूम किसी ने इस गुह्यतम चमत्कार का, स्त्रियों के इस आन्तरिक प्रभाव का कुछ अनुभव भी किया है या नहीं। यों तो प्रत्यक्ष हम रो रहे हैं और अपनी अवनति पर हाय-तोबा मचा रहे हैं पर यह सब ऊपरी बातें हैं। हम आन्तरिक परिस्थिति को या तो देखना नहीं जानते या देख सकते हैं तो उसके सुधारने का हमें साहस नहीं होता। ऐसी दशा में यदि उत्तरोत्तर हमारा समाज अधःपतन की ओर अग्रसर हो तो इसमें आश्चर्य ही क्या ?

नैतिक अत्याचार

हाँ अवसर आ गया है कि इस कुटिल लेखनी द्वारा ग्रन्थ के अन्तर्गत कलङ्कित कथा भी अङ्कित कर दी जाय। इस प्रकरण को प्रारम्भ करते समय हमारे हृदय में जो भाव उठ रहे हैं उन्हें व्यक्त करना सम्भव नहीं। कौन जानता था कि आज हमारा समाज इतना पतित हो जायगा कि उसके कारण उन ललनाओं पर ऐसा अनर्थ रचा जायगा, जिन्हें हम देवी मानते हैं और गृह-देवी के रूप में जिनका सम्मान करते हैं। सचमुच अपने घोर नैतिक पतन को देखकर हृदय में अग्नि प्रज्वलित हो उठती है और जी चाहता है कि ईश्वर कोई ऐसा उपाय कर दे कि क्षण भर में सारा समाज लय को प्राप्त हो जाय। परन्तु, ईश्वर क्यों यह करने लगा? वह तो न्यायी है। हमारे पाप-कर्म क्या निष्फल ही जाएँगे? नहीं; उनका फल तो भोगना ही पड़ेगा।

इस प्रकरण में हम अधिकतः उदाहरण लिखना चाहते हैं—वे कपोल-कल्पित नहीं है, वे हो चुके हैं और पापी अपने कर्मों का फल भी पा चुके हैं। आश्चर्य तो इस वात का है कि स्त्रियों पर होने वाला यह घोर नैतिक अत्याचार पुरुषों की दृष्टि में न जाने कैसे

शोभनीय माना जाता है ? रात दिन भयङ्कर अत्याचार और उसके दुर्विपाक को देखते-सुनते हुए भी हम इतने हृदयहीन कैसे हो गए हैं कि इस कुकर्म को नष्ट करने का कोई उपाय नहीं करते। उलटे हम देखते हैं कि इस नैतिक कायरता के लिए पुरुषों की वीरों में गणना की जाती है और इस अत्याचार को प्रशंसावह अथवा योग्य समझ कर इसे और उत्तेजन दिया जाता है।

अच्छा तो आइए, ज़रा नर्क की सैर कीजिए—पुरुषों के अत्याचारों से पीड़ित स्त्रियों की अवस्था देखिए—और सराहना कीजिए उस नैतिक बल की जिस के कारण समाज में यह घोर अनाचार व्याप्त हो रहा है। 'नवजीवन' में 'पतित बहनें' शीर्षक से महात्मा गाँधी ने लिखा था—

बारीसाल में कितनी ही उल्लेख करने योग्य स्मरणीय बातें हैं। परन्तु, मुझे इतना समय नहीं कि सब का वर्णन कर सकूँ; तो भी एक प्रसङ्ग का उल्लेख किए बिना रह नहीं सकता। वह है बारीसाल की पतित बहिनों का। इस दृश्य को मैं कभी नहीं भुला सकता। उनकी संख्या ३५० के क़रीब होगी। उन्होंने पत्र लिखा था कि हम आप से मिलना चाहती हैं। ज्योंही मैं रात को सभा में आया, मैं ने कई सौ बहिनों को एक कोने में खड़ी देखा। मैं सचेत हुआ। बड़े आदर के साथ उन्हें छत पर ले गया। एक दुभाषिए को साथ में रखा। दूसरे पुरुषों को विदा कर दिया। मैं ने उनसे कहा कि तुम दिल खोल कर अपनी बातें मुझसे कहो। उनमें चार-पाँच दस वर्ष की लड़कियाँ भी थीं और कितनी ही जवानी पार कर गई थीं। बाक़ी जो थीं वे २० से ३० वर्ष के अन्दर होंगी।

नके साथ मेरी जो बातचीत हुई उसे सवाल-जवाब के रूप में यहाँ ता हूँ—

स०—बहिनो, अच्छा हुआ जो तुम आगई। मैं तो तुम्हें अपनी हिन और लड़कियों के बराबर समझता हूँ। मैं चाहता हूँ कि तुम्हारे ख में शरीक होऊँ, पर अगर तुम मुझसे कुछ छिपाव रखोगी तो मैं म्हें सहायता देने में असमर्थ हो जाऊँगा।

ज०—आप जो कुछ पूँछिएगा उसका जवाब हम सच सच देंगी।

स०—तुममें से कितनी ही की उम्र ज़्यादा मालूम होती है। क्या ह भी अब तक तुम्हारे इस पेशे में अटकी रहती हैं?

ज०—नहीं तो, जिनकी उम्र ज़्यादा है, वे भीख माँग कर अपना पेट रती हैं।

स०—ऐसा करना तुम्हें ज़ेबा देता है?

ज०—यह पेट सब कुछ कराता है।

स०—ये लड़कियाँ तो छोटी-छोटी हैं, इनका भी यही हाल है?

ज०—हम तो यह आशा करके आपके पास आई हैं कि आप कोई ास्ता बताएँगे। हम में से कोई भी इस पेशे को नहीं करना चाहती।

स०—अच्छा, जो जवान हैं उनका क्या हाल है? इस पेशे की भोग-ामग्री पर उनका मन ललचाता तो नहीं?

ज०—जी हाँ, कुछ ऐसी हैं तो।

स०—तुम लोगों को बाल-बच्चे होते हैं?

ज०—जी, किसी-किसी को होते हैं।

स०—तुम्हारी कुल संख्या कितनी है?

ज०—३५०

स०—इसमें बाल-बच्चे कितने हैं?

ज०—कोई १० हैं।

स०—लड़के हैं या लड़कियाँ?

ज०—कोई छः लड़कियाँ और बाक़ी लड़के।

स०—लड़कों को क्या करती हो?

ज०—एक लड़का बड़ा है। उसकी शादी हममें से ही एक के सा कर दी गई है।

स०—तुम अपनी लड़कियाँ मुझे दोगी?

ज०—अगर आप परवरिश करें तो दे देंगी।

स०—तुम कितनी बहिनें इस पेशे को छोड़ना चाहती हो?

ज०—सब की सब।

स०—जो काम मैं बताऊँ उसे करोगी?

ज०—हम जानती हैं, आप क्या काम बताएँगे। हममें से कितनों ह ने सूत कातना शुरू कर दिया है।

स०—यह सुन कर तो मुझे बड़ा सन्तोष हुआ। पर जिन बहनों ने कातना शुरू किया है उन्होंने अपना पेशा छोड़ दिया है नहीं?

ज०—वह तो हमारे लिए आवश्यक हो गया है। उतने से हम अप पेट कैसे पाल सकती हैं?

स०—आजकल तुम कितना पैदा कर लेती हो?—तुम जवाब शर्माती हो। तुम्हारी शर्म का मतलब मैं समझ सकता हूँ। मैं तुम्हारे बात तो कर रहा हूँ, पर मेरे दिल में आग लग रही है। जो बात हो इस वक़्त तो तुम मुझसे कह दो?

ज०—बहुत सी साठ रुपया महीना पैदा कर लेती हैं—२) रु० रोज़ पड़ते हैं।

स०—यह तो मैं जानता हूँ कि इतनी आमदनी सूत कात कर तुम नहीं कर सकतीं।

ज०—आप हमें रास्ता बताइए, हम ज़रूर उस के मुताबिक़ चलेंगी।

स०—तुम कितनी बहिनें कल ही से अपना पेशा छोड़ देने को तैयार हो?

इसके जवाब में ११ बहिनें उसी वक़्त खड़ी हो गईं। मैं ने उनसे कहा कि ख़ूब विचार कर लेना। उन्होंने कहा कि हम अपने निश्चय पर क़ायम रहेंगी। उन्होंने तो पहिले ही से विचार रखा था। अब उसके अनुसार काम किस तरह करें, इसी उलझन में वे थीं। इसलिए मैं ने कहा—

अब तुम शादी का तो विचार ही छोड़ दो। भूतकाल में तुमने जो कुछ भी किया हो, पर अब अगर तुम सचमुच शुद्ध हो जाओगी तो संसार तुम्हारे पापों को भूल जायगा, इत्यादि।

पाठको! तुम चाहे भाई हो या बहिन, मैं नहीं कह सकता कि इसे पढ़ कर आपके मन और हृदय पर क्या असर होगा। मैं ने आपके सामने पूरा वर्णन पेश नहीं किया है। यह तो उसका चित्र-मात्र अङ्कित किया है। चीज़ की असलियत तो आँखों देखने से ही मालूम हो सकती है। मैं तो बराबर मारे शर्म के मर रहा था। और

स्त्रियों के प्रति किए गए पुरुषों के अपराध की नाप-जोख कर रहा था। ये बहिनें जान-बूझकर इस पाप में नहीं पड़ीं। पुरुषों ने

इसमें उन्हें गिराया है। अपने विषय-भोग के लिए उन्होंने स्त्री-जाति के ऊपर घोर अत्याचार किया है।

जिनको इस बात पर दर्द होता हो उन्हें चाहिए कि वे प्रायश्चित के रूप में इन पतित बहिनों को हाथ बढ़ाकर सहारा दें। जब-जब इन बहिनों का चित्र मेरी आँखों में खिंचता है, तब-तब मुझे ख़्याल होता है कि अगर ये मेरी ही बहिनें या लड़कियाँ होतीं—होतीं क्या हुई हैं—तो?

* * *

आइए, अब एक अन्य पामर बहिन के जीवन पर दृष्टि डालें और देखें कि पुरुषों के अत्याचारों ने कहाँ तक कमाल किया है। अच्छा तो सुनिए! निम्न-लिखित घटना श्रीमती रजनी बहिन ने एक सत्य घटना के आधार पर लिखी है—

मैं रेलवे स्टेशन पर पहुँची ही थी कि ट्रेन आ पहुँची। सेकण्ड-क्लास के डिब्बे की तलाश हुई। स्त्रियों के लिए सिर्फ़ एक ही कम्पार्टमेण्ट था, पर उसमें एक ही व्यक्ति था—वह थी स्त्री। उसे देखते ही ऐसी घृणा उत्पन्न हुई कि पुरुष-यात्री के साथ बैठना अथवा थर्ड-क्लास में बैठना ही भला मालूम हुआ। नृत्य और सङ्गीत का सामान उसके पास पड़ा था, तबलची वग़ैरह नौकर उसके कम्पार्टमेण्ट के पास खड़े थे, जिनके साथ वह कुछ हँसी-मज़ाक कर रही थी। एक ही डिब्बा होने के कारण नौकर ने सारा सामान उसमें भर दिया था और अब उसे बदलने की इच्छा कर ही रही थी कि एञ्जिन ने सीटी दी। लाचार अनिच्छा होते हुए भी उसी डिब्बे की शरण लेनी पड़ी। बड़े ही कष्ट से मैं उसकी सबसे आख़िरी सीट पर जा बैठी और 'सती-मण्डल' पुस्तक लेकर पढ़ने लगी। मैं

जान-बूझ कर उस स्त्री की ओर से पीठ फेर ली थी। ट्रेन जा रही थी और मेरा पुस्तक पढ़ना जारी था। "कौन हो बहिन?" मृदु स्वर से उसने पूछा, पर मैं ने उत्तर न दिया। "कहाँ जाओगी?" फिर उसने पूछा। मेरा क्रोध बढ़ता गया; मैं ने उत्तर न दिया। वह अपनी जगह से उठकर मेरे नज़दीक ही एक सीट पर आ बैठी और मेरे हाथ में पुस्तक देखकर बोली—"ओहो! सती-मण्डल है बहिन! कैसी सुन्दर पुस्तक और कैसी पवित्र जीवनियाँ हैं!" उसके ये शब्द सुन कर मुझे कुछ कौतूहल हुआ। मैं ने पीठ फेरे ही कहा—"हाँ सती-मण्डल पुस्तक है" और पढ़ना जारी रखा। वह भी चुप न हुई, बोली—"सावित्री और दमयन्ती की पति-भक्ति प्रशंसनीय है ही, परन्तु सीता जी का चरित्र तो अत्यन्त आदर्श है!" मुझे कुछ आश्चर्य हुआ। ऐसी क्षुद्र स्त्री सीता-सावित्री जैसी सतियों के चरित्र की आलोचना करे, इससे तो उन सतियों का नाम अपवित्र होता है। मैं ने उसे चुप करना चाहा, पर वह तो बोलती ही गई—"मदालसा, कुन्ती और कौशल्या जैसी माताओं की हमारे देश में कमी है"। अब तो मेरी उत्कण्ठा बहुत ही बढ़ गई। यहाँ यह स्मरण रहे कि वह पुस्तक गुजराती की थी और वह स्त्री भी गुजराती में बात-चीत कर रही थी। मैं ने पूछा—"मुझे आश्चर्य होता है कि तुम हिन्दुस्तानी होकर ऐसी विशुद्ध गुजराती बोल लेती हो"। यह प्रश्न कर मैं ने उसके मुख की ओर देखा। कहना ही पड़ेगा कि वह एक परम सुन्दरी थी। मेरे प्रश्न से उसके मुख पर दुख की छाया छा गई और उसके काले सुन्दर नेत्रों से बड़े मोतियों की तरह आँसू टपक पड़े। मुझे अपने प्रश्न के लिए सङ्कोच हुआ। वह बोली—"बहिन, मैं काठियावाड़ की निवासिनी हूँ। भाग्य के फेर से इस अवस्था को प्राप्त हुई हूँ"। मैं ने पुस्तक बन्द करके पूछा—"तो

क्या तुम काठियावाड़ी हो ?"। "हाँ बहिन, मेरी कर्म-कथा सुनकर यह गिरनार-पर्वत भी पिघल कर पानी हो जायगा।" बेतरह रोते और गले में गिरनार पर्वत की ओर अँगुली उठाकर वह बोली, सुनो बहिन—

"काठियावाड़ के......नगर में मेरे पिता जी एक अच्छी के व्यापारी थे। मेरी पाँच वर्ष की आयु में माता और ७ वर्ष की आ पिता का देहान्त होगया। वे मुझे मरते समय चाचा के यहाँ छोड़ जब मैं नौ वर्ष की थी तो ७० वर्ष के बुड्ढे पति के साथ पाँच हज़ार लेकर मेरा विवाह कर दिया गया और मैं ससुराल आ गई। उसी बुड्ढे पति-देव स्वर्ग सिधार गए। सारी जायदाद पति के भतीजे कि लाल को मिली, जो हमारे साथ रहता था। मुझे भी उसी के आश्रम छोड़ दिया। किशोर की स्त्री और किशोर में परस्पर पटती न थी, अतः अपने मायके रहती थी। मैं दो-तीन साल किशोर के साथ घर में र अब मेरी अवस्था १९ वर्ष की थी और वैधव्य के दुख को मैं अच्छी समझ सकती थी। किशोर की ओर से मुझे सदा भय रहता था, उसका बर्ताव मेरे साथ दयालुता का था। वह मुझे देखकर कहता 'काकी माँ तुम तो एक सुन्दरी हो' और पूजा करते-करते देवताओं चढ़ाने के फूल मेरे ऊपर फेंकता और हँसता।

बरसात के दिन थे; रात अँधेरी थी, सर्वत्र शान्ति थी। मेरे कमरे दिया जल रहा था। स्वप्न में मैं ने विचित्र दृश्य देखा। किशोर ने कहा 'काकी माँ मुझे तो बाहर बहुत सरदी लगती है।' मैं शोक से मूर्च्छि हो गई। सवेरे मैं अपनी शय्या पर अकेली न थी।" इतना कह वह रोई, मैं समझाने लगी। अब फिर उसने कहा "मैं दिन प्रतिदिन घबड़ा लगी। इस पाप से छूटने की इच्छा करने लगी। मेरे पड़ोस में एक डिप्टी-एज

इन्सपेक्टर रहते थे। उन्होंने एक दिन कहा—'चार-एक किताबें तो तुम पढ़ी हो, थोड़ा-बहुत और सीख लो तो बहुत काम देगा'। किशोर ने 'हाँ-ना' कर मञ्ज़ूर कर लिया। लाज से घुमड़ती हुई हाथ में पुस्तक लेकर पाठशाला जाने लगी। तरुण शिक्षक! प्रभु दया करो। पर मैं दृढ़ रही। अब तो मैं किशोर को तुच्छ समझ कर उससे दूर रहती। मास्टर जी ने किशोर को कुछ समझाया। किशोर नाराज़ तो था ही, दोनों का ...क उद्देश्य था। अपने-अपने स्वार्थ के लिए ज़ुल्म करने लगे। मैं ने इस ...क से बचने और बाहर कोई शिक्षक की नौकरी प्राप्त कर पवित्र-जीवन ...तीत करने के उद्देश्य से बम्बई जाना निश्चित किया, और ज्यों-त्यों ...ड़ा इकट्ठा कर बम्बई चली गई। गाँव में किशोर और मास्टर साहब ने ...बर उड़ा दी कि वह तो किसी के साथ बुरे उद्देश्य से भाग गई। पर ...झे तो अपने अन्तःकरण पर भरोसा था। मेरे हृदय को तो ईश्वर जानने ...ला था। मेरे पास एक ही गहना था, वह भी बहुत मामूली था। उसी ...ो बेंचकर एक सप्ताह रह कर नौकरी तलाश करने का निश्चय किया। ...धर-उधर धूल फाँकने लगी। कहीं से उत्तर मिलता—'सार्टीफ़िकेट लाओ' ...हीं कह दिया जाता—'चाल-चलन की ज़मानत दाख़िल करो'। कहीं ...ाफ़ कह दिया जाता—'अभी कोई जगह ख़ाली नहीं'। क्या करूँ, ...ब तो पास भी कुछ न था। मेरी अवस्था देखकर एक पड़ोसी ने दया ...ी और मुझे एक नौकरी बताई; पर दुर्भाग्य से वह नौकरी नाटक कम्पनी ...ं ऐक्ट्रेस की थी, परन्तु मैं क्या करती! अनिच्छा रहने पर भी बहुत ही ...ाचारी के साथ उसे स्वीकार करना पड़ा। मैंने पवित्र रहना निश्चय कर ...लया था, पर क्या यह पवित्र जीवन था? नहीं, कदापि नहीं। ऐक्टरों ...े सहित दर्शकगण 'मिस-मेनका' के साथ ख़ूब मज़ाक करते। मैं एकान्त

में बैठकर रोया करती और फिर अपने घर लौट जाने का उपाय सो
करती। अभी मेरा वेतन तीन-चार मास का शेष था। केवल एक मास
वेतन मुझे मिला था। मैं बड़े-बड़े बहाने बना कर स्टेशन पर आई
वहाँ से अपने घर आई, पर दुर्भाग्य तो देखिए! वहाँ मुझे किसी
आँगन तक में नहीं खड़े रहने दिया। छोकरे मेरी ओर अँगुली उठाने ल
और बड़े लोग मुझे देखकर थूकने लगे। बहिन, तुम विश्वास न करोगी
दो दिन मैं बिना अन्न के रही। तीसरे दिन नदी किनारे बैठी मैं रो रही
कि किसी के पैरों की आहट मुझे सुनाई दी। मैं ने सुना—रमणी!
मौसा-मौसी आए हैं। आने वाले तीन लोगों में से एक मेरे गाँव
था, जिसने ये शब्द कहे थे। वह एक बड़ा शैतान था, पर इससे क्या
डूबते को तो तिनके का सहारा काफ़ी है। वह ऐसे दुख के समय में मे
सम्बन्धियों को मेरी सहायता के लिए ले आया; अतः मुझे तो व
फ़रिश्ते से भी बढ़ कर मालूम हुआ। मेरी मौसी तो मुझे देख कर नाना प्रका
की आकृति बना कर रोने लगी। मैं अपनी मौसी को पहिचानती न थी
पर कैसा उसका हेत? और कैसा उसका प्रेम? पत्थर तक पानी हो जाता
मेरे मौसा ने कहा—"बेटी, तुम हमें पहचानतीं नहीं। हम बहुत वर्षों त
अफ्रीका में रहे और ख़ूब कमाया, पर सन्तान बिना सब व्यर्थ। ते
दुर्दशा का हाल सुन कर यहाँ आए हैं। बेटी, तू ही हमारी अन्धों क
लकड़ी है।" मौसी तो मेरे पति आदि की याद कर कर ख़ूब रोई। मे
आनन्द का क्या ठिकाना था? मैं ने सच्चे हृदय से ईश्वर का उपकार माना
वे मेरे भोजन के लिए मिठाई भी लाए थे। दो दिन का फ़ाक़ा था। मैं
पेट भर खाया और पानी पिया। वे बड़े लाड़-प्यार से मुझे घर लिवा
गए। उन्होंने कहा कि वे आजकल पूना में रहते हैं; वहाँ उनकी बड़

दूकान है। मैं ने कहा कि पूना बम्बई होकर जाना पड़ेगा तो बम्बई से तो मैं घबड़ा चुकी हूँ, अतः किसी अन्य मार्ग से पूना चलो। उन्होंने सूरत होकर दूसरे मार्ग से पूना जाना मञ्ज़ूर कर लिया। रास्ते में भरौंच मिला। सब लोग नाश्ता करने बैठे। मेरी मौसी ने मौसा को सम्बोधन कर कहा— मेरी सुकुमार बेटी सूखकर लकड़ी हो गई है, स्टेशन से दूध ले आओ; दूध के बिना काम न चलेगा। मौसा शकर मिला हुआ दूध ले आए। मैं ने दूध पिया। मौसी बोली—बेटी! मेरी गोद में सिर रखकर सो जा। मैं सो गई और उसी के साथ मेरा भाग्य भी सो गया। जब जगी, तब ट्रेन में न थी। मौसा-मौसी भी न थे। एक अजान स्त्री मेरे पलङ्ग पर बैठी थी। मैंने पूछा 'मौसी कहाँ है?' वह हँसी और बोली 'मौसी यहाँ कहाँ? वह तो गई।' उस स्त्री ने कुछ इशारा किया और तुरन्त ही एक दूसरी स्त्री हाथ में दूध का प्याला लिए तथा एक अन्य ब्राण्डी की बोतल ले कर हाज़िर हुई, मैं ने दूध पिया। ब्राण्डी के प्रति मेरा तिरस्कार देखकर वे सब हँसने लगीं। दो-चार मिनिट बीतते न बीतते और तीन-चार स्त्रियाँ आ उपस्थित हुईं। मैं तो इस स्त्री-साम्राज्य का अर्थ समझ न सकी। मेरा सिर घूमने लगा। मैं ने नेत्र मूँद लिए। एक बोली 'कैसी रूपवती है! मानो साक्षात् परी है।' दूसरी बोली 'अभी १५ वर्ष की भी तो पूरी नहीं है।' तीसरी ने कहा '४००) रु० क़ीमत कुछ बहुत नहीं है।' चौथी ने कहा 'अरे, एक महीने में तो ४०००) रु० का ढेर लग जायगा।' अब मैं समझ सकी कि मैं एक कुलटा के हाथों बेंची गई हूँ। मेरी नक़ली मौसी ने मुझे ४००) रु० पर इस भ्रष्टाचार के लिए बेच दिया है। नौ-दस मास तक मेरा धर्म बचा रहा। मैं ने छूटने के लिए बहुत हाथ-पैर फटफटाए; परन्तु वह तो नरक था। वहाँ से छुटकारा

होता? मैं अनेकों तीव्र यातनाएँ सहकर भी अपने धर्म पर दृढ़ रही। आखिर बेहोश कर एक दिन मेरा धर्म भ्रष्ट कर दिया गया। बहिन, उसी दिन मैं यह महान् अपवित्र जीवन व्यतीत कर रही हूँ, उसी दिन से यह पाप-करा रही हूँ। छिः बहिन; तुम्हीं सोचो मेरा इसमें क्या अपराध है? क्या तुम यह समझती हो कि हमारे हृदय नहीं है? क्या तुम यह समझती हो कि इस जीवन में हमें सुख है ? क्या तुम यह मानती हो कि हमारे अमूल्य जीवन का कोई महत्व नहीं है? क्या हम पशु हैं? क्या हमारे भाव नहीं है? पर करें क्या? क्या कोई ऐसे भी व्यक्ति हैं जो क्षण भर हमारे पास रह कर हमारी इस करुण-कथा को सुन सकें? कोई ऐसा भी है जो हमारी हृदय-व्यथा को पहिचान सके? तुम्हीं सोचो कि इस कम्पार्टमेण्ट में न बैठने के लिए तुमने कितनी कोशिश की? मेरा ध्यान उसी ओर था। सब हमारा तिरस्कार करते हैं, हमें दुतकार देते हैं, हमारे मुँह पर थूकते हैं। जिन पुरुषों ने अपने नीच-स्वार्थ के लिए हमारा समस्त जीवन नष्ट कर दिया, वे ही हमें किस कुदृष्टि से देखते हैं। तुम्हीं कहो, यदि मैं इस अपवित्र जीवन को छोड़ कर आज तुम्हारे पास नौकरी करना चाहूँ तो क्या तुम रखोगी? देखो तुम उत्तर नहीं देतीं। तुम भले ही हमें धिक्कार दो, पर क्या हम इच्छा रहते भी सुधर सकती हैं? कौन ऐसा है, जो हमारी इस अवस्था पर तरस खाकर हमारे साथ चार आँसू बहाए? मुझे तो कोई ऐसा नहीं दिखता, जो हमारी इस दुर्दशा को देखे और हमारी अन्तराग्निको शान्त करे। मुझे तो कोई नहीं दिखता, जो इस अत्याचार से हमारी रक्षा करे। अजान अवस्था में भूल से जो पाप हो गया उसका ऐसा भयङ्कर परिणाम तो अवश्य ही शोचनीय है। हमें तो विश्वास है, हमारा न्याय न होगा। यह तो एक मेरा ही जीवन-चरित्र है। मैं ने

ापनी सङ्गिनी पचासों बहिनों से मिलकर उनका जीवन-वृत्तान्त सुना है। ाह तो और भी हृदय-वेधक है—उसे सुनकर तो और भी ज़्यादा रोना ाड़ता है। मुझ जैसी सैकड़ों, सहस्रों बहिनें आज पुरुषों के इस अत्याचार के कारण पतित हो रही हैं। कोई हमारी ओर पवित्र-दृष्टि से देखे तो सही, कोई हमारी इस हालत पर जी से अफ़सोस तो करे और थोड़ा-सा न्याय हमें भी दे, तो वह देख ले कि हम विषयों ही के कीड़े नहीं हैं। अरे! ३२ करोड़ हिन्दुस्तानियों में से कोई तो ऐसा माई का लाल निकले, जो इन अत्याचारों से हमारी रक्षा करे, जो इस पतितावस्था से हमारा उद्धार करे।" मैं तो उसकी ये बातें सुनकर फूट-फूट कर रोने लगी। मुझे रोते देखकर वह बोली—"बहिन! तुम रोती हो, पर इस रोने से हमारा क्या कल्याण होगा? यदि रोने से ही कुछ हो सकता तो हम रो-रो कर कुएँ भर देतीं। आँसुओं की दया हमें न चाहिए। हमें तो इस नरक से बचाओ।" वह भी रोते-रोते बातें करती थी, अब चुप हो रही; आध घण्टे में विचार कर मैंने उससे कहा 'बहिन! यदि सचमुच तुम्हें इस व्यापार से घृणा उत्पन्न हो गई है, यदि तुम सचमुच ही पुरुषों के इस अत्याचार का प्रतिकार किया चाहती हो तो ख़ुशी से जाकर मिशन-विभाग के अध्यक्ष वर्क सी० से मिलो। लो, मैं तुम्हें परिचय-पत्र लिखे देती हूँ। परन्तु हाय! इससे तो तुम्हें ईसाई बनना पड़ेगा!' उसने उदासीन-भाव से कहा 'इस अधम अवस्था में रहने से तो ईसाई बनकर रहना हज़ार दर्जे अच्छा है। यदि तुम हमें हिन्दू-समाज में पवित्र नहीं रख सकती हो, तो हमें ईसाई बन कर ही पवित्र जीवन विताने दो—हमें इस पापागार से छूटने दो।' स्वामी विवेकानन्द ने कहा है 'पामर पर दया कर उसका उद्धार करो। इस श्रेणी के तिरस्कार से लाभ नहीं है। उनके लिए कुछ तो करना

आपने ऊपर लिखी हृदय-द्रावक घटना पढ़ी। सच मानिए आज भारतवर्ष में ऐसी कई लाख पामर वहिनें हैं जो केवल पुरुष के स्वार्थ के कारण तथा उनकी नीचता और धूर्त्तता के कारण नार कीय कष्ट भोग रही हैं। उनके बराबर दुखी कोई नहीं है। आह बेचारी अबलाओं पर यह कैसा अत्याचार किया जाता है। उनके भोलेपन, सरल भाव और नासमझी का कैसा दुरुपयोग किय जाता है। है कोई ऐसा व्यक्ति, जो हाथ उठा कर यह कह दे कि इस अत्याचार के करने वाले पुरुष नहीं है! हम तो यह कहें कि ऐसा जो कहेगा, उसके बराबर मूर्ख कोई दुनियाँ में नहीं है बात तो यह है कि सारे अत्याचार पुरुषों के किए हुए हैं और वे पुरुषों के हित के लिए ही किए जाते हैं। ख़ैर और आगे बढ़िए, ज़रा देखते चलिए कि पुरुषों ने स्त्रियों पर कैसा पुरुषत्व दिखाया है। यह बात ठीक है कि इन अत्याचारों में स्त्रियों का भी हाथ रहता है; किन्तु, स्त्रियाँ स्वयँ अपने लिए क्यों यह अत्याचार करने लगीं। वे तो पुरुषों द्वारा चलाई जाती हैं। मौक़ों पर स्त्रियों से जाल बिछाने का काम लिया जाता है और अत्याचारियों का साथ देते देते वे ऐसी हृदयहीन कुलटाएँ हो जाती हैं कि उनके कुकर्मों को विचार कर हृदय काँप उठता है। आइए, हम आपको ऐसी ही दो स्त्रियों का हाल और सुनाएँ। "मेदिनीपुर-हितैषी" ने दो ऐसी चरित्र-भ्रष्टा, कुल-कलङ्किनी और चाण्डालिनियों के भीषण-पाप व्यवसाय का समाचार अपने पत्र में प्रकाशित किया है, जो एक बार हृदय को कम्पायमान कर शरीर को रोमाञ्चित कर देने वाला

है। उन दोनों स्त्रियों में माँ-बेटी का सम्बन्ध है। माँ का नाम सुरबाला और लड़की का नाम गायत्री है। अत्यन्त सम्मानित ब्राह्मण-वंश में सुरबाला का विवाह हुआ। उस वंश का पवित्र इतिहास कुछ दिन हुए एक बङ्गला पत्र में प्रकाशित हुआ था। सुरबाला के स्वामी का पवित्र उज्वल नाम प्रकाशित करनां ठीक नहीं। सुरबाला के पति साहित्य-सेवी थे। उन्होंने बङ्गला में भाषा वेदादिशास्त्र प्रकाशित किया था। इसी कारण उन्होंने अपनी बालिका का नाम गायत्रीदेवी रखा था।

स्वामी की जीवित दशा में सुरबाला का आचरण अपवित्र था। पति के मरते ही वह राक्षसी-रूप में परिणत हो गई। कन्या गायत्री अपने पति के यहाँ रहती थी। स्वयँ विधवा होने पर सुरबाला गायत्री को लिवा लाई और सरे-बाज़ार उससे वेश्या का व्यवसाय कराने लगी। उसने उसके पति—अपने दामाद—को भगा दिया। सुना जाता है कि इसके बाद सुरबाला ने अपने इस व्यवसाय में लगभग ५०० भद्र-बालिकाओं और युवतियों को धर्म-भ्रष्ट कराया। ऐसा भीषण-पाप वेश्या भी कभी नहीं कर सकती।

गत वर्ष कलकत्ते में दुर्गा-पूजा के अवसर पर एक सोलह वर्षीया युवती सुहासिनी अपनी सांस, ननद आदि के साथ गङ्गाजी स्नान करने गई। सुहासिनी जब स्नान कर के लौटी तो रास्ते में सुरबाला के षड्यन्त्र से बेचारी सुहासिनी का साथ स्वजनों से छूट गया। वह यह देख रोने लगी। सुरबाला और गायत्री ने

बन्धुत्वभाव प्रदर्शित कर बातें कीं और कहा कि मैं तुम्हारे श्वसुर का घर जानती हूँ और तुम्हें वहाँ पहुँचा दूँगी। सुहासिनी इस पर विश्वास करके उसके साथ चली। एक घर में पहुँच कर सुहासिनी ने जब देखा, यह उसका घर नहीं; तो वह घबराई। किन्तु दोनों माँ-बेटियों ने उसे अपने यहाँ ज़बरदस्ती ले जाकर रखा और रात्रि में उसका धर्म नष्ट कराया। इधर श्वसुर के घर से पुलिस में सूचना दी गई, चारों ओर ख़ूब खोज हुई। पकड़ जाने के भय से सुरबाला और गायत्री सुहासिनी को लेकर काशी भाग गईं। कुछ दिन बाद कलकत्ते लौट आई थीं। सुरबाला ने निःशङ्क होने के उद्देश्य से सुहासिनी की ओर से वकील द्वारा अदालत में अर्ज़ी दिलवाई कि वह अपनी इच्छा से वेश्या होना चाहती है। ऐसे कार्य के लिए वकील भी रुपए देने पर बहुत मिलते हैं। दरख़्वास्त अङ्गरेज़ी में थी। बेचारी भोली-भाली सुहासिनी अङ्गरेज़ी क्या बङ्गला तक भी न जानती थी। उसे इतना बतला दिया गया था कि पुलिस यदि पूँछे तो कहना कि मैं अपनी इच्छा से यह कार्य कर रही हूँ। आदेशानुसार उसने ऐसा ही कार्य किया। बस, फिर क्या था ? सुरबाला स्वतन्त्र हो गई।

स्त्रियों के प्रति दुराचार का बाज़ार कहाँ तक गर्म है, इस बात का एक और उदाहरण देखिए ! बङ्गाल के नदिया ज़िले में भिटकी-पोटा एक साधारण गाँव है। १२ अगस्त १९१७ को वहाँ के निवासी एक मुसलमान मतलबशेख़ के घर में उसकी सप्तदश-वर्षीया सुन्दर स्त्री अकेली बैठी थी। इतने में एक स्त्री एक पुरुष सहित

घर में आई। उसे देखते ही मिहरअफ़ज़ाँ ने पहचान लिया। मिहरअफ़ज़ाँ उसे बचपन से जानती थी। उसका नाम था लक्खी। मिहरअफ़ज़ाँ ने उसके आने का कारण पूछा तो उसने कहा "जल्दी चलो, तुम्हारे चाचा ने तुम्हें बुलाया है।" मिहरअफ़ज़ाँ ने कहा "मेरा पति बीमार है। वह अभी दवा लेने गया है। उसे छोड़कर मैं अभी नहीं जा सकती। पर, यह तो बताओ ऐसा क्या ज़रूरी काम है, जो चचा ने अभी बुलवाया है।"

लक्खी ने गम्भीर स्वर से कहा "बीबी, असल बात तो यह है कि तुम्हारे बाप को साँप ने काटा है। लोग उसे कलकत्ते के अस्पताल में ले गए हैं। वहीं तुम्हारे बाप ने तुम्हें इसी दम बुलाया है; जल्द चलो। मुझे और इस मर्द को तुम्हें साथ ले आने के लिए भेजा है। यह अपना ही आदमी है। तुम मेरे साथ अभी चलो! यह आदमी यहीं बैठा रहेगा और तुम्हारे पति के लौट आने पर उससे मिलकर सारा हाल कह देगा और तुम्हारे जाने की ख़बर भी कह देगा।"

'बाप को साँप ने डसा' यह सुनते ही मिहरअफ़ज़ाँ घबरा गई और झट लक्खी के साथ चलने को तैयार हो गई। वह दूसरा आदमी जिसका नाम उसने कलीमुद्दीन बताया था, वहीं बैठा रहा। मिहरअफ़ज़ाँ लक्खी के साथ घर से कलकत्ते को चल पड़ी।

कलकत्ते में डॉक्टरी कॉलेज के अस्पताल के पास सागरदत्त गली है। उसी के नं० ४८ वाले घर में प्यारी नामक एक स्त्री रहती है। उसी रात को कलकत्ते पहुँच कर लक्खी मिहरअफ़ज़ाँ को इसी

घर में ले गई। मिहरअफ़ज़ाँ ने बाप को कई बार पूछा, पर हर दफ़ा लक्खी और प्यारी ने कुछ ऐसा जवाब दिया कि जिससे मिहर-अफ़ज़ाँ को चुप हो जाना पड़ा। उसने उस घर में अपने इर्द-गिर्द दृष्टि दौड़ाई तो देखा, तीन जवान लड़कियाँ ख़ूब बनी-ठनी बैठी हैं। वे कौन हैं और क्यों इस तरह सोलहों शृङ्गार किए बैठी रहती हैं, यह मिहरअफ़ज़ाँ की समझ में नहीं आया और न वह यह समझ सकी कि क्यों थोड़ी-थोड़ी देर बाद कुछ पुरुष घर में आते हैं और क्यों उसी समय वे तीनों लड़कियां या उनमें से कोई एक या दो अलग बुलाई जाती है।

परन्तु, दूसरे ही दिन वह भयङ्कर रहस्य प्रकट हो गया। जब मिहरअफ़ज़ाँ ने बाप के पास जाने की बहुत ज़िद की तो प्यारी या वह दूसरी स्त्री लक्खी उसके पास बैठ गई और बड़ी चिकनी-चुपड़ी बातें बनाकर उसने उन तीनों लड़कियों की ओर इशारा किया और कहा "क्या तुम ऐसे सुन्दर वस्त्र-आभूषण नहीं पहनना चाहतीं ? क्या तुम गन्दे-गाँव को छोड़ कर कलकत्ता में बेगमों की तरह रहना और यहाँ जवानी की बहार लूटना नहीं चाहतीं ?

यह सुन भोली-भाली मिहरअफ़ज़ाँ पहले कुछ न समझी, परन्तु ज्यों-ज्यों लक्खी ने अपने प्रस्ताव को अधिक स्पष्ट किया, मिहरअफज़ाँ की आँखें खुल गईं, उसका शरीर काँप उठा, तब निर्दोष लड़की को मालूम हुआ कि वह घर, गुप्त वेश्याओं का घर है और वह प्यारी उन दुराचारियों की प्यारी है, जो भोली-भाली जवान लड़कियों का धर्म नष्ट करने की ताक में रात-दिन फिरा करते हैं।

मिहरअफ़ज़ाँ ने गुस्सा दिखाकर और मिन्नत करके दोनों
ह उन स्त्रियों से बार-बार कहा कि मुझे इस घर से जाने दो, मैं
दापि वह काम नहीं कर सकती जो तुम मुझसे कह रही हो,
यादि; पर उन स्त्रियों ने उसकी एक न सुनी और अन्त में
हर को खूब डरा-धमका कर एक कोठरी में बन्द कर दिया।

योंही दिन बीत गए। मिहरअफ़ज़ाँ का बाप अपनी प्यारी
टी को ढूँढता कलकत्ता आया और किसी तरह उसने यह भी
ता लगा लिया कि अफ़ज़ाँ सागरदत्त गली के उसी घर में क़ैद
है। उसने पुलीस में ख़बर की और वारण्ट निकलवा कर अपनी
लड़की को प्यारी के घर में से बरामद कराया।

ऊपर की यह घटना किसी उपन्यास की नहीं, बल्कि सङ्गीन
अभियोग की गन्दी कथा का कुछ अंश है। यह अभियोग जब
चला तो अदालत में लड़की के बरामद होने का हाल सुनाते हुए
वकील ने कहा कि कलकत्ते के बड़े बाजार थाने के प्रधान अफ़सर
सबइन्सपेक्टर ग़नी ने लड़की को बरामद किया। परन्तु रात
भर में लड़की को यह पट्टी पढ़ा दी गई कि तेरे बाप को तेरे वेश्या
हो जाने की ख़बर मिली है। उसने प्रण कर लिया है कि ज्योंही
लड़की मेरे हाथ में आएगी उसी दम उसका गला काट डालूँगा।
इसलिए तुम उसके पास मत जाना, बल्कि पुलीस-कमिश्नर के
सामने कहना कि मैं अपनी ख़ुशी से प्यारी के घर में रहती हूँ।
अपने बाप के पास नहीं जाना चाहती।

दूसरे दिन पुलीस-कमिश्नर के सामने मिहरअफ़ज़ाँ ने ऐसा

ही बयान कर दिया। फल यह हुआ कि मामला खारिज हो गया, मिहरअफज़ाँ फिर प्यारी के चङ्गुल में फँस गई और बेचारा बाप अपना-सा मुँह लेकर रह गया।

उसी रात को वह पुलीस-अफ़सर ग़नी, प्यारी के घर गया और मिहरअफ़ज़ाँ को डरा-धमका कर उसी रात को उसका सतीत्व भङ्ग कर दिया। तब से मिहरअफ़ज़ाँ पूरे पाँच महीने तक उसी घर में सबइन्सपेक्टर ग़नी के साथ सहवास करती रही। नाम को वह खास ग़नी के लिए घर में रखी गई थी, परन्तु प्यारी अन्य पुरुषों को भी उसके पास भेजती और उनसे भारी फ़ीस ऐंठ कर अपनी जेब भरती थी। मिहर को ऐसी ज़िन्दगी से जान दो भर हो गई। उसने एक दिन बहुत तङ्ग आकर आत्म-हत्या का उद्योग किया। पर सफलता प्राप्त न हो सकी। इसी बीच में कलकत्ते के एक ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट भी प्यारी के मेहमान हुए, और मिहर के सौन्दर्य पर मोहित हो उन्होंने भी उस अबला के सर्वनाश में खासा भाग लिया। जब एक बार यह निश्चय हुआ कि मेहर किसी मैजिस्ट्रेट के सामने यह बयान लिख दे कि मैं अपनी खुशी से वेश्या-वृत्ति करती हूँ, तो इन्हीं मैजिस्ट्रेट ने यह जानते हुए भी कि मिहर से ज़बरदस्ती वेश्या-वृत्ति कराई जा रही है, मिहरअफ़ज़ाँ का यह बयान मैजिस्ट्रेट की हैसियत से लिख मारा।

यों ही पुलीस-अफ़सर ग़नी पर यह आरोप हुआ कि जब मेहरअफ़ज़ाँ के पति ने अपने ज़िले की अदालत में अपनी स्त्री के भगाई और रोके जाने की फ़रियाद की और वहाँ से वारण्ट आया

कि प्यारी के घर में रखी हुई मिहर को निकाल कर अदालत में हाज़िर करो तो यह जानते हुए भी कि प्यारी के घर में फ़ीरोज़ा के नाम से प्रसिद्ध लड़की मिहरअफ़ज़ाँ ही है, ग़नी ने हर बार वारण्ट यही कह कर लौटा दिया कि प्यारी के घर में मिहरअफ़ज़ाँ नाम की कोई लड़की नहीं रहती।

अन्त में मुक्ति कैसे हुई, कैसे इस पाप-कर्म का भण्डा फूटा, इसकी कथा अवश्य उपन्यासों की सी है। हुआ यह कि एक दिन एक हिन्दू लाला जी भी अपना शौक़ पूरा करने को प्यारी के घर पहुँचे। मोटा आसामी देखकर प्यारी ने अपने घर का तर-माल अर्थात् मिहरअफ़ज़ाँ को उनकी सेवा में पेश किया। एकान्त में बात-चीत होने पर मिहरअफ़ज़ाँ ने रोते-रोते अपनी सारी दुख-कथा उसे कह सुनाई।

हिन्दू ने उसे ढारस दी और वहाँ से लौट कर पुलिस को सूचित किया। इस बार एक दूसरा पुलीस-अफ़सर प्यारी के घर की तलाशी लेने पहुँचा। फिर क्या था; मिहर बरामद होगई और उसके मुँह से सारी कथा सुनकर प्यारी और लक्खी को गिरफ्तार किया गया। पुलीस-अफ़सर ग़नी भी मामला चलने तक मुअत्तल किया गया।

हम मामले का पूरा हाल नहीं लिख रहे हैं; किन्तु मुक़दमा चलने पर मालूम हुआ कि इस चक्र में अनेक पुरुष सम्मिलित थे।

यहाँ हम समाचार-पत्रों से दो चार अवतरण देते हैं। पाठक देखेंगे कि समाज में अत्याचार एवँ दुराचार किस भयङ्कर-रू में फैल रहा है :—

बेलिया-घट्टा-पुलीस ने मानिक के मकान की तलाशी ली। उसके घर छः लड़कियाँ मिलीं। चारुबाला नामक १३ वर्ष की लड़की ने कहा कि अपने पति के साथ शामबज़ार में रहती थी। दो वर्ष हुए मेरा भाई मु मानिक के घर भेज गया कि इसकी शादी किसी से करा दो। मैं मानि के घर में ४ दिन रही। मेरा कमरा बन्द रखा गया। इसके बाद मैं ए मेले में ले जाई गई। दो दिन मैं ने पान की दूकान चलाई, फिर मे पास एक आदमी लाया गया। उसने व्यभिचार का प्रस्ताव किया। मैं जब अनिच्छा दिखाई तो बड़ा क्रोध प्रकट किया गया। मैं १५ दिन मेले व्यभिचार कराती रही। रुपया मुझे नहीं दिया गया। ६ महीने बाद कलकत्ते लाई गई। दूकान से सौदा लेते समय मैं ने पुलीस-इन्सपेक्ट को आते देखा। उनसे मैं ने सारा हाल बता दिया।

कलकत्ते में कुमारी बालिकाओं का जीवन सुरक्षित नहीं। यहाँ दुष्टों का जाल इस क़दर फैला हुआ है कि उनका डर सदा रहना चाहिऐ। वेश्याएँ छोटी-छोटी बालिकाओं को निर्दयता से पिंजड़े में बन्द रखती हैं और उनसे अपना पेट पालती हैं। पुलिस इस दुराचार का रास्ता बन्द नहीं कर पाती, यह आश्चर्य है!

* * *

उस दिन दो मनुष्यों को सख़्त सज़ा का हुक्म दिया गया। उन पर एक द्वादश-वर्षीया लड़की को व्यभिचार के लिए रखने का अभियोग था

लड़की ने बयान दिया कि उनमें से एक व्यक्ति मुझे एक रण्डी के यहाँ रखकर मेरी कमाई पर गुज़र करता था। मेरे बाल छोटे कर दिए थे। दिन को मुझे मर्द के कपड़े पहनाता था और रात को मिस साहिबा बना देता था, जिससे मैं कितने ही लोगों को घर में ठहराती थी। जब मैं ने सुना कि वह मुझे एक रण्डी के हाथ बेचना चाहता है तो मैं भाग गई और जब दोनों ज़बर्दस्ती पकड़ने को गए तब पुलीस को ख़बर मिल गई।

पुलीस ने दोनों व्यक्तियों को गिरफ़्तार किया। उनके पास एक ७ साल की लड़की व्यभिचार के लिए थी।

* * *

कुछ दिन हुए मण्डावा सरकार का एक उमराव जिसका नाम श्यामा जी है, किसी एक युवा स्त्री को जिसकी आयु १८ वर्ष के लगभग थी और जो किसी उच्च कुल की मालूम होती थी, कहीं से फुसला कर लाया और लाहौरी ब्राह्मण की स्त्री के घर में उसे रक्खा। जब यह वृत्तान्त गाँव में फैला तो कई सज्जन मिलकर उसके घर गए और उससे पूछताछ की। उसने अपना पूरा परिचय तो नहीं दिया, किन्तु उसकी बातचीत से इतना ज्ञात हुआ कि वह औरत जोधपुर राज्य के अन्तर्गत ठिकाना पोकरण अथवा उसके निकट किसी गाँव की रहने वाली है। वह कभी-कभी अपने ग्राम का नाम खारा कभी मधरा बतलाती थी। उसकी बातचीत से जहाँ तक ज्ञात हुआ, वह माहेश्वरी वैश्य जाति की मालूम होती थी। उसकी ज़बानी यह मालूम हुआ कि लाल जी पुरोहित उसको फुसलाकर लाया और गाँव कोलाली में उसने उसे चन्दर जी राजपूत को सौंप

दिया। चन्दर जी ने उसे एक परदानशीन मुसलमान के घर में रखा वहाँ से उपरोक्त श्यामा जी उस औरत को बेचने के लिए मण्डाव लाया।

न मालूम ऐसी कितनी भोली-भाली अबलाएँ प्रतिदिन इन दुष्टों के चक्र में पड़कर अपना जीवन नष्ट कर देती हैं। कहीं वे बेची जाती हैं, कहीं भगाई जाती हैं, कहीं रण्डियाँ बनाई जाती हैं और कहीं छिपे-छिपे व्यभिचार कराया जाता है। अभी पञ्जाब वाली घटनाएँ लोगों से छिपी नहीं हैं। पञ्जाब में स्त्रियों का विक्रय जिस जोर-शोर से जारी है, उतना शायद अन्यत्र न होगा। जो कुछ भी हो ऊपर हमने जो थोड़ी सी सच्ची घटनाओं का वर्णन किया है, उनसे यह पता सहज ही लग जाता है कि स्त्रियों पर नैतिक अत्याचार किस प्रबलता से किया जा रहा है। वे पुरुषों के भ्रम-जाल में सहज ही पड़ जाती हैं, लोभ-प्रलोभन उन्हें तत्काल वशीभूत कर देता है और सबसे बड़ी बात जो उन्हें सचमुच अबला बना देती है, वह है उनका मूर्खतापूर्ण भोलापन। व्यभिचार की वृद्धि ही इन अत्याचारों का प्रधान कारण है। पुरुषों के नैतिक पतन ने ही इस व्यभिचार को तरक्क़ी दी है। यह व्यभिचार यहाँ तक बढ़ा है कि पुरुषों ने प्राकृतिक एवँ सामाजिक नियमों को भी भङ्ग कर दिया है। हम एक दो नहीं, बीसों ऐसे उदाहरण पेश कर सकते हैं, वे उदाहरण कपोल-कल्पित नहीं हैं बल्कि सच्चे हैं, और अदालतों में प्रगट हो चुके हैं तथा जिनके कारण अनेकों घर बरबाद हो चुके हैं—जिनमें देवर-भावज, भाई-बहिन, पिता-पुत्री, ससुर-बहू, चाची-भतीजा, मामी-भानजा

आदि व्यभिचार के दोषी पाए गए हैं। प्रत्येक मामले की जाँच करने पर मालूम हुआ कि पुरुषों ने ही स्त्रियों को व्यभिचार के लिए विवश किया और पुरुषों ने ही कामान्ध होकर धर्म के पवित्र बन्धन को लात मारा।

ऊपर हमने जिन अपवित्र एवँ अधार्मिक व्यापारों तथा अनैतिक व्यभिचारों का उल्लेख किया है, उनमें से हम प्रत्येक के चार छः उदाहरण जो हमने देखे और सुने हैं, दे सकते हैं; किन्तु नैतिक दृष्टि से हम ऐसा नहीं करना चाहते। नामोल्लेख से हमारा अभिप्राय यह दिखलाने को है कि पुरुषों के अत्याचारों ने कहाँ तक पैर बढ़ा दिए हैं और वे बढ़ते-बढ़ते किस प्रकार पशु-कोटि तक पहुँच गए हैं कि वासना से अन्ध होकर उन्हे माँ, बेटी, बहू, बहिन, चाची, मामी, भावज आदि किसी का ध्यान नहीं रहता। हा दुर्भाग्य ! हम इस कामान्धता में उम्र तक का ख़याल नहीं रखते और छोटी-छोटी बालिकाओं पर अत्याचार कर डालते हैं, और उन्हें कृत्रिम उपायों से अनेक कष्ट देकर व्यभिचार के योग्य बनाते हैं। यहाँ तक तो देखा गया है कि १२ या १४ वर्ष तक के लड़के चार छः वर्ष की उम्र वाली की लड़कियों के साथ व्यभिचार करते हैं। एक बार दिल्ली में सीताराम के बाज़ार में एक १६ वर्षीय सुनार के लड़के ने ऐसा ही अनोखा पाप कर डाला। उसने एक चार साल की लड़की पर बलात्कार किया। लड़की की दशा इससे बहुत बिगड़ गई। मामला पुलीस में पहुँचा और लड़का गिरफ़्तार किया गया। लड़की अस्पताल पहुँचाई गई। क्या ऐसी बातों पर कोई कभी

विश्वास कर सकता है ? पर नहीं, ये बातें तो अब दैनिक व्यापार में सम्मिलित हो गई हैं। अदालतों से प्रतिदिन ऐसे या और ढङ्ग के स्त्री-सम्बन्धी मामलों में लोगों को सज़ाएँ मिलती रहती हैं। आज तो हमारे छोटे-छोटे बच्चे इसी बात की शिक्षा ग्रहण करते हैं और अवसर पाकर वे खुले अथवा छिपे इन कुकर्मों का अभ्यास किया करते हैं। फिर आजकल के हमारे नवयुवकों के चरित्र की पवित्रता का पूछना ही क्या ? जो निर्धन हैं वे अपने दुष्ट शरीर-बल का दुरुपयोग कर स्त्रियों पर बलात्कार द्वारा अनाचार करते हैं। जो धनी हैं वे खुल्लम-खुल्ला वेश्याओं के यहाँ विहार करते हैं। बड़े शर्मदार कपट के भरे धनी, लड़कियों को मोल लेकर अपनी व्यभिचार-लिप्सा पूर्ण करते हैं। आज भी हम बड़े-बड़े रईसों के यहाँ ख़ासकर रजवाड़ों में सरदारों के यहाँ सैकड़ों बाँदियाँ ऐसी पाएँगे जो ख़रीद ली गई हैं और दुराचार ही जिनका जीवन-कार्य रह गया है। ये ही कुटनियों का रूप धारण कर पुरुषों का सहवास करती हैं और भले घरों में हाथ साफ़ करती हैं। हमारी तो धारणा है कि सम्प्रति किसी समाज के अधिकांश नवयुवकों में चरित्र की पवित्रता नहीं रही है तथापि मारवाड़ी समाज तो इसके लिए बुरी तरह बदनाम हो चुका है। बात यह है कि जहाँ धन का बाहुल्य है वहीं आजकल अत्याचार का भी आधिक्य है। एक बार एक मारवाड़ी नवयुवक ने लिखा था कि आजकल जिस शीघ्रता से मारवाड़ी-जाति में चरित्र हीनता बढ़ रही है, उसे देखकर समाज के हितैषियों को चिन्तित होना चाहिए।

माज में जिस प्रकार वेश्या-प्रेम की बाढ़ आई है, उसे रोकने
ा यदि उपाय न किया गया तो अवश्य ही समाज के पतन में
ोई सन्देह नहीं है। जिधर देखिए उधर ही मारवाड़ी शौक़ीन बाबू
दिखाई देंगे। यदि आप ज़रा कष्ट कर सन्ध्या को सात बजने के
ाद, चितपुर रोड की चौमुहानी पर खड़े होकर उस समय का
दृश्य देखेंगे तो आपको निश्चय हो जायगा कि लेखक की बातें
कहाँ तक सत्य हैं। वेश्याओं को बग़ल में बैठाकर सारे बाज़ार में
निर्लज्जों की तरह घूमना तो आजकल हमारे शौक़ीन मारवाड़ी
भाइयों का सब तरह का बड़प्पन का काम हो गया है। महीने में
यदि हमारे एक शौक़ीन मारवाड़ी नवयुवक ५०) रु० कमाते हैं तो
कम से कम ३५) रु० तो मोटरवाज़ी और रण्डीबाजी में अवश्य ही
ख़र्च करते हैं। हाँ, देश में चाहे उनके कुटुम्बी टुकड़ों-टुकड़ों के
लिए मोहताज ही क्यों न हों? धनवान नवयुवकों का तो कहना
ही क्या है! रात हुई कि आप घर से चट बाहर हो वेश्याओं का
द्वार खटखटाने लग जाते हैं। घर में बेचारी स्त्री रात के १२ बजे
तक आसरा ताके बैठी रहती है; परन्तु, हमारे शौक़ीन बाबुओं
को इसकी क्या परवाह! पाठकों को यह सुनकर आश्चर्य होगा कि
इस सत्यानाशी आदत ने यहाँ तक पैर फैलाए हैं कि बालक और
वृद्ध भी इससे बचने नहीं पाए हैं। यदि किसी को सन्देह हो तो
वह मारवाड़ी रिलीफ़ सोसायटी और विशुद्धानन्द औषधालय में
जाकर जाँच करे। कहते लज्जा से शिर नीचा हो जाता है कि आज
हमारी जाति के दस-दस बारह-बारह वर्ष के बच्चे और साठ-साठ,

सत्तर-सत्तर वर्ष के बूढ़े भी सूज़ाक और गर्मी से ग्रसित हो अपनी करनी का फल भोग रहे हैं। जहाँ दुराचार का ऐसा हाल हो वहाँ स्त्रियों पर होने वाले अत्याचारों की सहज ही कल्पना की जा सकती है। क्या घर, क्या बाहर स्त्रियाँ सुरक्षित नहीं है। सन्यासी वेशधारी धूर्त गुण्डे, उचक्के और व्यभिचारी रात दिन गलियों में घूमा करते हैं और मौक़ा पाते हैं, तो स्त्रियों पर हाथ साफ़ कर देते हैं। जिन्हें हम तीर्थ-स्थान कहते हैं वे आज पापों के भयङ्कर अड्डे बन रहे हैं। समाचार-पत्रों में ये बातें तो निकल चुकी हैं, पर जिन लोगों पर बीती हैं उन्होंने सुनाया है कि तीर्थ-स्थानों के मुसण्डे पण्डे और धूर्त महन्त कैसे अव्वल नम्बर के मक्कार पाखण्डी और दुराचारी होते हैं। वे भोली-भाली अजान स्त्रियों को कैसे चंगुल में फाँस लेते हैं। हम अन्यत्र इन महन्तों के विषय में कुछ लिखेंगे। फिर, रेलों में जहाँ दिन रात सफ़र करने का काम पड़ता है कुछ कम अत्याचार नहीं होता। वहाँ भी पुरुषों का दुराचार अपना भीषण रूप प्रकट करता है। भले घर की बहू-बेटियों को देखकर बदमाश लोग गन्दे गाने गाते हैं, बुरी हरकतें करते हैं और मौक़ा पाकर औरतों पर अत्याचार भी कर डालते हैं। हम कहाँ तक इस पाप-कथा को बढ़ाएँ। जिन्हें ज़रा भी समाचार-पत्रों से शौक़ होगा, उन्होंने सैकड़ों उदाहरण रेलवे में स्त्रियों पर होने वाले अत्याचारों के पढ़े होंगे। यही क्यों, जिन्हें स्त्रियों के साथ रेलों में सफ़र करने का मौक़ा मिलता है, उनके दिलों से पूछिए। उन्हें घर तक अपनी इज़्ज़त बचा कर पहुँच जाना ही

मुहाल हो जाता है। यह क्यों ? यह सब पुरुषों के ही कारण। पुरुषों ही ने यत्र-तत्र अपनी नीचता का जाल फैला रक्खा है। जहाँ स्त्रियों पर नाना प्रकार के अत्याचार हो रहे हैं, वहीं व्यभिचार की दानवी-लीला पाई जाती है। यह हमारे नैतिक अधःपतन का सूचक है। जिस जाति के लोगों का नैतिक अधःपतन हो जाता है उस जाति का सर्वनाश अवश्यम्भावी है।
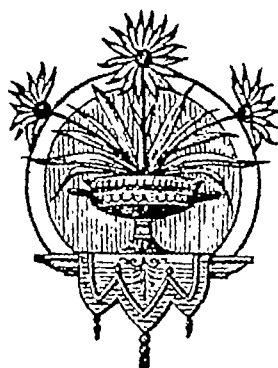
धार्मिक अत्याचार

अवश्य ही इस शीर्षक को पढ़कर आप आश्चर्य करेंगे। आप कदाचित् कहेंगे कि धार्मिक अत्याचार भी कोई चीज़ होती है? धर्म मनुष्य की उन्नति और रक्षा का साधन है। धर्म के द्वारा मनुष्य अपनी जीवन-रक्षा के साथ ही मुक्ति के सुख को भी प्राप्त कर सकता है। किन्तु, इसी धर्म ने हमारे स्त्री-समाज पर अनेकों अत्याचार किए हैं। उन अत्याचारों को धर्म का रूप दे दिया गया है और उसी बन्धन की ओट में स्त्रियाँ कष्ट-जाल में ग्रस्त हो गई हैं। जैसा कि हम कई बार लिख चुके हैं, पुरुषों ने स्त्री और पुरुष, इन दोनों की वास्तविक समस्या का कभी विचार नहीं किया। उन्हें इस बात का ज्ञान न हुआ कि स्त्रियों का जन्म पुरुषों की सहायता के लिए हुआ है, न कि उसके द्वारा स्वत्वापहरण के लिए। इसी से प्राचीन शास्त्रकारों ने जहाँ स्त्री के गुणों का गान किया है, वहीं उसके कार्य-क्षेत्र में सैकड़ों काँटे बो दिए हैं। हम शास्त्रों के उस अनुकूलभाव को भूलकर कृतघ्न नहीं बनना चाहते जो उन्होंने स्त्रियों के सम्मानार्थ प्रकट किया है। फिर भी हम उनकी उस कुप्रवृत्ति की निन्दा किए बिना भी नहीं रहते, जो उस समय के लिए भले ही अनुकूल हो,

किन्तु आज हमारी उन्नति के मार्ग में अत्यन्त बाधक है। यह तो ठीक मॉण्टफ़ोर्ड शासन-सुधारों की तरह हो गया कि एक अधिकार दिया और उसकी रोक के लिए पाँच बन्धन डाल दिए। स्त्रियों को देवियाँ, पूजनीया इत्यादि समस्त विशेषणों से अलङ्कृत तो कर दिया, किन्तु उनके अधिकारों का भी कहीं ध्यान रक्खा? अधिकारों तथा कार्य-क्षेत्रों का निर्माण करते समय तो जान पड़ता है कि स्त्रियों का वह देवीत्व कहीं चला गया था। उस समय तो शायद शास्त्रकारों को यह ध्यान न रहा कि ये देवियाँ कैसे पूजनीयाँ हो सकती हैं, जब हमने इनके प्रति अपने कर्त्तव्यों को ही विस्मरण कर दिया और इनके पवित्र स्वत्वों का ही जब हमने अपहरण कर लिया। स्मृतियों में सर्वप्रचलित, मान्य एवँ श्रेष्ठ मनुस्मृति में भी नारी-धर्म का जहाँ वर्णन किया गया है, वहाँ अधिकारों की छीना-झपटी की अच्छी बहार दीख पड़ती है। एक स्थान पर तो मनु महाराज लिखते हैं कि स्त्रियों का सम्मान करो, उनकी पूजा करो और उन्हें प्रसन्न रक्खो; परन्तु दूसरे ही स्थान पर वे कुछ ऐसी बातें लिख देते हैं, पुरुषों को कुछ ऐसे अधिकार दे देते हैं जिसके कारण स्त्रियों का वह सम्मान शेष ही नहीं रह जाता, उनके प्रति वह पूज्यबुद्धि स्थिर ही नहीं रह सकती। कह नहीं सकते कि इस हिन्दू-लॉ का कभी यथार्थ पालन भी किया गया है या नहीं; अन्यथा नियमों के निर्णय में ऐसी विषमता और ऐसा भौंडापन (Absurdity) तो कभी देखने में नहीं आया। यहाँ दो एक उदाहर द्वारा हम अपने कथन की पुष्टि करना चाहते हैं। एक श्लोक है

सदा प्रहृष्टया भाव्यं गृहकार्येषु दक्षया ।
सुसंस्कृतोपस्करया व्यये चामुक्त हस्तया ॥

—मनु० अ० ५-१५

इसका शब्दार्थ यों है :—"उसे (स्त्री को) सदा सानन्द रह चाहिए। घर के काम दक्षता से करने चाहिएँ। चीज़ वा होशियारी से रखना चाहिए और ख़र्च किफ़ायत से कर चाहिए।" इसका तात्पर्य यही है कि गृह-स्वामिनी के लिए अं बहू-बेटियों के लिए भी प्रसन्नचित्त और हँसमुख रहन घर के प्रबन्ध में प्रवीणता दिखाना, हर चीज़ को नियत स्थान रखना और समझ-बूझ कर ख़र्च करना चाहिए।

यह तो ठीक है। पर इसके पहिले ही वे लिख चुके हैं:—

बालया वा युंवत्यावा वृद्धया वा पियोषिता ।
न स्वातन्त्र्येण कर्त्तव्यं किञ्चित् कार्य गृहेष्वपि ॥

—मनु० अ० ५-१४७

इसका शब्दार्थ यों है :—"किसी बाला से, युवती अथवा वृद्धा से कोई भी कार्य अपने घर में भी स्वतन्त्रता न किया जाना चाहिए। अर्थात्, स्त्री-जाति को राज्य अ समाज-सम्बन्धी कार्यों से तो मतलब ही न रखना चाहि गृहस्थी के कामों में भी पुरुषों की अनुमति से ही सब कुछ कर चाहिए। कहिए, कहाँ रही वह गृहस्थी के कार्य में प्रवीणता

देखा, कैसा पलटा खाया ? यही नहीं, इसके आगे तो मनु महाराज ने ग़ज़ब ढा दिया है। स्त्रियों पर ऐसे-ऐसे नियमों का बोझ लादा है, उन्हें इस पराधीनता और पशुवत् मूकता में ऐसा स्वर्गीय आनन्द का सब्ज़ बाग़ दिखाया है कि मनु महाराज की तारीफ़ ही करनी पड़ती है। फिर वे लिखते हैं :—

बाल्ये पितुर्वशे तिष्ठेत् पाणिग्राहस्य यौवने।
पुत्राणां भर्तरिप्रेते न भजेत्स्त्री स्वतन्त्रताम्॥
यस्मै दद्यात्पितात्वेनां भ्राता चानुमतेः पितुः।
तंशुश्रषेत जीवन्तं संस्थितं च न लङ्घयेत्॥

—मनु० अ० ५-१४८, १५१

ख़ैर, यह तो जो कुछ है सो है ही। पर मनु जी ने एक बात लिखकर तो सब मामला चौपट ही कर दिया है। वे लिखते हैं :—

मङ्गलार्थं स्वस्त्ययनं यज्ञश्चासाम्प्रजापतेः।
प्रयुज्यते विवाहेषु प्रदानं स्वाम्य कारणम्॥

—मनु० अ० ५-१५२

इसका भावार्थ यों है :—विवाहों में मन्त्रों का उच्चारण और प्रजापति के बताए हुए यज्ञ केवल कुशल-मङ्गल के लिए किए जाते हैं। कन्या के स्वामी पर अधिकार का कारण केवल कन्यादान ही है। ब्याह के समय पिता अपनी कन्या का दान वर को कर देता है, इसी से वह दूसरे के घर की वस्तु हो जाती है। स्त्री को यह न

समझना चाहिए कि विवाह के समय अग्नि को साक्षी बनाकर और देवताओं का आवाहन करके सप्तपदी के साथ वाक्यदानपूर्वक पति जो अपने को वचन-बद्ध करता है, उसके कारण ही उसे गृह-स्वामिनी के अधिकार प्राप्त हो जाते हैं। इसे पढ़कर आप क्या समझे? यही न, कि विवाह के समय की गईं प्रतिज्ञाएँ तथा संस्कारादि केवल मङ्गल के लिए अथवा दिखावट या आडम्बर के लिए हैं। उनका वास्तविक मूल्य एवँ महत्व कुछ नहीं है। तब क्यों लोग यह स्मरण दिलाया करते हैं कि अग्नि को साक्षी कर विवाह के समय अमुक प्रतिज्ञा की गई है। हम तो यही कहेंगे कि यह विवाह-संस्कार केवल खेल हुआ—नाटक का तमाशा हुआ। नाटक में भी तो क्षुद्र पात्र राजकीय अधिकारों की घोषणा और उपभोग करता है, किन्तु उनकी मर्यादा नाटक तक ही है। इसी प्रकार वैवाहिक प्रतिज्ञाएँ भी केवल विवाह-काल के लिए हैं। उसके पश्चात् उनका कोई मूल्य नहीं। पहिले तो विवाह-कार्य की सम्पूर्ण प्रणाली ही स्त्रियों के प्रतिकूल रक्खी गई, ख़ैर उनके इस असन्तोष को मिटाने के लिए और दिखावे के लिए पुरुषों की सङ्गिनी, सहयोगिनी एवँ सहचारिणी कह कर कुछ मन्त्र और प्रतिज्ञाओं का पाठ करा देना ही अलम समझा गया। यह था सब स्त्री को सन्तोष दिलाने के लिए, जिससे उसे मालूम हो जाय कि उसे पुरुष के साथ समानता का अधिकार है। देखा, धर्म की ओट में और नीति के नाम पर यह कैसा जघन्य व्यापार है! क्या ऐसी स्मृति के ऐसे किसी भी नियम का कोई महत्व हो सकता है, जहाँ एक बात

रुकर आगे चलकर तुरन्त ही उसका खण्डन कर दिया जाय ? किन्तु, हमारे धर्म-प्राण लोगों ने तो इसका अक्षरशः पालन कर दिखाया है। वे सचमुच वैवाहिक प्रतिज्ञाओं का कोई मूल्य नहीं समझते और विवाह के पश्चात् ही उन्हें भूल जाते हैं या स्मरण रहने पर भी नीति के अनुसार उनका पालन नहीं करना चाहते। ऐसे ही खिलवाड़ और ऐसे ही थोथे धार्मिक नियमों ने समाज की नींव कच्ची कर दी है और उन्नति के वृक्ष को खोखला कर दिया है। आप ही बतलाइए इसमें क्या झूठ है ? क्या स्त्रियों के साथ यह अन्याय नहीं हो रहा है ? क्या मृग-तृष्णा की भाँति उन्हें भी धोखा नहीं दिया जा रहा है ? जहाँ हमारी नीतियाँ, जिन्हें हम पूज्य मानते हैं, ऐसी थोथी, सारहीन और दिखावटी बातों का आदेश करें, वहाँ समाज का नैतिक एवँ धार्मिक बल कैसे बढ़ सकता है ? जहाँ स्त्री-जाति की इस प्रकार प्रवञ्चना एवँ प्रतारणा की जाती है, वहाँ क्या उन्नति हो सकती है ? इसके बाद एक और बड़े धर्म का नम्बर आता है और वह है—पातिव्रत-धर्म। इस सम्बन्ध में हम अपनी ओर से कुछ न लिखकर एक विचारशील लेखक के विचारों का जिनसे हम सहमत हैं, अवतरण देते हैं :—

किसी उदार पुरुष के सम्मुख पातिव्रत का मसला छेड़ दीजिए, वह कहेगा—"चुप रहो, स्त्रियों के धर्म पर कुछ भी बोलना पाप है।" परन्तु, इस प्रकार के उत्तर सन्तोष-प्रद नहीं होते। पातिव्रत धर्म अच्छा है या बुरा, इस पर विवाद नहीं। पर बात तो यह है कि उस धर्म की कट्टरता से जाति में अनेक बुराइयाँ आ गई हैं। हिन्दू-समाज में इस धर्म के

पालनार्थ जितने कड़े आदेश हैं—जैसा दुराग्रह है—उससे समाज उचित सङ्गठन पर न केवल आघात ही पहुँचता है, प्रत्युत दूसरी ओ उसके विवेक हीन पालन से समाज में जड़ता भी आ जाती है। समा का सङ्गठन करने वाले न्याय-विधाताओं ने इसकी आवश्यकता इसीलि समझी कि एक स्त्री एक ही पुरुष के पास रहे और इस तरह एक व बना रहे। जिस प्रकार स्त्री के लिए यह धर्म है, उसी प्रकार पुरुष के लि भी एक पत्नीव्रत-धर्म-पालन कर्त्तव्य हुआ। किन्तु, पुरुष ने तो अपना दर्जा ऊँचा रखकर जिस तरह घुमा-फिराकर चाहा उस धर्म को बखान डाला। पातिव्रत धर्म की महिमा वर्णन करने में उसने अपनी सारी शक्ति लगा दी और स्वर्ग के बाद इस पृथ्वी पर उसी धर्म को स्वर्गीय सुख देने वाला बतलाया। यह सब होने पर भी उसने पत्नी-व्रत-धर्म की आवश्यकता न समझी। बड़े-बड़े प्राचीन धर्मात्मा हिन्दू-नरेश शताधिक—सहस्राधिक—स्त्रियाँ रङ्गमहलों में डाल रखते थे, परन्तु उधर उन रानियों के लिए वही पातिव्रत-धर्म अपने उज्ज्वल आदर्शों के साथ अटल बना रहा।

पुरुष-समाज जैसे-जैसे स्त्रियों को अपने हाथ में लाता गया, वैसे-वैसे उसका विश्वास भी उनमें कम होता गया। यह बिलकुल क़ायदे की बात है कि जिसको हम जितना अधिक क़ानूनों से बाँध कर रक्खेंगे, उतना ही अधिक उसमें विश्वास का अभाव होता जायगा। पातिव्रत की लगाम कड़ी रक्खी गई। यहाँ तक कि पुरुष के मर जाने के बाद स्त्री को अग्नि में भस्म तक कर डालने का 'भयङ्कर' विधान हुआ। क्योंकि सम्भव है, पति की मृत्यु के बाद स्त्री कदाचित् अपने पतिव्रत को न निभावे। इसी से उन्होंने निभाने न निभाने का झगड़ा ही उड़ा दिया और धर्म की रक्षा के निमित्त वे आग में ज़िन्दा जला दी गईं। कहिए, इससे अधिक धार्मिक

याचार और क्या हो सकता है? पुरुष स्त्रियोंसे जिस नियम का पालन कराना हता है, उसकी रक्षा के लिए स्वयँ कुछ नहीं करता। जिस प्रकार पुरुष, को धर्मानुकूल सदाचार से चलाना चाहता है, उसी प्रकार स्त्री भी तो ष को उसी सदाचार के अनुकूल चलाना चाहती है। इसलिए पुरुष ने उस र्म को अपने लिए रक्खा ही नहीं। बहुपत्नी करने के अपराध में समाज का र्म उसे दण्डित नहीं कर सकता। संसार में स्त्रियों के द्वारा यदि पाप ौर अधर्म की मात्रा बढ़ी तो उसके ज़िम्मेदार पुरुष हैं। जिन्होंने स्वयँ तो याय और धर्म की तिलाञ्जलि दे दी, परन्तु स्त्रियों को वे नित्य-प्रति र्म के गहरे बन्धन में डालते गए।

पातिव्रत-धर्म अच्छा है, इस बात को कुछ समय के लिए भूल जाइए। इसकी कट्टरता से हानि क्या हुई? इस धर्म के भङ्ग होने पर समाज स्त्री को बहुत कड़ा दण्ड देता है; उतने ही दोष के लिए कोई भी अन्य समाज वैसा असहनीय दण्ड नहीं देता। यह कोई नहीं कह सकता कि संसार में किसी से भूल-चूक नहीं होती। मान लीजिए, एक स्त्री बड़ी नेक और चरित्रवान है, परन्तु संयोगवश वह किसी धूर्त के चक्कर में पड़कर नष्ट हो जाती है। अब यदि समाज को पता लगे तो क्या करे? निश्चय ही समाज का सबसे कठोर दण्ड उसके लिए रक्खा है। वह सर्वत्र निन्दित होगी, जाति-भ्रष्ट हो जायगी।

इस प्रकार पुरुष ही स्त्री का नाश करें, वे ही नियम बनाएँ और वे ही उनका कठोरतापूर्वक दुरुपयोग करें, यह ज़रा विचारणीय विषय है। धर्म को तो लोगों ने न जाने क्या समझ रखा है। उसे जञ्जाल की तरह सबके पीछे लगा दिया है। यदि धर्म, धर्म है तो वह सर्वमान्य है और सभी को उसका पालन करना

चाहिए। यह तो सरासर अन्याय है कि हम स्त्रियों से जिस धर्म का पालन कराना चाहते हैं, उन्हीं के द्वारा अपनी कुटिलनीति से उस धर्म का खण्डन करवाकर तब फिर अपने रचे नियमों का कठोर व्यवहार करते हैं। यह अन्धेर नहीं है तो क्या है?

इसके पश्चात् विधवा-धर्म का नम्बर आता है, किन्तु यहाँ हम इस सम्बन्ध में विचार न करेंगे। विधवाओं के सम्बन्ध में हम अलग प्रकरण में कुछ विशेष लिखेंगे। तथापि यहाँ सार-रूप में इतना तो हम निःसङ्कोच होकर लिख सकते हैं कि विधवा-धर्म भी सरासर एक धार्मिक अत्याचार है। वह अत्यन्त कठोर है और यह कठोरता अन्याय एवँ अत्याचारों से परिपूर्ण है विधवा-धर्म की जैसी कठोरता हमारे समाज में पाई जाती है, वैसी शायद अन्यत्र न होगी। यहाँ एक बात का उल्लेख किए बिना तो हम नहीं रह सकते। अनेक समाजों में ऐसी कितनी ही धार्मिक रूढ़ियाँ हैं, जिनका प्रयोग बड़ा ही कठोर और हृदय-भेदी है। उदाहरण के लिए दाक्षिणात्य ब्राह्मणों को लीजिए। स्त्री के विधवा होते ही उसका क्षौर करा दिया जाता है। यद्यपि हम सशास्त्र इस बात को सिद्ध कर सकते हैं कि यह क्षौर-कर्म इस प्रकार स्त्रियों के लिए अधार्मिक है। तथापि साधारण दृष्टि से देखने पर भी इस व्यवहार में कठोरता प्रतीत होती है। अभी कल तक जो सुकुमार तन यौवन-भार से फूल रहा था, जिसकी एड़ी-चुम्बित केश-राशि लहराती हुई अपूर्व शोभा पा रही थी, आज वही क्षौर द्वारा विकृत एवँ कुरूपा बना दी जाती है—इसका प्रभाव कोमल

हृदयों पर कैसा होता होगा—यह अनुभव से समझने का विषय है। आप कहेंगे, जब स्त्री विधवा हो गई तो फिर उसे केश-कलाप आदि बातों से क्या प्रयोजन ? हम पूछते हैं जिन समाजों में विधवाओं का मुण्डन नहीं होता है, उस समाज की विधवाएँ क्या कम पवित्र हैं। कुरूप बनाने से आपका यह भाव होगा कि विधवा लोगों की कुदृष्टि से वे बची रहें और शोभा की कोई वस्तु पास में न रहने के कारण उनकी चञ्चलता और विकार भावना दबी रहे। अवश्य ही बाहरी दृष्टि से देखने में इसमें कुछ तथ्य जान पड़ता है, किन्तु है यह महा जघन्य कर्म, इसमें सन्देह नहीं। अभी उस दिन तक जिस स्त्री के शरीर को कोई छू तक न सकता था, आज नाई द्वारा उसी का मुण्डन कराया जाता है और वह उसके तमाम मस्तक, मुख आदि का स्पर्श करता है। यह कहाँ का धर्म है ? प्रथम तो यह प्रत्यक्ष ही कठोर व्यवहार है, दूसरे जिस भाव से ऐसा किया जाता है उसमें भी अधिक सार नहीं। कुरूपा से कुरूपा स्त्रियाँ विकाराधीन होकर दुष्कर्म करा बैठती हैं, तब यदि रूपवती स्त्री को एक बार क्षौर द्वारा कुरूपा बना भी दें तो क्या हम उसके मानसिक विकारों को रोक सकते हैं ? हर्गिज़ नहीं। ये सब बातें तो व्यर्थ हैं। स्त्री का एक बार यह समझ लेना ही कि वह विधवा है—यथेष्ट है। यही भाव उसे जीवन के सच्चे मार्ग पर ले जा सकता है। विधवाओं के कष्टमय धार्मिक जीवन का यह तो एक नमूना है। जिसे हम धार्मिक जीवन कहते हैं वह तो उनके लिए नरक से अधिक दुःखदायक है। ईश्वर रक्षा करे ऐसे धर्म से, जिसकी कठोरता सहज एवँ सरल भावों को दमन कर सकती है।

यहाँ हम एक समाज की एक रूढ़ि या प्रचलित पद्धति का उल्लेख करते हैं। यद्यपि यह बात अनिवार्य नहीं है और न इसका व्यवहार ही सदैव एवँ सर्वत्र किया जाता है तथापि जहाँ तक हमने देखा और सुना है उसमें कठोरता अवश्य की जाती है। जैन समाज में श्रावक-श्राविकाओं का सम्प्रति जितना ज़ोर है उतना कदाचित् ही किसी समाज में हो। श्राविकाएँ दोनों ही हो सकती हैं, सधवा और विधवा। हम जिस समय उज्जैन में रहते थे, वहाँ हमारे पड़ोस में एक जैनी का घर था। सहसा एक दिन उस जैनयुवक की मृत्यु होगई। अब रह गई नवयुवती विधवा। घर सम्पन्न था—खूब माल था। उसके विधवा होते ही कुछ दिन बाद जैन-साधु और श्राविकाओं का दौर-दौरा हुआ। हम सच कहते हैं, बालिका की अनिच्छा होते हुए भी कुछ तो धन हड़प जाने के लिए लोगों ने भड़काया और कुछ अपनी संख्या बढ़ाने के लिए श्रावकों ने फुसलाया। फल यह हुआ कि सब कुछ त्याग कर वह भी उनमें सम्मिलित हो गई। माल-मत्ता कुछ तो साधुओं के हाथ लग गया, (हालाँकि दिखावे के लिए उन्होंने कुछ न लिया) और शेष सब इधर-उधर के नातेदारों ने समेट लिया। कुछ दिन पहिले जो गृह सुख एवँ गृह-धर्म का पालन कर रही थी, अब उसी को कठोर जीवन में प्रवेश करना पड़ा। वहाँ इन श्रावकों के जीवन-चर्या एवँ व्यवहार नियम को देख कर वह बालिका घबड़ाई। दुख से लिखना पड़ता है कि, उस समय उन श्राविकाओं में से उस बालिका के साथ ही अनेक चरित्र-भ्रष्टा होगईं और अपनी जवानी की

उमङ्ग में उस कठोर धर्म का पालन न कर सकीं। श्राविका होना बुरा नहीं और न हमें उनके चरित्र पर कोई आक्षेप हो सकता है। दुख की बात इतनी ही है कि चाहे जैसे हो यह पद्धति सी पड़ गई है कि जैनों में श्राविका होना अनिवार्य नहीं तो वाञ्छनीय अवश्य है। फिर यदि वृद्ध स्त्रियों के लिए अथवा उनके लिए जिन्हें सचमुच वैराग्य-भाव आ गया है, यह कार्य किया जाता तो भी ठीक था। हमने अनेक जैन-मित्रों के मुख से यह बात दबी-ज़बान सुनी है (क्योंकि वे स्पष्ट कह कर समाज के एवँ साधुओं के प्रति अश्रद्धा नहीं दिखलाना चाहते) कि इस प्रकार स्त्रियों को साधु-जीवन में लाने के लिए अनेक लोभ-प्रलोभनों से काम लिया जाता है। एक बार तो हमारे एक जैन-मित्र की स्त्री को एक श्राविका ने ऐसी पट्टी पढ़ाई कि वह मेरे मित्र की अर्थात् अपने पति की जीवितावस्था में ही वैराग्य धारण करना चाहती थी। उस मित्र ने मुझसे कहा कि साधु बनाने और अनन्तर उस जीवन को व्यतीत करने में जिस कठोरता से काम लिया जाता है, उसे देखकर जी घबड़ा उठता है। किन्तु, ये सब बातें उन्होंने बड़ी दबी ज़बान से कहीं। कारण, वही समाज का भय था। ग्वालियर में एक बार एक जैन-साधु से मिलने का हमें सौभाग्य प्राप्त हुआ था। वे बड़े निर्भीक थे! उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि जिस प्रबलता से जैनों की स्त्रियाँ साधु बन रही हैं या ज़बर्दस्ती बनाई जा रही हैं, उसी प्रबलता से यदि उनके चरित्र में दृढ़ता होती और उसी प्रबलता से यदि वे अपने धर्म का पालन करतीं तो आज जैन-समाज का उद्धार हो जाता। हमें उनका कथन बहुत कुछ

सत्य प्रतीत हुआ। हम किसी के विरोधी नहीं हैं। हम विरोधी हैं उन बातों के जो स्त्रियों पर अत्याचारों के रूप में प्रगट होती हैं।

फिर अनेक धार्मिक कृत्यों के करने में भी स्त्रियों को बड़ा कष्ट सहना पड़ता है। उदाहरण के लिए तीर्थ-यात्रा को ही ले लीजिए। यदि हम वर्तमान तीर्थ-स्थानों को नरक-कुण्ड या भ्रष्ट स्थानों से उपमा दें तो कुछ अनुचित न होगा। तीर्थों में पण्डों और महन्तों के भयङ्कर अत्याचारों को पढ़ कर रोमाञ्च हो आता है। पञ्जाब की ओर एक गुरुद्वारे में एक स्त्री अपने पति के साथ दर्शन करते-करते ग़ायब हो गई। जब जाँच करते-करते मन्दिर के बीच की पटिया उखाड़ी गई तो बीसों स्त्रियों की लाशें पाई गईं। अधिकांश पण्डे और महन्त सदा स्त्रियों की ताक में रहते हैं और मौक़ा पाते ही उन्हें उड़ा देते हैं। उनका गहना लूट लेते हैं और उनका धर्म नष्ट कर देते हैं। अनेक मन्दिर तो वेश्याओं के अड्डों से भी बढ़ गए हैं। मद्रास में मन्दिरों में देवदासियाँ रक्खी जाती हैं। माता-पिता इन्हें जन्मते ही देवताओं की भेंट कर देते हैं। वे वहीं पलती हैं और बढ़ती हैं। बड़ी होने पर पुरुष रूपी देवताओं को अर्पण कर दी जाती हैं। दर्शकों को सचमुच प्रेमालिङ्गन द्वारा तृप्त कर दिया जाता है। इस प्रकार धर्म के नाम पर, स्त्रियों पर कैसा अत्याचार किया जा रहा है। हमारे पास इतना स्थान नहीं है अन्यथा हम दो चार उदाहरणों द्वारा तीर्थ-स्थानों में होने वाले अत्याचारों का विस्तारपूर्वक वर्णन करते। ईश्वर जाने, कब लोगों में बुद्धि आएगी और वे इस अन्याय का प्रतिकार करेंगे।
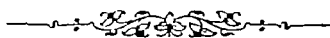
अन्य अत्याचार
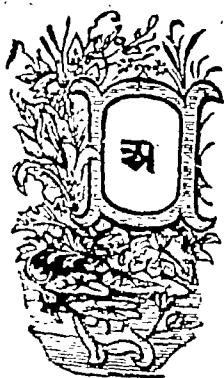
त्याचारों का वर्णन कहाँ तक किया जाय, इनका अन्त नहीं है। विविध रूप में ये नित्य ही प्रकट होते रहते हैं और नाना प्रकार से स्त्री-जाति पर अपनी कठोरता दिखाते रहते हैं। हमारी लेखनी में इतनी शक्ति नहीं है कि सभी प्रकार के होने वाले अत्याचारों का वर्णन कर सके; और न हमारा ज्ञान तथा अनुभव ही इतना विस्तृत है कि हम अत्याचारों के सभी स्वरूपों का परिचय दे सकें। हाँ, स्थूल दृष्टि से और जो दो-तीन बातें हमें आवश्यक जान पड़ती हैं उनका उल्लेख करके ही हम इस खण्ड को समाप्त कर देंगे।

संसार में अर्थ ही अनर्थ की जड़ है। इस अर्थ के कारण अनेक अघटित-घटनाएँ घटित होती रहती हैं। अर्थ-लोलुपता तथा अर्थ-वासना संसारी लोगों को निरन्तर ही सताती रहती है। कारण यही है कि अर्थ के बिना हमारा सांसारिक व्यवहार क्षण भर भी नहीं चल सकता। ज्यों-ज्यों भौतिक-वाद का विकास और प्रचार हुआ है, त्यों-त्यों अर्थ-सङ्कट भी बढ़ता गया है। यह आर्थिक प्रपञ्च अपनी बहुत ही उन्नत अवस्था को पहुँच गया है, जिसके कारण

हमारे प्राकृतिक सद्गुण तो नष्ट हो गए हैं और कृत्रिम सभ्यता का व्यवहार हमें श्रेयस्कर हो गया है। अन्यत्र हम लिख चुके हैं कि अर्थ-लोलुपता के कारण पुरुष स्त्रियों पर कैसा अन्याय करते हैं। कहीं तो धन के लिए लड़की का विवाह ही नहीं होता। पिता के दरिद्र होने के कारण कन्या को या तो अविवाहित ही रह जाना पड़ता है और या फिर विवाहित हो जाने पर, दरिद्र की कन्या होने के कारण, ससुराल वालों की मार सहनी पड़ती है। इसी अर्थ-सङ्कट में पड़कर कहीं तो माताओं ने प्राण दे दिए और कहीं लड़कियाँ ही आत्म-हत्या कर बैठीं। अविवाहित अवस्था में पवित्र चरित्र होने पर भी कलङ्कित होना पड़ा और चरित्र-भ्रष्ट होने पर तो जीवन से ही हाथ धोना पड़ा।

फिर कहीं-कहीं बाल और वृद्ध-विवाह के हितैषी, समर्थक और इच्छुक अर्थ के लिए कन्याओं को वेंच देते हैं। थैली बाँधने के लिए बुड्ढे-खूसट को, जो विवाह के दूसरे ही दिन मर जाता है, अपनी नन्हीं, सुकुमार अथवा नवयौवना कन्या देते तनिक सङ्कोच नहीं खाते और अपने नीचस्वार्थ के लिए, केवल द्रव्य प्राप्ति के लिए ही, बालिका का जीवन नष्ट कर देते हैं। इस अत्याचार से भी लाखों कन्याएँ पीड़ित हैं। पिता-माता तो वेंचकर ही अलग हो जाते हैं, पर लड़की का जीवन जिस सङ्कट से व्यतीत होता है, वह ज़रा अनुभव करने की बात है। कहीं तो अधिकांश उन्हें आजन्म वैधव्य भोगना पड़ता है, कहीं यौवन के विकास-काल में ही उन्हें सुख-सौभाग्य-विहीन होना पड़ता है, और कहीं

कुल और कीर्त्ति के नाम पर कालिमा पोतकर अपना जीवन कलङ्कित करना पड़ता है। ऐसे ही घरों में छिपे-छिपे व्यभिचार होता है। गुप्त रूप से सैकड़ों नवजात शिशुओं का गला घोंट दिया जाता है और भी न जाने क्या-क्या होता है। यह सब क्यों होता है? केवल अर्थ के कारण। न यह आर्थिक अभिलाषा होती, न यह धन की अनुचित चाह होती और न स्त्रियों को इसके लिए नरकवास करना पड़ता।

ऐसे ही अर्थ-सङ्कटों में स्त्रियाँ बार-बार पड़ा करती हैं। जो स्त्रियाँ अनाथ हैं (किन्तु सम्पन्न हैं) उनके चाहने वाले बहुत खड़े हो जाते हैं। कभी-कभी तो वे स्त्रियाँ व्यभिचार के लिए परपुरुषों के जाल में फँस जाती हैं। वे पुरुष भी, यद्यपि उन्हें स्त्री से उतना प्रेम नहीं है जितना द्रव्य से, उन स्त्रियों से बड़ा प्रेम करने लगते हैं। क्रमशः यह मैत्री बढ़ती है। पुरुष स्त्री को घर से भाग चलने का उपदेश देता है। मुग्धहृदया स्त्री उसकी दम-पट्टियों में आ जाती है और घर से सब माल-मता लेकर निकल भागती है। दो-चार छः महीने तो पुरुष कुछ नहीं बोलता, खूब प्रेम करता है और धन की ओर दृष्टि तक नहीं डालता। वह कहता है कि मैं तो केवल प्रेम का प्यासा हूँ, मुझे द्रव्य की परवाह नहीं। बस, स्त्री तुरन्त ही उसका विश्वास कर सब धन उसे सौंप देती है। अब पुरुष की दृष्टि बदलती है। धन पाकर वह ऐंठ जाता है और बात-बात में स्त्री का तिरस्कार करता है। इस व्यवहार को देखकर स्त्री अपना धन माँगती है और पुरुष का साथ छोड़ना चाहती है। फल यह होता है कि कहीं तो

पुरुष धमका कर उसे घर से निकाल देता है और कहीं वह सब माल-मता समेट कर एक रात को चम्पत हो जाता है। फिर रह जाती है स्त्री हाथ मलती और पश्चाताप करती। तब उसको कोई बात भी नहीं पूछता। कुल में दाग़ लगाने के कारण वह जाति में तो कलङ्कित हो ही चुकी—उधर से तो उसे कुछ सहारा ही न रहा, जो कुछ आश्रय था वह था, धन का; सो भी न रहा। अब निराधार अवस्था में वह इधर-उधर ठोकरें खाती फिरती है और तब या तो प्राण दे बैठती है या जीवन भर अपवित्र कर्म से अपना पेट भरती है। यह बात नहीं कि अनाथ तथा विधवाओं में ही यह बात हो। यह बात प्रायः उन घरों में भी पाई जाती है जहाँ अयोग्य दम्पति होते हैं, जहाँ स्त्री के प्रति कठोर व्यवहार किया जाता है, जहाँ धन अपार होता है और पति व्यभिचारी या निकम्मा होता है। इनमें से प्रत्येक के सम्बन्ध में आप सच्ची घटनाएँ जान सकेंगे, यदि थोड़े ध्यान से आप समाज की अवस्था का निरीक्षण करें। प्रथम तो स्त्रियों की आत्म-रक्षा का कोई सच्चा उपाय शेष नहीं रह गया। तिस पर भी जब उनके पास अर्थ-सञ्चय होता है तो भय सदा उनके पास रहता है। वे आत्म-रक्षा की निस्सहाय अवस्था में किसी प्रकार बच नहीं सकतीं। पुरुष उन्हें अपना निशाना बना ही लेते हैं। परिणाम स्वरूप कामी पुरुष की तो इच्छा पूर्ति होती है और उसके दूतों तथा सहायकों को धन मिलता है। एक बड़े देशी राज्य के नरेश के सम्बन्ध में हमें कुछ सच्ची बातें मालूम ई हैं। वे अपने नौकरों की स्त्रियों को अपने पास बुलाकर नौकरों

का पद बढ़ा दिया करते थे। कुछ निर्लज्ज आत्म-सम्मानहीन पुरुष भी ऐसे थे जो धन-प्राप्ति अथवा पद-प्राप्ति की लालसा से अपनी स्त्रियों को जबरन उनके पास भेज देते थे। यह कैसा जघन्य व्यापार है। फिर राज्य से बड़े-बड़े रईसों की ओर से ऐसे गुण्डे फिरा करते हैं जो रुपया ले-लेकर भले घर की बहू-बेटियों को उड़ा लाते हैं। यह सब अर्थ की महिमा है। अर्थ ही विलासिता का कारण है और इसी से दुराचार की उत्पत्ति होती है। यह भी हम लिख चुके हैं कि सुकुमार बालिकाएँ किस प्रकार कुटिल लोगों के फन्दे में फँस जाती हैं। वे लोग धन कमाने के लिए ही उनसे वेश्या-वृत्ति कराते हैं। यदि देखा जाय तो कम से कम ८० फ़ी सैकड़ा वेश्याएँ ऐसी निकलेंगी जो केवल अर्थ का साधन होकर ही पुरुषों के चक्र में फँसी हैं। उन्हें उस कर्म से प्रेम नहीं, घृणा है; किन्तु वे बच नहीं सकतीं। वे जो कुछ करती हैं, अपने उन संरक्षकों के लिए जो लोगों से खूब रुपया ऐंठ कर यह पाप-कर्म उनसे कराते हैं! इससे क्या यह स्पष्ट नहीं है कि इस अर्थ-चिन्ता ने ही पाप का बाज़ार गर्म किया है? क्या यह सत्य नहीं है कि अर्थ-सञ्चय के लिए ही स्त्रियों द्वारा ऐसा नीच व्यापार कराया जाता है? यदि ऐसा न होता तो आज कलकत्ता, बम्बई जैसे नगरों में वेश्याओं एवं कुलटाओं का इतना बाहुल्य न होता। क्या आपको नहीं मालूम कि वहाँ रास्ता चलते आपकी पगड़ी-दुपट्टा छीन लेती हैं, आपकी अण्टी में जो कुछ होता है, सब छीन लिया जाता है। आपकी तो कामेन्द्रियाँ उत्सुक हो रही हैं, किन्तु उधर तो अर्थ की चिन्ता है!

वहाँ तो जो कुछ मिले और जैसे मिले झपट लेना ही इष्ट है। हाय ! इस अर्थ ने कैसा सत्यानाश कर रखा है !

तीर्थ-यात्रा तथा नदियों में स्नान करते समय स्त्रियों पर दुष्ट पुरुषों की सदा ही वक्रदृष्टि रहती है। आपने ऐसे कितने ही उदाहरण देखे-सुने और पढ़े होंगे, जिनमें स्त्रियाँ अपने आभूषणों के कारण अपनी जान तक से हाथ धो बैठीं। हम यह नहीं कहते कि आभूषण पहनना ठीक नहीं और न हम यह मानते हैं कि ऐसे अवसरों पर गहने लादना अच्छा ही है। हमारा तो कहना यही है कि दुनियाँ अर्थ की कहाँ तक दासी हो रही है और स्त्रियाँ इस अनर्थ का किस प्रकार लक्ष बन रही हैं। पुरुष जैसे होता है वैसे ही स्त्रियों को लूटना चाहते हैं। कामी और जुआरी पुरुष वैसे ही सदा भूखे रहते हैं, तिस पर भी गृहस्थी की हालत में वे स्त्रियों पर बड़ा ज़ुल्म करते हैं। रुपए के लिए स्त्री को मारते-पीटते और कठोर यातनाएँ देते हैं—उनके आभूषण आदि छीन ले जाते हैं। भला यह कहाँ का न्याय है ?

इसके बाद अवशिष्ट शारीरिक अत्याचारों का नम्बर आता है। ये भी कुछ कम नहीं हैं। कौटुम्बिक अत्याचारों का हाल लिखते हुए हमने दुर्व्यवहार के कारण स्त्रियों पर होने वाले शारीरिक सङ्कट का उल्लेख किया है। यहाँ हमने बतलाया है कि कुटुम्बी लोग स्त्रियों के साथ कैसा कठोर वर्ताव करते हैं। पति अपनी स्त्री को जड़ समझता है तभी तो बेंत, कोड़े तथा लोहे की छड़ियों की मार को वह कोई चीज़ ही नहीं समझता !

हमने देखा है कि जितना ध्यान स्त्री को पुरुष के शारीरिक
ास्थ्य का रहता है उतना ध्यान पुरुष को स्त्री के शरीर का नहीं
ता। ऐसे लोग अधिक नहीं हैं जो स्त्रियों की शरीर-पीड़ा का
च्चा अनुभव कर उसके लिए चिन्तित और उद्विग्न रहते हैं। प्रायः
ही देखा जाता है कि दोनों समय भोजन कर लेना ही लोगों का
य है। उन्हें यह ध्यान नहीं रहता कि स्त्री की शरीरिक अवस्था
स समय कैसी है, उसे क्या कष्ट है, और वह अमुक कार्य करने
ाग्य है या नहीं। स्त्रियाँ रात-दिन घर के काम-काज में लगी रहती
। कभी क्षण भर निश्चिन्त होकर वैठने का उन्हें अवसर ही नहीं
मलता। स्वास्थ्य सुधारने तथा कुछ काल तक विद्या-चर्चा में समय
यतीत करने की कभी नौवत नहीं आती। चूल्हा-चक्की से निवटीं
ो वच्चे को सम्भाला; वच्चे को सम्भालते न सम्भालते घर के
ोगों की आज्ञा का पालन करना। फिर पति-सेवा—यदि वह भी
ीक-ठीक हो सकी तो वाह-वाह नहीं तो गालियाँ और मार खानी
ी पड़ती है। रोग से पीड़ित है, बुखार रात-दिन शरीर में रहता
, खाँसी भी चलती रहती है; किन्तु काम तो होना ही चाहिए।
हीं तो सास नाराज़ होगी, कहेगी कि वहू आलसिन, कामचोर
ौर मूर्खा है, पति कहेगा कि मुँहजोर, वेशऊर और फूहड़ है, कहना
ो कहना हो, सो नहीं। उसके लिए तो शारीरिक दण्ड नियत है।
खाने को न मिलेगा, मिला भी तो अन्न नहीं, लात और घूँसे। आराम
हराम हो जाता है। इसे आप अत्युक्ति न समझें।

गृहस्थी के जीवन की अनभिज्ञता व उसकी अनियमितता ही

स्त्रियों पर शारीरिक अत्याचार किए जाने के मौक़े लाती है। बहुधा स्त्रियाँ अपने ही दोप से शारीरिक कष्ट सहन करती हैं। हम यह नहीं कहते कि स्त्रियाँ गृहस्थी का आवश्यक कार्य न करें। हमारा तो यह मत है कि गृहस्थी का समस्त कार्य स्त्रियाँ स्वयँ ही करें। नौकरों के या दूसरों के भरोसे न रहें; शारीरिक परिश्रम करें तो उनका स्वास्थ्य भी ठीक रहे और गृहस्थी भी सुचारु-रूप से चलती रहे। कभी दुलार के वश उनकी शक्ति का ह्रास न किया जाय। स्त्रियों को ज्यादा लाड़-प्यार में रखकर उन्हें दर्शनी हुण्डी बना देना भी हमारे मत से उन पर अत्याचार करना है। अधिक—अत्यधिक कार्य करने से तो स्त्रियों को कष्ट उठाना ही पड़ता है—उन पर प्रत्यक्ष शारीरिक अत्याचार तो होता ही है, किन्तु उन्हें दर्शनीय बना कर रखने से, केवल पुस्तक-प्रिय और वस्त्र या शोभा-प्रिय बना कर रखने से तो उनका शरीर ही नष्ट होजाता है। अधिक परिश्रम करने से शक्तिहीन अवश्य हो जाती हैं तथापि उस अवस्था में वह कठोर से कठोर काम करने में पीछे नहीं हटतीं, किन्तु उन्हें कार्यादि से मुक्त रखकर तो उन पर सचमुच ही शारीरिक अत्याचार किया जाता है; क्योंकि फिर तो वे किसी लायक़ नहीं रहतीं। उनसे कोई शारीरिक परिश्रम नहीं होता। फलतः वे कोई शारीरिक कष्ट सहन नहीं कर सकतीं। शरीर दुर्बल तो नहीं, बल्कि स्थूल हो जाता है; किन्तु आत्मा अवश्य दुर्बल हो जाती है। शक्तिशाली आत्मा के लिए शक्तिशाली शरीरभी चाहिए, यद्यपि यह सर्वथा सत्य नहीं है, तथापि कुछ अंश तक ठीक अवश्य है। अनुद्योग की हालत में तो स्त्रियाँ

परावलम्बिनी हो जाती हैं। इस पराधीन अवस्था में न केवल वे शारीरिक कष्ट भोगती हैं, प्रत्युत शारीरिक कष्ट के साथ ही आर्थिक सङ्कट का भी सामना करती हैं। उस समय तो आत्म-रक्षा का कोई उपाय उनके लिए शेष नहीं रह जाता। आप क्या इसे अत्याचार न कहेंगे? स्त्रियों को सुकुमार बना देना सचमुच उन पर अत्याचार करना है। सम्प्रति इस प्रकार की प्रवृत्ति देश में बढ़ती जा रही है।

यहाँ लोग बहुधा कह बैठते हैं कि परदे की प्रथा के कारण स्त्रियों को अनेक शारीरिक कष्ट सहने पड़ते हैं। हम न तो यह कहेंगे कि परदा ठीक है और न उसे अनुचित ही बता देंगे। तथापि जो बात प्रत्यक्ष है, उसके कहने में कोई दोष नहीं। यह कहना ठीक नहीं कि परदे के कारण स्त्रियों को शारीरिक कष्टों का अधिक अनुभव करना पड़ता है। हमें तो ज्ञात है कि परदे के बाहर भी प्रायः स्त्रियाँ उतना ही कष्ट भोगती हैं जितना परदे के अन्दर।

यदि किसी प्रथा या प्रणाली का दुरुपयोग किया जाय तो उसका दोष वास्तविक प्रणाली पर नहीं लादा जा सकता। परदे की प्रथा चाहे जैसी हो, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि पुरुष परदे के अन्दर स्त्रियों पर अत्याचार करें। क्या प्राचीन काल की राजपूत-महिलाएँ परदे में नहीं रहती थीं? तो क्या उनमें साहस, शक्ति, तेज या दृढ़ता का ह्रास हो गया था? क्या उनमें वीरता शेष नहीं रह गई थी? हम तो कहते हैं कि परदे के अन्दर भी स्वास्थ्य के वे ही उपयुक्त साधन मौजूद हैं, जो परदे के बाहर। फिर हम पूछते हैं कि परदे के बाहर रह कर ही स्त्रियों ने अपना सुधार कहाँ

तक कर लिया। आख़िर यह विषय विवाद का है। इसका निर्णय यों नहीं हो सकता। अपनी-अपनी परिस्थिति, अवस्था और प्रकृति के अनुकूल प्रत्येक कार्य हुआ करता है। हमारा आक्षेप तो इतना ही है कि परदे के अन्दर स्त्रियों पर जो कड़ाई की जाती है, पर के वाहर भी स्त्रियाँ उसी कष्ट को भोगती हैं। पुरुष-जाति तो वै ही है। उसे तो परदे की वाधा नहीं है। अस्तु।

सम्भोग अधिक्य तथा अतिविषय के कारण भी स्त्रियों व शारीरिक कष्ट सहना पड़ता है। यदि प्रत्येक कार्य उचित परिमा में और नियमपूर्वक किया जाय तो परिमित कष्ट किसी को न अखरता। पर ऐसा तो होता नहीं। पुरुष तो अपने आवेश में कु नहीं सुनते-समझते, वे प्राकृतिक नियमों को भङ्ग कर सम्भोग व्यवहार करते हैं। उनका यह व्यवहार पशु-कोटि तक पहुँच गय है। कहीं-कहीं तो वह उसे भी मात कर गया है। फल यह होता है कि बहुधा स्त्रियाँ मर जाती हैं, अधिक सन्तान के कारण कष्ट से व्याकुल हो जाती हैं और अनेक असाध्य एवँ दुर्दमनीय रोगों में फँसकर अपना सुख और स्वास्थ्य नष्ट कर बैठती हैं। अनियमित सम्भोग एवँ अविहित तथा प्रकृति-विरुद्ध विषयाचरण से स्त्रियों को घोर शारीरिक कष्ट सहना पड़ता है। सन्तान-शास्त्र के मर्मज्ञ हमारे कथन की सत्यता को भली-भाँति समझ सकेंगे। स्त्रियों की मृत्यु-संख्या क्यों वढ़ती जा रही है, उनका ह्रास क्यों होता जा रहा है? स्त्रियों का शरीर अव इस योग्य नहीं रह गया है कि वह स्वस्थकर कार्यों को कर सकें, स्वास्थ्य प्राप्त कर

सकें और तदनुसार कष्ट सहन करते हुए भी जीवन वहन कर सकें। अन्यत्र स्त्रियों के ह्रास का विशेष विवेचन कर हम इस विषय को विस्तार से समझाने का प्रयत्न करेंगे।

जो स्त्रियाँ वाहर चलती-फिरतीं और कारख़ानों में काम करती हैं उन पर भी अशेष शारीरिक अत्याचार किए जाते हैं। यद्यपि फ़ैक्टरी ऐक्ट्स में अव सुधार हो गया है और आगे भी किया जा रहा है तथापि भारत के मज़दूरों की अवस्था अभी सुधरी नहीं है। स्त्रियों से अधिक कार्य लेना, रात्रि में भी उनसे परिश्रम कराना, गर्भावस्था में भी उनसे मेहनत लेना आदि ऐसी वातें हैं, जिनके कारण साधारण मज़दूरनियों की भी शारीरिक अवस्था ठीक नहीं रहती। आसाम आदि स्थानों के चाय-वाग़ानों में स्त्रियों पर जो पाशविक अत्याचार किए जाते हैं, उनका वर्णन तो वड़ा ही हृदय-द्रावक है। स्त्रियों पर वल-प्रयोग करना, उनके साथ व्यभिचार करना और एक-एक स्त्री के पीछे अनेक पुरुषों का सङ्गम रहना आदि ऐसी वातें हैं, जिनका वर्णन करते लेखनी काँप उठती है और जी चाहता है कि यह पाप-कथा न लिखी जाय। किन्तु, विना लिखे ज्ञात कैसे होगा और तव उसका अन्त कैसे होगा? अस्तु।

यह वात नहीं कि समाज में ही स्त्रियों पर अत्याचार किया जाता है। इन अत्याचारों का सम्वन्ध तो राजनीति एवँ शासकवर्ग से भी है। हमें यहाँ एक कथा का स्मरण हो आता है। एक वार महाराज होल्कर किसी आक्रमण से लौट रहे थे। उस समय

उनकी थोड़ी सी सेना एक दूसरे आक्रमण के लिए गई थी। जब वे डेरे पर पहुँचे तो देखा कि बड़ा शोर-गुल मचा है। ज्ञात हुआ कि आक्रमणकारी एक अङ्गरेज़-महिला को पकड़ लाए हैं। उस समय होल्कर जी ने अपने सिपाहियों को डाँटकर कहा कि हम लोग वीर हैं और वीर पुरुषों का ही सामना करते हैं। हम इतने अधम नहीं हैं कि स्त्री-जाति पर हाथ उठाएँ या उसे कष्ट पहुँचाएँ। इसे सम्मानपूर्वक उसके स्थान पर पहुँचा दो। अङ्गरेज़ लोग भी प्रायः यही कहा करते हैं। उनकी तो सभ्यता में ही स्त्री का पद सम्माननीय है। वे स्त्री के लिए सब कुछ कर सकते हैं। उसके कपड़े उठा सकते हैं, उसके लिए जगह छोड़ कर खड़े हो सकते हैं और सभी क्षुद्र से क्षुद्र कर्त्तव्य का पालन कर सकते हैं। पर न मालूम उनकी सभ्यता का वह रङ्ग जाने कहाँ चला जाता है, जब भारतीय स्त्रियों के प्रति असम्मान दिखलाने और उन पर नाना प्रकार के अन्याय करने में वे तनिक नहीं सकुचाते। उदाहरण के लिए हम पञ्जाब के हत्या-काण्ड को ही लेते हैं। क्या आप नहीं जानते उस समय मार्शल लॉ के जमाने में पञ्जाब में स्त्रियों पर कैसे-कैसे अत्याचार किए गए। पुलीस सैनिक और उनके साथी घरों में घुस गए, स्त्रियों का माल-मता लूटा, उनका सतीत्व भङ्ग किया, उनके अङ्ग भङ्ग किए, उनके गुप्त स्थानों में लकड़ी बाँस आदि किए, धूल झोंकी इत्यादि क्या कोई भी सभ्य सरकार विशेषकर सभ्य कहलाने वाली जाति स्त्रियों पर ऐसे अत्याचार कर सकती है? कौन ऐसा है जो अपनी बहू-बेटियों को इस तरह कोड़े खाते देख सकता है। फिर ये

अत्याचारी कौन थे ? ये तो सरकार के गुलाम हमारे ही देश-बन्धु थे। उन्हें अपनी माताओं, बहिनों और बहू-बेटियों पर अत्याचार करते शर्म न आई। यहाँ हम कॉङ्ग्रेस की जाँच कमेटी की रिपोर्ट से कुछ स्त्रियों के बयानों में से कुछ वाक्य लिखते हैं, उनसे हमारे मत का समर्थन हो जायगा।

श्रीमती देवकी का बयान था :—

"..........For four days, we and our children remained without food and water. After four days we left the house. They used to make water and become naked in our sight. Their conduct was such that I can not describe it."

श्रीमती गङ्गादेवी ने कहा :—

"..........For four days we remained without food and water. My daughter, aged four, died of fright. Her constant cry was "Oh! Mother soldiers have come to kill pigeons, they will kill me."

श्रीमती लक्ष्मण कुँवरि ने कहा :—

"..........I am a purda-nashin. I never appear in public, not even before the servants. I was however called-down from my house. I went with a pardah (veil) I was peremptorily ordered to take off my pardah. I was frightened and removed the pardah."

मुसम्मात मेहरा आदि वेश्याओं ने बयान किया :—

"........We had been ordered by the Captain to appear.

As we could not bear to watch the flogging, we tried to hide our faces, but Captain Doventon made us all look at that horrible sight and threatened us with the remark, "observe carefully the result of lovemaking............We could no longer bear the sight and turned our eyes away but Captain came amongst us and after pushing us brutally compelled us to look at the flogging."

श्रीमती मीरा आदि २७ स्त्रियों का सर्वसम्मत यह बयान है:—

" We were called from our houses or where ever we were and collected near the school. We were asked to remove our veils. We were abused and harrassed to give out the name of Bahi Mool Sing as having lectured against Government.......
He spat at us and said many bad things. He beat some of us with sticks. We were made to stand in rows and to hold our ears. He absued us also saying:—"Flies, what can you do if I shoot you?"

श्रीमती गुरुदेवी का बयान है :—

"............Reaching the village he went round the lanes and ordered all women to come out of their houses, himself forcing them out with sticks. He made us all stand near the village Daira. The women folded their hands before him. He beat some with his stick and spat at them and used the foulest and most unmentionable language. He hit me twice and spat in my face. He forcibly uncovered the faces of all the women brushing aside the veils with his own stick.

He repeatedly called us she-asses, bitches, flies, and swine and said : " You were in the same beds with your husbands ; why did you not prevent them from going out to do mischief ? Now your skirts will be looked into by the police constables." He gave me a kick also and ordered us to undergo the torture of holding our ears by passing our arms round the legs while being bent double."

अङ्गरेज़ों के सभ्य और न्यायपूर्ण कहे जाने वाले शासन में किए गए अबलाओं पर अत्याचारों का यह नमूना है। आप इसी से अन्दाज़ा कर सकते हैं उन अत्याचारों का, जो शासकों की ओर से अङ्गरेज़ व हिन्दुस्तानी अफ़सरों व उनके हिमायती और ग़ुलामों ने अपनी माँ-बहिनों पर किए। धिक्कार है हज़ार बार उन लोगों पर, जो निस्सहाय और वैसे ही अत्याचार-पीड़ित स्त्री-जाति पर यह घोर अन्याय करते लज्जा नहीं खाते ! छिः स्त्रियों के भी दुख का कहीं ठिकाना है ? घर में देखो तो अत्याचार, बाहर देखो तो अत्याचार। क्या उनके भाग्य में सुख, शान्ति और स्वतन्त्रतानन्द बदाही नहीं है ? क्या वे इसी प्रकार शान्तिपूर्वक पुरुषों के अत्याचारों को सहती रहेंगी ?

इधर रेलों में हमारे बाबूसाहब, अङ्गरेज और हिन्दुस्तानी दोनों ही स्त्रियों पर अलग ही हत्था जमाना चाहते हैं। हमने समाचार-पत्रों में पचासों ऐसी घटनाओं का हाल पढ़ा है, जिनमें रेलवे के कर्मचारियों ने स्त्रियों को बहुत तङ्ग किया है और उनका धर्म नष्ट

कर दिया है। अनेक पापी ऐसे कुकर्मों का दण्ड भी पा चुके हैं और तो क्या कहें, रेल चलते हुए भी डब्बों में स्त्रियाँ लूट ली जाती हैं। केवल धन ही से नहीं, वरन् धर्म से भी वे हाथ धो बैठती हैं। अनेक बार साहब बहादुरों ने—अङ्गरेज़ अफ़सरों ने—चलते डब्बे में उच्च कुलजात सम्भ्रान्त रमणियों का सतीत्व-सौन्दर्य नष्ट कर दिया है। पाठको, क्या ये भी लिखने की बातें हैं? पर करें तो क्या! आप नित्यप्रति ऐसी घटनाओं को देखते-सुनते भी टस से मस नहीं होते, आपके कानों में जूँ तक नहीं रेंगती। अपनी माताओं और बहू-बेटियों के अपमान को आप चुपचाप सह लेते हैं। आप ही के भाई-बन्धु आपकी ही स्त्रियों के प्रति ऐसा दुर्व्यवहार करें और आप मुर्दों की तरह हाथ-पैर फैलाए पड़े रहें। धिक्कार है आपके इस देशाभिमान पर और अफ़सोस है आपके पुरुषत्व पर।

भारतीय स्त्रियों की इस प्रकार कितनी बेइज्ज़ती हो रही है, उनके साथ कैसा दुर्व्यवहार हो रहा है, वह हमारे पाठकों से छिपा नहीं है। खोरियल शूटिङ्ग काण्ड में हीरा और उसके बाप के साथ जो अन्याय किया गया, हिन्दुस्तानी स्त्री-समाज तथा राष्ट्र का जो अपमान हुआ वह छिपा नहीं है। इसके बाद स्यालकोट के गोरे सिपाही का मामला भी सबको ज्ञात हो चुका है। यह बताने की आवश्यकता नहीं कि उसने एक हिन्दुस्तानी स्त्री पर नापाक हमला किया और शोर मचाने पर उसको पीटा; फिर मैजिस्ट्रेट साहब ने अपने फ़ैसले में जिन शब्दों और भावों को उगला है वे उनके हृदय की अवस्था का पता देते हैं। इसके सिवा और भी एक घटना हुई व उसका

भी रङ्गीला फ़ैसला हुआ। साहब बहादुर ने एक सेकण्ड क्लास में सफ़र करने वाली भारतीय रमणी को बेत से मारा था। इस पर उसको मैजिस्ट्रेट ने ३०) रु० जुर्माने की सज़ा देकर छोड़ दिया। मज़ा तो यह है कि वे साहब बहादुर मय अपनी बीबी साहिबा के बिना टिकट सफ़र कर रहे थे! मैजिस्ट्रेट साहब फ़रमाते हैं :—

"If accused beat with his cane the Indian lady he did so unintentionally. Accused denied having touched the lady........" इसका मतलब यही है कि अभियुक्त ने भारतीय स्त्री को अपने बेंत से मारा भी, तो अनजान से। अभियुक्त कहता है कि उसने स्त्री को स्पर्श नहीं किया। कैसा अच्छा न्याय (Judgement) है! मैजिस्ट्रेट साहब इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि उसने अपने स्वर और तरीक़े से भय दिखाया था। वाह वाह! और भी देखिए, अभियुक्त ने यह भी स्वीकर किया है कि वह बिना टिकट सफ़र कर रहा था। क्या ख़ूब! इस पर यह धौंस कि मुसाफ़िरों को धमका कर डब्बे से निकाल देना और एक सम्भ्रान्त रमणी को बेतों से पीट देना! कैसा अन्धेर है! मैजिस्ट्रेट साहब ने इस पर (बड़ा साहस कर) ३०) रु० जुर्माने का (भयङ्कर !!!) दण्ड दिया! एक गोरा मय अपनी बीबी बिना टिकिट सफ़र करे, इस पर भी मुसाफ़िरों को बेत से थपथपा कर और धमका कर बाहर निकल जाने का हुक्म दे तथा दूसरे दर्जे में सफ़र करने वाली भारतीय रमणी को बेत लगावे तो, वह सिर्फ़ ३०) रु० देकर

पर ताव दे सकता है; कितना सस्ता सौदा है !! हिन्दुस्तानियों और उनकी स्त्रियों की कितनी इज्जत है ? हिन्दुस्तानी मैजिस्ट्रेट स्त्रियों के साथ कैसा अच्छा न्याय करते हैं ?

जरा प्रवासी भारतवासियों की ओर भी दृष्टिपात कीजिए। ज़रा वहाँ चल कर भी देखिए कि भारतीय भोली-भाली स्त्रियाँ किस प्रकार कुचक्र में फँसा कर भारतवर्ष से सैकड़ों, सहस्रों कोस दूर पटक दी जाती हैं और वहाँ पहुँचकर उन पर कैसे-कैसे पाशविक अत्याचार किए जाते हैं। यदि आपने प्रवासी भारतवासियों के सम्बन्ध में कुछ पढ़ा होगा तो सहज ही वहाँ की स्त्रियों की दुरावस्था आपकी समझ में आजायगी। अफ़्रीका आदि देशों में जो लोग यहाँ से कुली बनाकर भेजे जाते हैं उनमें स्त्रियों की संख्या थोड़ी होती है। फल यह होता है कि स्त्रियों पर बड़ा अन्याय होता है। एक एक स्त्री को दर्जन से अधिक पुरुषों को सन्तुष्ट करना पड़ता है। आह ! कैसा घृणित व्यापार है। वहाँ स्त्रियों की जैसी दुखदस्थिति है, उन्हें जिस नर्क-यन्त्रणा का अनुभव करना पड़ता है उसे सोचकर हृदय काँप उठता है। गोरे लोग अलग ही अपना ऊधम मचाते हैं। वे लोग भी हिन्दुस्तानी स्त्रियों की ताक में रहते हैं और मौक़ा पाकर हाथ साफ़ कर देते हैं। जो अफ़सर होते हैं वे स्त्रियों से बड़ा कठोर काम लेते हैं। उन्हें पुरुषों से अलग कर दूर खेतों में भेज देते हैं और इतना अधिक कार्य दे देते हैं कि वे उसे कर नहीं सकतीं। तब वे अपना अधार्मिक प्रस्ताव उनके सम्मुख पेश करते हैं और उसके न मानने पर वे

बलात् उनका धर्म भ्रष्ट कर देते हैं, और कभी-कभी तो इतना कष्ट देते हैं कि स्त्रियों के प्राणों पर आ बनती है। कैसा लज्जाजनक काण्ड है? सभ्यता के इस युग में इस बर्बरता का किसने अनुभव किया है? संसार की माताओं की आज इस दुरावस्था पर कौन अश्रुपात करता है? सर्वत्र अत्याचार हो रहे हैं, स्त्रियाँ कहीं सुखी नहीं हैं। न उन्हें सामाजिक अधिकार प्राप्त हैं और न राजकीय, न उनमें शारीरिक बल है और न आत्मिक। स्त्रियों का पतन तो हो ही रहा है; साथ ही साथ पुरुष-जाति भी विनाश के गहरे गर्त में चली जा रही है। शान्ति और स्वास्थ्य के चाहने वालो! शासन की दुहाई देने वालो! सुधारको और अन्याय के मिटाने वालो! जरा आँखें खोल कर स्त्री-समाज की दुर्दशा देखो। जिस जाति से हमारा जन्म हुआ है, जिस जाति पर हमारी उन्नति और अवनति निर्भर है, आज उसकी क्या अवस्था हो रही है, इसे जरा देखो। क्या आप भूल गए कि स्त्रियों के शाप से आपका नाश अवश्यम्भावी है।

पाठको! अत्याचार की यह कथा अब समाप्त हो रही है। हमने संक्षेपतः इस अवस्था को अङ्कित करने का प्रयत्न किया है। सम्भव है, हमने कुछ भूल की हो किन्तु, उस भूल से यह मतलब नहीं कि अत्याचार का अस्तित्व ही न माना जाय। हमने जहाँ तक हुआ है अतिशयोक्ति से बचने का प्रयत्न किया है। यही नहीं, हमारा तो अनुमान है कि हमने जो कुछ लिखा है, स्त्रियों की दशा कहीं उससे गई बीती है। इस लेखनी में, जो जड़ कहलाती है, इतना

सामर्थ्य कहाँ, जो जीते-जागते अत्याचारों की प्रतिमा चित्रित कर सके। यह तो अनुभव की बात है।

हम तो कहेंगे कि सम्प्रति भारतवर्ष में बहुत कम स्त्रियाँ सुखी हैं। अधिकांश नारियाँ अत्याचारों की आँच में तप रही हैं। उन पर घर-बाहर सभी ओर से अन्याय किया जा रहा है। आप उन्हें हज़ार कपड़े पहिनाएँ, बढ़िया-बढ़िया जड़ाऊ गहनों से उन्हें जड़ दें; किन्तु क्या वे सच्चे सुख का अनुभव कर सकती हैं? क्या रोगी शरीर राज-प्रासादों में भी सुख पा सकता है? सहानुभूति भी कोई चीज़ हुआ करती है! अपनी बहिनों की दुरावस्था देख, उनका पतन देखकर कौन ऐसी स्त्री है जो चुप रह सके? कौन ऐसी बहिन है जो बहिन के लिए आँसू न बहाएगी!

आज पुरुष-जाति की दशा बड़ी विचित्र हो रही है। पुरुषों के चरित्र में अब न तो दृढ़ता है और न महानता। उनकी मति पलटते देर नहीं लगती। स्त्री-समाज पर तो उनका घोर अविश्वास है, और विश्वास है उन्हें केवल स्त्रियों की गुलामी में, कायरता में और उनकी निस्सहायता में। अत्याचारों का करना अच्छा नहीं है। याद रक्खो, स्त्रियों को सता कर तुम ज़िन्दा नहीं रह सकते। किसी कवि ने ठीक ही कहा है :—

सताए जाओगे तुम भी जो औरों को सताओगे!
मिटाए जाओगे तुम भी जो औरों को मिटाओगे!!

स्त्री-समाज का बहिष्कृत अङ्ग

पिछले प्रकरणों में वर्णित अनेक अत्याचारों के पश्चात् स्त्री-समाज का एक ऐसा अङ्ग अवशिष्ट रह गया जो एक प्रकार से बहिष्कृतों की भाँति जीवन व्यतीत कर पुरुषों के अवशिष्ट अत्याचारों का पात्र बना हुआ है। स्त्री-समाज के इस अङ्ग के सम्बन्ध में कुछ लिखने के पूर्व हम दो-एक कवियों के काव्यांश द्वारा पाठकों का मनोरञ्जन तो नहीं; हाँ भावोद्बोधन करना चाहते हैं। अच्छा तो सुनिए :—

महा भयानक दृश्य ! क्रूरते, बता कहाँ तेरी सीमा।
ज़रा चिता को तेज़ जला दे, यह प्रकाश तो है धीमा॥
दीख पड़ें तेरी करतूतें, हत्यारी न्यारी-न्यारी।
चिन्ता की जीवित आहुतियाँ, आकृतियाँ प्यारी प्यारी॥
बिखरे बाल, भाल है सूना, इनको दूना लूटा है।
पहले जीवन-धन छूटा, फिर लाल हृदय का टूटा है॥
दुर्गतियों की प्रतिमाएँ हैं, पतिहीना, दीना सतियाँ।
पास पड़ीं सुख की घड़ियों की, स्मित-विहीन ये हैं स्मृतियाँ॥
हिन्द-देवता के चरणों की, शरण पड़ीं करुणावलियाँ।
निरानन्द निश्चल नयनों से, चढ़ा रहीं शोकाञ्जलियाँ॥

"हम जीती जलती जाती हैं, जीवन हुआ श्मशान हमें।
अब तो सहा नहीं जाता है, दे मैया, विषदान हमें॥
या अपना तिरशूल हूल दे, मरने दे, मर जाने दे।
शुभ चिन्हों से रहित देह यह, गिद्धों को खा जाने दे॥
विधवाओं की देख दशा तू, मन में कुछ करुणा लाना।
माँ, तुझसे है यही प्रार्थना, अब न पुत्रियाँ उपजाना॥
यदि उपजें तो दूर फेंकना, उनको दूध पिलाना मत।
भूल प्यार मत करना उनको, अपनी गोद खेलाना मत!!
फिर भी जीवें तो विवाह का, उनको नाम सिखाना मत।
ब्याह हुआ तो विधवा होंगी, माँ,यह दृश्य दिखाना मत॥
हिन्द-देवि, यों तेरी लाखों, ललनाएँ लाचार हुईं।
कहता है संसार—"अभागी, हैं, दुनिया को भार हुईं॥"
किसे हाय! इनकी चिन्ता है, डायन हैं, मर जावें ये।
कोई नहीं सहारा देता, भले कलङ्क लगावें ये॥
चाहे अपने चित्कारों से, नभ-मण्डल दहलावें ये।
चाहे अपनी गर्म आह से, हिन्दू-जाति जलावें ये॥
जहाँ एक सीता, सावित्री, दमयन्ती उद्धार करें।
तहाँ हाय! लाखों ललनाएँ, विधवा हो बेमौत मरें॥
आँख मूँद हिन्दू-समाज तू, स्वेच्छाचार सिखा इनको।
या आशा का सन्देशा दे, विजयी मार्ग दिखा इनको॥

(श्रीशारदा से सङ्कलित)

आइए, अब आपको एक हिन्दू बाल-विधवा की दुखपूर्ण अवस्था का हृदय-द्रावक चित्र दिखाएँ। सुनिए, वह क्या कह रही है:—

मौत की ख़्वाहाँ जान की दुश्मन,
जान पै अपनी आप अजीरन।

रो नहीं सकती तङ्ग हूँ याँ तक,
और रोऊँ तो रोऊँ कहाँ तक ?

बात से नफ़रत काम से वहशत,
टूटी आस और बुझी तबीयत।

आबादी जङ्गल का नमूना,
दुनियाँ सूनी और घर सूना।

थक गई मैं दुख सहते-सहते,
थम गए आँसू बहते-बहते।

वह चैत औ फागुन की हवाएँ,
वह सावन-भादों की घटाएँ।
वह गर्मी की चाँदनी रातें,
वह अरमान भरी बरसातें।

किससे कहूँ किस तौर से काटीं,
ख़ैर, कटीं जिस तौर से काटीं।
आस बँधी लेकिन न मिला कुछ,
फूल आया और फल न लगा कुछ।
रह गया देकर चाँद दिखाई,
चाँद हुआ पर ईद न आई।
ऋतु बदली पर हुई न बरसा,
बादल गरजा और न बरसा।

फल की ख़ातिर बरछी खाई,
फल न मिला और जान गँवाई।

* * *

हृदय पर हाथ रखकर ज़रा इन विधवाओं की करुण दशा के दर्शन कीजिए। आप इसे कवि की कल्पना न समझें। सच तो यह है कि विधवाओं की अवस्था का वर्णन—सच्चा वर्णन—कवि भी नहीं कर सकते। जिन्हें ईश्वर ने आँखें दी हैं, वे आएँ और हिन्दू-समाज में इन दीना, हीना, और पतिविहीना नारियों का निरीक्षण करें। हमारा तो विश्वास है, जब वे सच्चे हृदय से उनकी दशा देखेंगे तब आठ-आठ आँसू बहाए बिना न रहेंगे। वे देखेंगे कि स्त्री-जाति पर होने वाले सभी अत्याचार इसके आगे तुच्छ हैं। एक तो स्त्री-समाज वैसे ही अपनी अधोगति को प्राप्त हो रहा है तिस पर भी उसने लाखों नहीं, करोड़ों की संख्या में अपने ही एक अङ्ग को बहिष्कृत कर दिया है, दूर फेंक दिया है। देखिए—'स्त्रियों की स्वाधीनता' नामक पुस्तक में लेखक ने कैसे मर्मस्पर्शी शब्दों में लिखा है :—

मगर देखो, कौन छूट गया? इस शीघ्रता में किसे साथ लेना भूल गए? हमने कीचड़ में फँसे हुए किस अभागे के उठने की सुध नहीं ली? उन्नति के पथ पर चलने वाला कौन साथी छूट गया? किस फूटी हुई क़िस्मत को महा अन्धकार में छोड़ कर हम उज्ज्वल प्रकाश में जाने की चेष्टा कर रहे हैं? वह कौन है?

वह है निरीह विधवा! वह है समाज से त्यागी हुई विधवा! भगवान

की जो स्वर्णमयी ज्योति अन्धे, भटके हुओं का पथ-प्रदर्शन करती है, उससे विधवा क्यों वञ्चित रहे ? उस दिव्य ज्योति में अपने को देखते हुए ज़रा उसे भी देखो ।

हिन्दू-विधवाओं की संख्या कुछ कम न समझना । देश की बहुसंख्यक विधवाएँ हम पुरुषों की दया और सहानुभूति को लालायित दृष्टि से निहारती हैं । जितनी हमारे देश में विधवाएँ हैं, उतनी या उसी के लगभग सर्विया, मॉण्टिनिग्रो, यूनान और बेल्जियम सरीखे स्वाधीन राष्ट्रों में समूची जन-संख्या होगी । एक बेल्जियम की स्वाधीनता पद्-दलित होने पर इतना प्रकाण्ड, विश्वव्यापी महासमर खड़ा हो गया । परन्तु, यहाँ तो विधवाओं की स्वाधीनता की बात नहीं है, केवल उनके उद्धार की बात है तो भी कान पर जूँ तक नहीं रेंगती । अगणित पतिविहीना स्त्रियाँ इस विशाल देश के अन्तःपुरों में मूक रोदन कर हिमालय का हृदय द्रवित करती हैं और अपने करुण-क्रन्दन से भगवान को करुणालय बना रही हैं । खूब विचारो, उनकी गुहार सुनने वाला संसार में कोई नहीं है........ ।

किसी अभागिन का पतिविहीना होना मानो संसारविहीना होना है । फिर जैसे न वह संसार की और न संसार उसका । यह ऐसा हँसता हुआ सुखदायी संसार ! मगर, उसके लिए धूल के बराबर ! संसार के एक कोने पर खड़ी होकर अभागिनी सबको देखती है और अपने को एक अभागा राह चलतू बटोही ख्याल करती है । बारह वर्ष की आयु वाले को, चाहे वह लड़का हो या लड़की, बच्चा ही कहते हैं । माता-पिता दस-बारह वर्ष की बालिका का विवाह कर दें और वह कमबख़्त (?) दूसरे ही दिन विधवा हो जाय तो इसमें बालिका का क्या दोष है ? पति मर जाय तो अबोध बालिका उस मृत्यु की ज़िम्मेदार क्यों है ? उसके (पति के) माता-पिता

फल की ख़ातिर बरछी खाई,

फल न मिला और जान गँवाई।

*　　　*　　　*

हृदय पर हाथ रखकर ज़रा इन विधवाओं की कवि-वर्णित दशा के दर्शन कीजिए। आप इसे कवि की कल्पना न समझें। सच तो यह है कि विधवाओं की अवस्था का वर्णन—सच्चा वर्णन—कवि भी नहीं कर सकते। जिन्हें ईश्वर ने आँखें दी हैं, वे आएँ और हिन्दू-समाज में इन दीना, हीना, और पतिविहीना नारियों का निरीक्षण करें। हमारा तो विश्वास है, जब वे सच्चे हृदय से उनकी दशा देखेंगे तब आठ-आठ आँसू बहाए बिना न रहेंगे। वे देखेंगे कि स्त्री-जाति पर होने वाले सभी अत्याचार इसके आगे तुच्छ हैं। एक तो स्त्री-समाज वैसे ही अपनी अधोगति को प्राप्त हो रहा है तिस पर भी उसने लाखों नहीं, करोड़ों की संख्या में अपने ही एक अङ्ग को बहिष्कृत कर दिया है, दूर फेंक दिया है। देखिए—'स्त्रियों की स्वाधीनता' नामक पुस्तक में लेखक ने कैसे मर्मस्पर्शी शब्दों में लिखा है :—

मगर देखो, कौन छूट गया? इस शीघ्रता में किसे साथ लेना भूल गए? हमने कीचड़ में फँसे हुए किस अभागे के उठने की सुध नहीं ली? उन्नति के पथ पर चलने वाला कौन साथी छूट गया? किस फूटी हुई क़िस्मत को महा अन्धकार में छोड़ कर हम उज्ज्वल प्रकाश में जाने की चेष्टा कर रहे हैं? वह कौन है?

वह है निरीह विधवा! वह है समाज से त्यागी हुई विधवा! भगवान

की जो स्वर्णमयी ज्योति अन्धे, भटके हुओं का पथ-प्रदर्शन करती है, उससे विधवा क्यों वञ्चित रहे ? उस दिव्य ज्योति में अपने को देखते हुए ज़रा उसे भी देखो।

हिन्दू-विधवाओं की संख्या कुछ कम न समझना। देश की बहुसंख्यक विधवाएँ हम पुरुषों की दया और सहानुभूति को लालायित दृष्टि से निहारती हैं। जितनी हमारे देश में विधवाएँ हैं, उतनी या उसी के लगभग सर्विया, मॉण्टिनिग्रो, यूनान और वेल्जियम सरीखे स्वाधीन राष्ट्रों में समूची जन-संख्या होगी। एक वेल्जियम की स्वाधीनता पद्-दलित होने पर इतना प्रकाण्ड, विश्वव्यापी महासमर खड़ा हो गया। परन्तु, यहाँ तो विधवाओं की स्वाधीनता की बात नहीं है, केवल उनके उद्धार की बात है तो भी कान पर जूँ तक नहीं रेंगती। अगणित पतिविहीना स्त्रियाँ इस विशाल देश के अन्तःपुरों में मूक रोदन कर हिमालय का हृदय द्रवित करती हैं और अपने करुण-क्रन्दन से भगवान को करुणालय बना रही हैं। खूब विचारो, उनकी गुहार सुनने वाला संसार में कोई नहीं है........।

किसी अभागिन का पतिविहीना होना मानो संसारविहीना होना है। फिर जैसे न वह संसार की और न संसार उसका। यह ऐसा हँसता हुआ सुखदायी संसार ! मगर, उसके लिए धूल के बराबर ! संसार के एक कोने पर खड़ी होकर अभागिनी सबको देखती है और अपने को एक अभागा राह चलतू बटोही ख़्याल करती है। बारह वर्ष की आयु वाले को, चाहे वह लड़का हो या लड़की, बच्चा ही कहते हैं। माता-पिता दस-बारह वर्ष की वालिका का विवाह कर दें और वह कमबख़्त (?) दूसरे ही दिन विधवा हो जाय तो इसमें वालिका का क्या दोष है ? पति मर जाय तो अबोध वालिका उस मृत्यु की ज़िम्मेदार क्यों है ? उसके (पति के) माता-पिता

और कुटुम्बी जन थे, सबने मिलकर पति को मरने से क्यों न बचा लिया? अब ज़ोर है उस गुड़िया खेलने वाली लड़की पर! जन्म भर अभागि विधवा रहे, और जो कभी मुँह से 'उफ़' निकाले तो उसने मानो कुल नाम डुबो दिया। पति के मर जाने का सारा प्रायश्चित्त उसी एक अभा पर डालना, इस देश में चाहे जो कहा जाय, परन्तु संसार के सभ्य देशों तो उसे घोर अत्याचार कहेंगे। आज अगनित विधवाओं का अभिशाप भारत को बोझों दबा रहा है, और भारत न जाने किस उछलते हुए नरक में जा रहा है। उनके मन को इतना न मारो, उन्हें एकदम वे हाथ-पैर का पागल मत बना डालो। वे शाप देने में भी डरती हैं। जिस दिन वे अपनी वेदनाओं से तङ्ग आकर पल्ला फैला-फैलाकर और मुँह से चिल्ला-चिल्लाकर पुरुषों को शाप देना आरम्भ करेंगी, जिस दिन लाखों और करोड़ों विधवाओं के मुख ईश्वर की दुहाई देते हुए खुल्लमखुल्ला पुरुषों का बुरा चाहेंगे, उस दिन सत्य जानो, उस दिन परमात्मा की इस विशाल सृष्टि से हिन्दू-जाति का नाम मिट जायगा।

अपनी ही लिखी 'सुधार' नामक पुस्तक में हमने विधवाओं के सम्बन्ध में लिखा था:—

दूसरी ओर जब हमारी दृष्टि देश की विधवाओं की ओर जाती है, तो सिवा भर पेट रो लेने के और कुछ नहीं सूझता। आप जानते हैं कि आज आपके देश में कितनी विधवाएँ हैं? आज आपके देश में लगभग तीन करोड़ विधवाएँ हैं! क्या आपने कभी इस भयङ्करता का विचार किया है? इन विधवाओं में एक-एक वर्ष तक की विधवाएँ मौजूद हैं। क्या कारण है? हम तो बाल-विवाह रचकर अपनी कन्याओं को विधवा बना देते हैं, वृद्ध-विवाह रचकर युवती बालाओं को वैधव्य की कठोर अवस्था में

ल देते हैं और तब उनकी परिपक्व अवस्था में, उनकी उठती जवानी में, यौवन-तरङ्ग में हम उनसे पवित्र रहने, ब्रह्मचर्य धारण करने और -निग्रह या मानोनिग्रह की आशा करते हैं।

म मनुष्य होकर भी अस्सी वर्ष की अवस्था में ग्यारहवें या पन्द्रहवें ाह की कामना करते हैं, हम उस समय भी कामदेव के प्रखर वाणों से अपनी रक्षा नहीं कर सकते और अपने पातकी सुखके लिए बेचारी बालाओं का जीवन सदा के लिए नष्ट कर देते हैं। उनका सौभाग्य-दीपक चिरकाल के लिए बुझा देते हैं। हम उन बेचारी अनाथ बालाओं को यौवन-समुद्र में, उनकी नई तरङ्गों में, प्रेम या पिपासा के भीषण नद में छोड़कर चल बसते हैं। हम नहीं जानते कि उनका जीवन कैसे व्यतीत होगा, वे सुकुमारी बालाएँ जिन्होंने अभी जीवन का कुछ भी सुख नहीं देखा है, जिन के यौवन की कली अभी खिल ही रही है, क्योंकर अपना ब्रह्मचर्य स्थिर रख सकेंगी ?

यह तो एक प्रकार से वैवाहिक अत्याचार है; किन्तु अपनी भूल से या दैवी कोप से विधवाओं की जो अवस्था है हमें उसी पर विचार करना चाहिए। हमें जानना चाहिए कि प्रथमतः स्त्री-समाज वैसे ही पुरुषों के अत्याचारों से पीड़ित है, तिसपर भी विधवा-समाज तो स्त्री, पुरुष, दोनों की ही दृष्टि में पतित हो जाता है। विवाहित अवस्था में तो वे केवल पुरुषों के अत्याचारों को ही सहती थीं, परन्तु अब तो समाज में उन्हें कहीं स्थान ही शेष नहीं रहा है। विधवाएँ चाहे वे वृद्ध हों, प्रौढ़ा हों, युवती हों अथवा बालिका हों सब एक ही श्रेणी में गिनी जाती हैं; अर्थात् कोई भी विधवा, समाज की दृष्टि में मान्य

नहीं है। सभी पतित हैं, सभी त्याज्य हैं और सभी घृणा की पात्र हैं हाँ, अन्तर है एक बात में। विधवा की अवस्था जितनी कम है, अत्याचारों का उसपर उतना ही आधिक्य होता है। प्रौढ़ वृद्ध-विधवाएँ जिन सङ्कटों से बच जाती हैं युवती और बाल-विधवाएँ उनके घोर चक्र में पड़कर अपना जीवन नष्ट कर देती हैं।

जरा बाल-विधवाओं की अवस्था पर विचार कीजिए। देश में बाल-विधवाओं की संख्या कुछ कम नहीं है, और वैसे तो प्रत्येक गृह में एक न एक विधवा अवश्य पाई जाती है। कर्म, धर्म और संयोग से जिन्हें बाल्यावस्था में ही वैधव्य प्राप्त हो गया है, उनकी अवस्था तो सचमुच बड़ी शोचनीय है। विवाह क्या वस्तु है, उसकी जिम्मेदारी कितनी, पति किस वस्तु का नाम है और उसके साथ उसका क्या सम्बन्ध है, यह समझने के पूर्व ही बेचारी निर्दोष बालाएँ संसार में निराधार हो जाती हैं और उनका सौभाग्य-सूर्य उदय होते न होते अस्त हो जाता है। इन बाल-विधवाओं को ससुराल में तो बड़ी ही प्रतारणा दी जाती है। वे कुलटा, राक्षसी, हत्यारी और न जाने किन-किन विशेषणों से पुकारी जाती हैं। कहाँ तो बेचारियों को यह भी ज्ञान नहीं होता कि गृहस्थी का तथा संसार का सुख क्या वस्तु है और कहाँ वे डायन समझी जाकर घोर अपमान और दुख सहती हैं। कहाँ उनका बढ़ता हुआ आनन्द और उल्लासयुक्त नवयौवन और कहाँ उनके लिए चिरदुख और चिर-अपमान का आयोजन! होता यह है कि ससुराल में तो उनकी बहुत कम निभती है। वे

बहुधा अपने मायके में ही रहती हैं और प्रायः वहीं उनकी ज़िन्दगी पूरी होती है। माँ-बाप के घर में रहने से उन्हें अनेक सुविधाएँ तो रहती हैं, किन्तु वे स्वच्छन्द हो जाती हैं। वे घर में अपनी हुकूमत चलाती हैं और अपनी सत्ता सर्वोपरि स्थापित करती हैं। फल यह होता है कि जब तक माँ-बाप ज़िन्दा रहते हैं, तब तक तो ज्यों-त्यों कर उनकी गुज़र हो जाती है, लेकिन उनके मरने पर उन्हें बड़ी मुसीबत का सामना करना पड़ता है। ससुराल वाले तो पूछते ही क्यों हैं ? उनकी दृष्टि में तो जितने दिन इस प्रकार कट जाँय, ग़नीमत है। बस, भाई-भौजाई की बातें और अपमान सहने और दिनभर ग़ुलामी करके भी आठ-आठ आँसू रोते, अतोभ्रष्ट-ततोभ्रष्ट की तरह होकर अपनी ज़िन्दगी के दिन बिताती हैं। एक बारह वर्ष की बालिका इसी प्रकार उस कोमल सुकुमारावस्था में ही सौभाग्यहीन हो गई। बहुत वर्षों तक ससुराल वालों ने कोई ख़बर नहीं ली। तब माता ने उपयुक्त समझ एक व्यक्ति को साथ कर उसे ससुराल भेज दिया। वहाँ उसका सत्कार होना तो दूर रहा, उलटे ससुर जी ने साफ़ कह दिया कि मैं तो अपने पुत्र की मृत्यु के साथ ही इसे भी मृत समझ चुका हूँ। यहाँ इसका कोई काम नहीं है, इसे वापस ले जाओ। अब क्या किया जाता ? फिर बेचारी अपने मायके चली आई और सबकी मरज़ी साध कर दिन बिताने लगी। इसी समय उसके माता-पिता का देहान्त हो गया। कुछ दिन बीतते न बीतते भावज ने उससे लड़ना आरम्भ कर दिया और डायन हत्यारिन आदि कहने लगी

भाई भी ऐंठ गया। वह बोला—"हमारे पास तेरा गुज़ारा नहीं हो सकता और न हम तेरा पालन कर सकते हैं। यह रास्ता पड़ा है, जहाँ चाहे चली जा!" आपही सोचिए, न्याय कीजिए, उसकी इस दुरावस्था को कल्पना द्वारा अनुभव कीजिए। इसमें उस दीना, हीना, पतिविहीना बालिका का क्या दोष था? क्या उसने अपना सौभाग्य स्वयँ नष्ट कर लिया? क्या उसके माता-पिता और भाई आदि का इसमें दोष नहीं है? क्यों इतनी अल्पायु में उसे सौभाग्यवती बना देने की उमङ्ग छा गई? क्यों न उसे और कुछ काल तक कौमार्यव्रत धारण करने दिया? फिर ससुर जी और उनके घर के लोग क्या अन्यायी नहीं हैं? क्या बालिका ने अपने पति की हत्या की है? यदि नहीं तो उसे यों तीखी-तीखी सुनाकर जले पर नमक छिड़कना क्या पाप नहीं है? सब कुछ है, पर सुनता कौन है? उनकी इस दुखभरी आवाज़ पर कान कौन देता है?

सूरत की ११ बाल-विधवाओं ने, जो वणिक-जाति की थीं और वैष्णव-धर्म को मानती थीं, महात्मा गाँधी जी के पास दो प्रार्थना-पत्र भेजे थे। उन्हीं को लक्ष्य कर महात्मा जी ने लिखा था:—

इन ग्यारह विधवाओं में से तीन पढ़ी-लिखी हैं और शेष अक्षर-शून्य हैं। जाति में ये बड़ी बुरी नज़र से देखी जाती हैं। भक्तिणी कहलाती हैं और अधम पुरुषों के आश्रय में रहती हैं। सूरत में वणिकों की ४१ जातियाँ हैं और उनमें बाल-विधवाओं की संख्या ७०० के लगभग है।

धर्म क्या चीज़ है, यह उनमें से कोई नहीं जानता। दुखिनी विधवाएँ लिखती हैं—हम विधवा-धर्म को समझती हैं, परन्तु इस धर्म की रक्षा की जा सके, ऐसे साधन हमें उपलब्ध नहीं है। हमें किसी आश्रम में रखकर अच्छी शिक्षा दी जाय और सेवा-धर्म सिखलाया जाय तो हम अपने धर्म की रक्षा करने के लिए तैयार हैं। पर, यदि ऐसा न हो तो हमारे सामने इतने अधिक प्रलोभन रहते हैं कि हमको पति-सङ्ग की आवश्यकता है। जिस समय ज्ञान-मार्ग मन्द पड़ा था, उस समय वल्लभाचार्य जी ने भक्ति-मार्ग का प्रचार किया था। देश-काल के अनुसार रूढ़ियों में फेर-फार होते हैं। तदनुसार ही हमारे (विधवाओं के) विषय में भी विचार होना चाहिए, इत्यादि। इस प्रकार विधवाओं का प्रश्न हिन्दुओं के लिए कोई छोटा-मोटा प्रश्न नहीं है। शायद ही कोई ऐसा कुटुम्ब हो जिसके सिर पर विधवाओं का उत्तरदायित्व न हो।

आप हो सोचिए, वह कैसी बुरी दशा है, जब हमारी नवबालाएँ अपनी जीवन-लहर के उठते न उठते एकदम मिट जाने के लिए विवश हो जाती हैं। उठिए, उन्हें बचाइए, उनसे घृणा मत करिए, उन्हें कुदृष्टि से मत देखिए, उन्हें सदाचारविहीन मत होने दीजिए, इसी में समाज का कल्याण है। स्त्री-समाज का यह वहिष्कृत अङ्ग महादुखी है। आप कहने के लिए भले ही शास्त्रों की दुहाई दें और यह वतलाएँ कि चाहे जिस कारण हो, जब स्त्रियाँ वैधव्य को प्राप्त हो गई हैं, तब उनका धर्म है कि वे वैधव्य के कठोर व्रत का संयम से पालन करें। अवश्य ही यह नियम उन विधवाओं पर लागू हो सकता है जो संसार के सुख को समझ

गई हैं, जिन्हें सन्तान भी है, अथवा जो यथेष्ट पति-संसर्ग में रह चुकी हैं। किन्तु, उन नवयौवनाओं से भी क्या आप ऐसे ही कठोर व्रत की आशा रखेंगे, जिनका विवाह हुए कठिनाई से एक वर्ष भी न बीता था कि वे विधवा हो गईं? बताइए, वे क्या करेंगी?

हम आप से पूछते हैं, आपने इस भयङ्कर सामाजिक पाप पर कभी सच्चे हृदय से विचार किया है? किसकी भूल से यह महा भयङ्कर अत्याचार हो रहा है? क्या आप नहीं जानते कि ये विधवाएँ वास्तव में बहिष्कृत जातियों की तरह ही अपमान, भर्त्सना और प्रवञ्चना की पात्र बनती हैं? इन विधवाओं के साथ देश की कितनी बड़ी जन-संख्या है, जिसे आपने एकदम निर्जीव, निस्सत्व और निरुपयोगी बना रक्खा है। आप यों तो विधवाओं की बातों पर शास्त्र की दुहाई देने लगते हैं, पर क्या शास्त्र में यह भी लिखा है कि विधवाओं की इस प्रकार दुर्दशा करो, उन्हें अपमानित करो, उन्हें अमङ्गलसूचक मानो और उनका जीवन पशु से भी बदतर बना दो? क्या हम झूठ लिख रहे हैं? आँखें हों तो देख लीजिए। विधवाएँ अपने पापी पेट के लिए, मौत की भूखी होने पर भी मौत न होने के कारण, अपनी ज़िन्दगी के शेष दिन काटने के लिए क्या-क्या नहीं करतीं? वे तमाम घर का काम और सबकी सेवा तथा खुशामद करती हैं। ख़ामख़ाह लोगों की मर्ज़ी उन्हें साधनी पड़ती है। ओछे से ओछा और नीच से नीच काम उनसे लिया जाता है, फिर भी उनकी क्या इज्ज़त होती

है ? वे शुभ कार्य में विघ्नसूचक मानी जाती हैं। समाज के लिए कण्टक और पापिनी समझी जाती हैं। तभी तो अनेक विधवाएँ पापियों के जाल में फँस जाती हैं। अपमान और अवहेलना की अग्नि से तपकर वे निर्लज्ज हो जाती हैं और समाज व कुल के मुख पर स्याही पोत देती हैं। तव क्या होता है ? तव अनेक पापी उनके कुचक्र में फँस जाते हैं, व्यभिचार और हत्याएँ होती हैं, धन और धर्म नष्ट होता है। किन्तु, यहाँ तो शास्त्र मूक हो जाते हैं। हम तो शास्त्रों को दोष देना नहीं चाहते। यदि सभी बातों का प्रारम्भ से और अन्त तक शास्त्र-रीति के अनुकूल ही पालन किया जाय, तब तो ऐसी दुरावस्था ही उत्पन्न न हो, किन्तु दोषी तो हैं हमारे शास्त्रों के पढ़ने वाले और उनका ऊटपटाङ्ग अर्थ एवं उपयोग करने वाले।

कैसा अन्याय हो रहा है ? सत्रह-अठारह वर्ष की सुकुमार अवस्था में, जीवन के वसन्त-काल में, जब पति-पत्नी पूर्ण आनन्द में रहते हैं, भविष्य की सुखमयी आशाओं की कल्पना किया करते हैं, जब भेद-भाव दूर होकर एक लगन लगती है, तभी क्रूर काल अकाल में ही अपने क्रूर पञ्जों से बेचारी आशापूर्ण अबला का दिव्यसुख नष्ट कर देता है, उनका जीवन-सर्वस्व हर लेता है। ऐसे समय में उनके हृदय को जो चोट पहुँचती है, उनके मन पर जो करुण-प्रभाव पड़ता है, वह अवर्णनीय है। अनुभवहीन उसे कैसे समझ सकते हैं ? वे संसार में अपने को सबसे दुखिया समझती हैं, किसी चीज़ में उनका मन नहीं लगता। दस वर्ष की

दुखी बालिका को देखकर वे सोचती हैं कि यह तो मुझसे कहीं सुखी है, कारण कि अभी उसने पति-सहवास का सुख ही नहीं देखा है तो विरह-व्यथा भी वह क्या जाने। जो विधवाएँ सन्तान वाली हैं उन्हें भी वे अपने से कहीं सुखी समझती हैं; क्योंकि सन्तान के स्वरूप में ही वे अपने स्वगाय पति की झलक देख लेती हैं, इससे कुछ तो सन्तोष हो ही जाता है। पर ये अधमरी विधवाएँ किस आशा पर रहें? उनके बराबर तो अभागा कोई नहीं है, अपने इस मानसिक कष्ट को वे प्रकट नहीं कर सकतीं। कारण यह है कि प्रत्येक व्यक्ति उनकी मर्म-व्यथा को नहीं समझ सकता। यही नहीं, कभी-कभी यदि वे कुछ कह बैठें तो उनकी बातों का विचित्र अर्थ लगा लिया जाता है, जिनके कारण उन्हें दुख और लज्जा का पात्र बनना पड़ता है। इसी से वे दिल की लगी दिल ही में रहने देती हैं। वे अपने आन्तरिक क्लेश और वैराग्य को दबाकर हँसते हुए के साथ हँस देती हैं और रोते हुए के साथ जी भर कर रो देती हैं। एक दिन जिस घर में वे पैदा हुई थीं, बड़े लाड़-प्यार से पाली गई थीं, बड़े ठाट-बाट से व्याही गई थीं, आज वही घर उन्हें पराया हो जाता है, वही घर उन्हें काटे खाता है, उसी घर में वे ग़ैरों की तरह अपना जीवन निर्वाह करती हैं। अनेकों को उसी प्रकार अपने मायके का आश्रय लेना पड़ता है, बाल-विधवाओं की तरह उनके भी भरण-पोषण की व्यवस्था नहीं होती है। निस्सन्तान होने के कारण ससुराल से भी उन्हें कुछ नहीं मिलता। बहुत हुआ तो घर में रहने और रोटी खाने

मात्र का हक़ उन्हें मिलता है। इस प्रकार प्रथम तो वे अपने सुख और सौभाग्य से हीन हो जाती हैं, दूसरे उन्हें अपमान और लाञ्छना सहनी पड़ती है; तीसरे उनके पेट भरने का कोई ठीक प्रवन्ध नहीं होता, फिर यदि होता भी है तो अपमान के टुकड़े खाने पड़ते हैं; चौथे प्रत्येक शुभ कार्य से उन्हें अलग रहना पड़ता है; पाँचवें अपने धर्म और मान की रक्षा के लिए उन्हें पद-पद पर सङ्कट का सामना करना पड़ता है; छठे उस अधकुचली अवस्था में, यौवन की उमङ्ग-तरङ्ग में उन्हें वैराग्य धारण कर, कठोर संयम और व्रत-साधन द्वारा समाज की आज्ञा माननी पड़ती है; सातवें स्वत्व और सम्मान-विहीन जीवन व्यतीत करना पड़ता है तथा और भी न जाने कितनी आपत्तियों का उन्हें सामना करना पड़ता है।

समाज के हितैषी और सुधारक बन्धुओ ! सच जानिए, विधवाओं का प्रश्न योंही टाल देने लायक नहीं है—उन्हें पद-दलित समझ कर दृष्टि से दूर कर देने योग्य नहीं है। विधवाओं का प्रश्न राष्ट्र के हिताहित से बहुत सम्बन्ध रखता है। सोचो तो सही, जिनकी संख्या तीन करोड़ हो, वे क्या योंही छोड़ देने लायक हैं ? क्या वे जीवन धारण नहीं करती हैं अथवा क्या उनका मानवी विकारों और संस्कारों से कोई सम्बन्ध नहीं है ?

सुधारकों ने इन विधवाओं के सुधार का एक ही उत्तर दिया है। उनका कथन है कि वस, पुनर्विवाह कर देना ही विधवाओं के दुख को दूर करने का उत्तम उपाय है। परन्तु, यह विचार वहुत भयङ्कर जान पड़ता है। वैधव्य के भीतर कोई वड़ा रहस्य छिपा

हुआ दिखलाई देता है। वैधव्य का उपयोग भी बड़ा है। यदि पुरुष भी एक स्त्री के मर जाने पर पुनर्विवाह का विचार न करते तो बहुत अच्छा होता। परन्तु, इस प्रकार का आन्दोलन कहीं भी, थोड़ा-सा भी होता नज़र नहीं आता। पर, ऐसे विचार से अथवा इस विचार के अमल में आ जाने से भी बाल-विधवाओं के विलाप कैसे बन्द हो जाँयगे ? हज़ारों पुरुष भी यदि स्त्रियों के मर जाने पर स्वेच्छापूर्वक पुनर्विवाह न करें तो इससे जिन्हें बलात्कारपूर्वक वैधव्य भोगना पड़ता है, उन बेचारी विधवाओं को क्या लाभ होगा ? उनके लिए कौनसा मार्ग बतलाते हैं ? विधवा को पुनर्विवाह करने से हठपूर्वक रोकना क्या कोई धर्म है ? विधवाओं को ऐसी स्थिति में पहुँचाए बिना, जिसमें कि वे अपने वैधव्य को शोभित कर सकें, क्या उनसे पवित्रता की आशा रक्खी जा सकती है ? स्मरण रखिए :—

१—विवाह एक धार्मिक क्रिया है।

२—विधवा पूज्य है। उसका तिरस्कार करना पाप है। पवित्र विधवा का दर्शन शुभ शकुन है। उसे अपशकुन कहना पाप है।

देश बन्धुओ ! उठिए, इन तीन करोड़ अबलाओं की आहों से कुछ तो पसीजिए। स्त्री-समाज के इस बहिष्कृत अङ्ग के सुधार और उत्थान की चेष्टा कीजिए। अन्यथा तुम्हारी उन्नति एक कल्पना है और तुम्हारा सुधार केवल दिखावा है।

अन्त में हम समाज के इस बहिष्कृत अङ्ग की अङ्क-सूची देकर स्थिति और भी साफ़ कर देना चाहते हैं। 'नवजीवन' में

विधवाओं के विषय में लिखते हुए मि० खण्डेलवाल ने समस्त भारत की मनुष्य-संख्या से निम्न-लिखित अङ्क दिए थे :—

उम्र	विवाहित बालिकाएँ	विधवाएँ
एक वर्ष से कम	१३,२१२	१७,०१४
१ वर्ष से २ वर्ष तक	१७,७५३	८५६
२ से ३ वर्ष तक	४९,७८७	१,८०७
३ से ४ वर्ष तक	१,३४,१०५	९,२७३
४ से ५ वर्ष तक	३,०२,४२५	१७,७०३
५ से १० वर्ष तक	२२, १९,७७८	९४,२४०
१० से १५ वर्ष तक	१,००,८७,०२४	२,२३,०३२

मुसलमानों और हिन्दुओं की अलग-अलग संख्या यह है:—

उम्र	हिन्दू	मुसलमान
० से १ वर्ष तक की	८६६	१०९
१—२ ,,	७५५	६४
२—६ ,,	१,५६४	१६६
३—४ ,,	३,९८७	५,८०९
४—५ ,,	७,६०३	१,२८१
४—५ ,,	१४,७७५	२,१३३
५—१० ,,	७७,५८५	२४,२७६
१०—१५ ,,	१,८१,५०७	३६,२६४

देखिए, कैसा दारुण दृश्य है !

भिन्न-भिन्न प्रान्तों में विधवाओं की संख्या इस प्रकार है :—

बङ्गाल १७,५८३

बिहार ३६,२७५

बम्बई	...	...	...	६,७२
मद्रास	...	...	...	५०
संयुक्त-प्रान्त	...	...	...	१७,२०
बड़ौदा	...	...	...	७८
हैदराबाद	...	...	...	६,७८

आप ही देखें, यह कैसी भयङ्कर स्थिति है। जो इन अङ्कों को पढ़ेगा वह अवश्य रोवेगा। आप ही कहें, स्त्रियों के साथ पुरुषों का यह पाशविक अत्याचार नहीं है कि एक-एक और दो-दो वर्ष की बालिकाओं के विवाह कर दिए जाते हैं और उनके विधवा होने पर सारा जीवन उन्हें क्लेश, चिन्ता और परिताप में बिताने का आदेश करते हैं। साथ ही जब ये बालिकाएँ अपनी पूर्णावस्था को प्राप्त होती हैं तो उन्हें पतित करने के लिए सैकड़ों प्रलोभन दिखाए जाते हैं। फिर उनके ज़रा इधर-उधर होते ही कलङ्क और लाञ्छन का टीका लगाकर उन्हें जाति-च्युत और समाज से बहिष्कृत कर देते हैं। हा हन्त ! स्त्रियों को स्वयँ ही जाल में फँसाएँ और स्वयँ ही उन्हें फँस जाने का अपराधी बनाएँ। यह पशु-लीला, यह राक्षसी अत्याचार भारतीय स्त्रियाँ कहाँ तक सहती रहेंगी। हाय ! उनकी कथा कौन सुनेगा ? किसी ने सच ही तो कहा है :—

सुनेगा कौन दर्दे दिल की दर्दनाक कथा,
कि जिसकी आह से कलेजा सङ्ग फटता है ॥

स्त्रियों के दुख

स्त्रियों के अगणित दुखों की प्रथमतः पुरुषों को कल्पना ही नहीं होती और जो जानते भी हैं वे जानबूझ कर उस ओर ध्यान ही नहीं देते, या यों कहिए कि उन दुखों को समझ सकने की पुरुषों में योग्यता ही नहीं है। जो लोग स्त्रियों के बड़े हितैषी बनते हैं, उन्हें भी स्त्रियों की वास्तविक दुख-दशा का ज्ञान नहीं होता। न जाने स्त्रियों के भाग्य में क्या बदा है! क्या अक्षय नरक-यातना भोगने के लिए ही ईश्वर ने स्त्रियों की रचना की है? स्त्रियों पर जो अन्याय होते हैं, उनके प्रति जैसी क्रूरता, दुष्टता व पक्षपात आदि व्यवहार काम में लाए जाते हैं, उन्हें देखकर तो चित्त व्याकुल हो जाता है। स्त्रियों की दुखद अवस्था देखकर, अत्याचारों की अग्नि से उनके हृदय जलते देखकर, आठ-आठ आँसू बहाकर, अपने शरीर का खून सुखाते देखकर कहना पड़ता है कि संसार में ईश्वर का अस्तित्व ही नहीं है। अर्थात्, मनुष्य जो गुण ईश्वर में मानते हैं, उनका उसमें लेश नहीं है। यदि संसार का कोई कर्ता है तो उसे अन्याय करने, दुख देने और सताने में बड़ा मजा आता होगा! ऐसे दुष्ट ईश्वर को मानने की अपेक्षा उसका न मानना ही अच्छा है। सृष्टि के नियम

प्रकार से घातक हैं। उनसे छूटने के लिए भरसक प्रयत्न कर अन्त पञ्चतत्व को प्राप्त हो जाना, जीवन के समस्त दुखों का परिणाम इ अन्तिम घोर दुख के रूप में प्रकट कर देना भला स्त्रियों के लि इसके अतिरिक्त और भी कोई काम है ?

सृष्टि के स्वाभाविक अन्यायों को दूर कर उत्कृष्ट मनुष्य श्रे न्याय को स्थापित करना चाहते हैं। जो मनुष्य रूपी पशु हैं, वे इ प्रयत्न के लिए उद्यत नहीं हैं और दुर्भाग्य से प्रायः सभी मनु इस कोटि में आ जाते हैं। देखिए, प्रो० हक्सले ने अपनी पुस्त Evolution and Ethics में क्या लिखा है :—

"The practice of that which is ethically best—what w call goodness or virtue—involves a course of conduct *which i all respects is opposed to* that which leads to success in th comic struggle for existence. In place of ruthless self-assertio it demands self-restraint ; in place of thrusting aside or treadin down all competitors, it requires that the individual shal not merely respect, but shall help his fellows. Its influence i directed, not so much to the survival of the fittest as to th fitting of as many as possible to survive. It repudiates th gladiatorial theory of existence..................Whateve difference of opinion may exist among experts there is genera consensus that the ape and tiger methods of struggle for existenc are not reconcilable with sound ethical principles.............. The ways of the cosmos afford no sanction for morality."

पुरुषों को पशु-कोटि में गिनने का कारण यही है कि पशु के
वहार में हम लोग न्याय-अन्याय, उचित-अनुचित आदि का
द-विभेद नहीं करते। सृष्टि ने उन्हें पशु-बुद्धि ही दी है और कुछ
हीं दिया। इसी बुद्धि की सहायता से वे जो चाहे करते हैं।
ह सृष्टि का न्याय मनुष्य की भाषा में अन्याय समझा जाता
। शेर के पञ्जे में जो फँस जाए, शेर उसी को खा लेता है, बड़ी
क्खियाँ छोटी मक्खियों को हज़म कर जाती हैं; कुत्ता विल्ली के
चों को फाड़ खाता है; और इसी प्रकार अन्यान्य बलवान पशु अपने
निम्न-कोटि के प्राणियों को आहार बनाते हैं। यही सृष्टि के
याय के उदाहरण हैं। इस न्याय को, इस नियम को, अकुण्ठित
ीति से प्रचलित रहने के लिए ही सृष्टि-रचना-क्रम ऐसा किया गया
कि कुछ प्राणी दुबले हैं तो कुछ बलवान; कुछ भोले हैं तो कुछ
कुटिलतम; कुछ को तो आत्म-रक्षा की एक भी साधना उपलब्ध
हीं और कुछ तीक्ष्ण नख, जबड़ा शक्ति आदि अनेक साधनों से
सम्पन्न हैं। बलवान जीव दुर्बल जीवों पर स्वेच्छाचार करें, यही
पशु-बुद्धि है और इसी के कारण पशु, पशु कहलाता है। इसी से
जब तक मनुष्य-प्राणी भी दुर्बल प्राणियों पर अपना जीवन-क्रम
स्थिर रखता है, जब तक दुर्बल और निस्सहाय मनुष्य ऐसे बलवान
मनुष्यों के आखेट बनते हैं, तब तक वे मनुष्य भी पशु हैं, यह न्यायतः
सिद्ध है। दुर्बल मरे और बलवान जिए, इस मनुष्य-प्रणीत नियम
को 'जीवन-संग्राम' आदि नाम देकर पुरुषों ने इसका एक शास्त्र
ही रच डाला है। वे कहते हैं कि इस शास्त्र को मानो, इसी से

मनुष्य-जाति का उद्धार होगा, इस प्रकार पुरुष संसार को पशु-धर्म का उपदेश दे रहे हैं। मनुष्यों में जो थोड़ा-बहुत मनुष्यत्व आ गया है, उसे भी खो बैठने की व दुर्बल प्राणियों पर समस्त दुखों का भार पटक देने की यह कैसी चोखी रीति है। पशु-धर्म की श्रेष्ठता का वर्णन करने वाले स्वयँ भी उत्कृष्ट कोटि के पशु होने चाहिए।

सृष्टि का यह पाशविक नियम मिटाकर मनुष्य-धर्म की स्थापना करना ही शुद्ध और निर्मल हृदय की महानता है। आप ही बतलाइए, मनुष्य बड़ा शूरवीर होने पर भी क्यों स्त्रियों पर हाथ नहीं उठाना चाहता? क्यों वह बच्चों से, अपाहिजों से और वृद्धों से नहीं लड़ता? इस बुद्धि में उसे क्यों श्रेष्ठता जान पड़ती है? यह सृष्टि के नियम के विरुद्ध है, इसी से। इसी प्रकार अनेक मनुष्य स्वयँ विद्वान-शिरोमणि होने पर भी अपने माता-पिता की आज्ञा क्यों मानते हैं? उनके सम्मुख क्यों नम्र हो जाते हैं? सृष्टि का नियम इसके विरुद्ध है, इसी से। फिर भी माता-पिता को भूखों मार कर खुद मौज उड़ाने वाले अनेक पशु मौजूद हैं ही। हीन, अज्ञान और पशु-तुल्य मनुष्य को भी दासता में न रखने की कल्पना कहाँ से उत्पन्न हुई? सृष्टि-क्रम से उत्पन्न यह व्यापार बलवान् मनुष्यों के मनुष्यत्व को शोभा नहीं देता, इसी से। इसी प्रकार और भी अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं। इस विवेचना से यह साधारण नियम समझ में आता है कि सृष्टि-क्रम के अनुसार चलने में पशुत्व और उसके विरुद्ध आचरण से मनुष्यत्व की प्राप्ति होती है। मानव-

समाज में बल का जितना अधिक उपयोग होगा, उतना ही दासत्व, क्रूरत्व और पशुत्व बढ़ेगा तथा मानव-समाज जितना ही दुर्बलों के वशीभूत होगा, उतना ही उसमें मनुष्यत्व आता जायगा। यह मनुष्यता का गुण अत्यन्त दुर्लभ है। जो बलवान कभी दुर्बल के आगे नम्र हो जाता है तो वह सोचता है कि अहा! आज कितना उपकार किया। लेकिन, चट हीं वे इस उपकार का बदला और अनेकों जुल्म ढाकर ले लेते हैं, अतः यदि बलवान् एकाध बार दुर्बलों के सम्मुख नम्रता धारण करलें तो यह समझ लेना ठीक नहीं कि दुर्बलों के सब दुख दूर होगए। अस्तु।

अब स्त्रियों को इस अवस्था के अनुरूप देखिए। लड़की चाहे वह अल्पवयी हो अथवा प्रौढ़ा, विवाह होते ही वह पुरुष की दासी बन जाती है। फिर पुरुष उसे जिस तरह चलाए उसी तरह चलना पड़ता है। पुरुष यदि उसके मन की एक बात करदे तो पुरुष के मन की उसे दस बातें करनी चाहिए। लड़की का विवाह करते समय स्वाभाविक प्रवृत्ति यही होती है कि उससे श्रेष्ठ पति उसे मिलना चाहिए, अर्थात् तब तो वह अवश्य उसकी दासी बन गई। यह दासता जन्म भर के लिए होती है, मृत्यु होने पर ही कहीं उससे छुटकारा मिल सकता है। पुरुष सोचता है कि मैं अपनी सारी कमाई गृह-स्वामिनी के पल्ले पटक देता हूँ, इससे जो कुटुम्ब बढ़ता है उसका पालन करता हूँ, वस्त्रालङ्कार से उसे सुशोभित करता हूँ, इससे अधिक और क्या किया जा सकता है? उसे यह कल्पना ही नहीं होती कि उससे अधिक वह यह कर

सकता है कि उसे जन्म की दासता से मुक्त करदे। गृह-स्वामिनी का अर्थ क्या है, इसे कौन समझता है? कुटुम्ब के क्षुद्र काम तो स्त्रियाँ करें और महत्व के काम पुरुष करें। सुधरे हुए देशों में भी यही ढङ्ग पाया जाता है, जो काम स्त्रियों को सौंप देने से पुरुषों की स्वतन्त्रता नष्ट होती है, वे सब काम पुरुषों के आधीन हैं। बाक़ी काम स्त्रियाँ ख़ुशी से करें। स्त्रियाँ घर सम्भालें और कुटुम्ब बढ़ाएँ, यह यद्यपि कह देना बड़ा सरल है; किन्तु इसका करना बड़ा कठिन है।

सुधारक प्रायः यही सोचते हैं कि चाहे जब, अर्थात् कभी न कभी स्त्रियों का विवाह कर डालना चाहिए, यह सृष्टि का क्रम है। फिर भला क्यों अनुचित होने लगा? क्या आप नहीं सोचते कि स्त्रियों की विवाहित अवस्था बड़ी सुखमय होती है? यह अवस्था निम्न-कोटि की स्त्रियों की भले हो, किन्तु उच्च श्रेणी की स्त्रियों के लिए यह बात नहीं है। विवाहित स्त्रियाँ गृह-कार्य में निरन्तर व्यग्र रहें; रसोई बनाएँ, झाड़ू लगाएँ, साफ़ करें, बर्तन माँजें, मोरियाँ धोएँ, दरें, छानें, बिनें, पीसें, बच्चे सम्भालें, उनका गू-मूत धोएँ, बीमारी में उनकी देख-रेख रक्खें और इन सबके अतिरिक्त पति की मर्ज़ी साधने के लिए सब कुछ करें। देखा जाय तो इतना काम करने वाला पुरुष-नौकर सारी ज़िन्दगी की कमाई ख़र्च कर देने पर भी नहीं मिल सकता। इसी से तो विवाह किया जाता है। यदि विवाह न हो तो इन कामों को करने के लिए माँ, बहिन, बहू, काकी, मामी आदि कोई न कोई स्त्री तो होनी ही चाहिए। दुर्बल

प्राणियों को इस प्रकार दासत्व में फँसाने का यह सृष्टि-क्रम क्या कुछ कम प्रशंसनीय है ? तभी तो कम योग्यता की स्त्री से विवाह किया जाता है और फिर थोड़ी सी उन्नति करने व योग्यता बढ़ाने का क्रम प्रचलित कर स्त्रियों पर महान उपकार किया जाता है, स्त्री-समाज की उन्नति, सुधार और सेवा की जाती है। यह बात सत्य है कि पुरुष ज्यों-ज्यों धनवान होता जाता है, त्यों-त्यों उपर्युक्त म कुछ कम होते जाते हैं। परन्तु, यह होने पर भी पुरुष की ज्रीं साधने और आजन्म उसकी गुलामी करने की प्रवृत्ति कहाँ र होती है? धनाढ्य व्यक्ति के यहाँ स्त्री एक अलङ्कार (आभूषण) कर रहती है। यह आभूषण, आभूषण की तरह ही रहना चाहिए, प्रर्थात्, उसे अपनी व्यक्तिगत स्वाधीनता खो देनी चाहिए।

कोई पुरुष यह नहीं कहता कि मुझे एक उत्तम दासी की आवश्यकता है, अतः मैं विवाह करता हूँ। यह भी मान लिया जाय कि प्रेम का प्रसार करने के लिए, वंश बढ़ाने के लिए और पुत्र-सुख के लिए विवाह करना चाहिए तो भी कितने पुत्र उत्पन्न करने चाहिए, इसका भी कोई बन्धन है ! अपनी स्थिति देखते नहीं; सन्तान का भविष्य देखते नहीं; स्त्री की दुर्दशा देखते नहीं; बस, स्त्री जब तक जीवित रहती है, तब तक कामान्ध होकर आचरण करते हैं, इससे अधिक क्रूरता और क्या होगी ! अल्पवयस्क बालिकाओं को छोड़कर बड़ी उम्र की स्त्रियों में कहीं सौन्दर्य पाया जाता है ? स्त्री के बीस-बाइस वर्ष की होते न होते तीन-चार बच्चों की पूँछ उसके पीछे लग जाती है। प्रत्येक प्रसूति-काल में शक्ति

कम होती जाती है, मुख फीका पड़ जाता है, अङ्ग मोटा होता जात है, माथा चपटा हो जाता है, गाल वैठ जाते हैं और बुढ़ापा नज़ आने लगता है; बच्चों के कष्ट से चित्त सदैव चिन्तित औ दुखी रहता है। ऐसी स्थिति में जब आप अबला को देखते हैं तं क्या कभी भी आपके चित्त में यह विचार उत्पन्न होता है कि इस दुर्दशा का कारण आपकी अत्यधिक काम-वासना ही है! कोई भं निष्पक्ष-व्यक्ति स्त्रियों की यह क्षीण अवस्था देखकर यह कहे बिन न रहेगा कि यह सब पुरुषों के ज़ुल्म, अत्याचार, दुराग्रह, बलात्कार अविचार और कामान्धता का ही फल है। गर्भ-धारण करते समय दुख, प्रसूति-काल में दुख, प्रसूति के उपरान्त दुख, बच्चों की देखभाल में दुख; बस, दुख ही दुख में उनका शरीर और स्वास्थ्य नष्ट हो जाता है। इन कष्टों के मारे उन्हें अपना शरीर सुधारने का अवसर ही नहीं मिलता। बच्चे के बाद बच्चा होता जाता है और कष्ट के ऊपर कष्ट बढ़ता जाता है। अठारह से लेकर तीस वर्ष पर्यन्त स्त्रियों की मृत्यु-संख्या और उसके कारणों की जाँच की जाय तो जान पड़ेगा कि पुरुष ही उन अभागिनी स्त्रियों की हत्या के भागी हैं, वे ही इस पाप के प्रणेता और प्रवर्धक हैं।

पुरुषों का यह घोर अविचार वैद्यकशास्त्र के तनिक भी अनुकूल है? बड़े-बड़े डॉक्टरों की भी इस विषय में सलाह लीजिए। परन्तु, उधर आपका ध्यान ही क्यों जायगा? क्या सुधारक और क्या ग़ैर-सुधारक सब एक ही माला की गुरियां हैं, जो स्त्रियाँ सौभाग्य अवस्था में इतनी अशक्त और निस्तेज रहती हैं, उन्हें

ईश्वरीय कोप से जब वैधव्य प्राप्त होता है तो थोड़े ही दिनों में उसके मुख पर अपूर्व लावण्य छा जाता है। उनका मुख-मण्डल सतेज, शरीर बलवान और फुर्तीला हो जाता है और तब उनमें मङ्ग और मद छा जाता है। जितना, विधवाएँ जीती हैं, उतना सौभाग्यवती नहीं जीतीं। कारण स्पष्ट है। परन्तु, इससे क्या प्रकट होता है? कौनसा कर्त्तव्य स्पष्ट होता है? इन कामान्ध, क्रूर पुरुषों की समझ में कभी भी यह बात आती है? वे तो विधवाओं की यह अवस्था देखकर चट कह देते हैं कि इनका पुनर्विवाह कर डालो, क्योंकि वे तरुण विधवा का यह तेज, स्फूर्ति और आरोग्य नहीं देख सकते। इधर उसी उम्र की सुहागिनें अशक्त, निस्तेज अल्पायुषी और निस्सौन्दर्य बना देने वाले विवाह की हित-चिन्तना किया करें, यह व्यापार सिवा पशु-तुल्य पुरुषों के और किसे शोभा दे सकता है?

विवाह के लिए अवधि होनी चाहिए, उस अवधि में स्त्रियों के सौन्दर्य या उनकी निरोगता में बाधा न पहुँचे, ऐसा पुरुषों का व्यवहार होना चाहिए। फिर उसके निर्वाह की सुविधा कर उसे आजन्म दासत्व से मुक्त कर देना चाहिए, उसके सम्मुख मातृत्व का महान् कर्त्तव्य रखना चाहिए। परन्तु, हम देखते हैं कि कभी स्वप्न में भी पुरुष इसका विचार नहीं करते। दूसरे का दुख तो उन्हें कुछ जान ही नहीं पड़ता।

सृष्टि में कैसा भयङ्कर अन्याय हो रहा है, इसकी कल्पना किसे है? पुरुष-धर्म के अनुसार और अपनी प्रकृति के अनुकूल पुरुष जो

कुछ करता है, वह सब उसके आत्म-सुख का कारण होता है। स्त्री-धर्म के अनुसार और स्त्री-प्रकृति के अनुकूल स्त्री जो कुछ करती है, वह सब उसके दुख, हानि और पराधीनता का कारण होता है। कैसा विचित्र अन्तर है !

अपनी प्रेम-प्रकृति के कारण स्त्री, पति-पुत्र का आश्रय लेती है और इसी से उसे आजन्म दासता भोगनी पड़ती है। स्त्री का प्रेम इतना स्वाभाविक और उसकी प्रवृत्ति इतनी अनिवार्य होती है कि पति-पुत्र के प्रति एक बार प्रेम उत्पन्न होते ही उसके सामने वह अपने सुख, आरोग्यता, सम्पत्ति, स्वाधीनता, जीवन आदि किसी की भी तिलमात्र परवाह नहीं करती। क्या पुरुष कभी इसका अनुभव करते हैं ?

रति-सुख की स्वाभाविक लालसा के कारण स्त्री-पुरुष परस्पर मोहित होते हैं; किन्तु उसका परिणाम स्त्री के लिए ही अधिक कष्टमय होता है। उसे स्वास्थ्य और सुख खो देना पड़ता है। पुरुष तो कर धर कर अलग हो जाता है।

बालक उत्पन्न होने की स्वाभाविक इच्छा स्त्री-हृदय में स्थित रहती है। परन्तु, बच्चा पैदा होकर क्या करता है ? जब तक वह बच्चा रहता है, तब तक माँ की आँतें चूसता है, बड़ा होने पर सिरज़ोर हो जाता है और पुरुष हो जाने पर जन्म भर माँ, बहिन, लड़की आदि समस्त स्त्री-जाति को दासत्व में रख कर अपने सुख-वैभव की वृद्धि करता है। सच है, पुरुषों को तो यही करना चाहिए।

स्त्री का अन्तःकरण व्यभिचार से स्वभावतः ही दूर भागता

। परन्तु, पुरुषों के दुष्प्रयत्न से यदि उनका पैर इधर-उधर पड़ गया
के उसकी मौत आ जाती है। फिर कैसी उसकी बेइज़्ज़ती होती
! स्मरण रखिए, एक हाथ से ताली कभी नहीं बजती। व्यभिचारी
रुष का अपराध भी स्त्री के समान ही होता है, किन्तु उसे कौन
छता है? उलटे विषय-लोलुप पुरुषों के आराम के लिए सब देशों
, सब धर्मों में वेश्याएँ रक्खी जाती हैं और उनके साथ प्रसङ्ग
चित और लाभदायक मान लिया जाता है। विवाहित और
ाविवाहित किम्वा विधुर पुरुषों में तथा विवाहित एवँ विधवा स्त्रियों
क्रमशः जो व्यभिचार होता है, वह समान माना जाना चाहिए,
रन्तु, वेश्या-गमन से पुरुष अपने व्यभिचार की वृद्धि करते हैं और
्रयों से भी अधिक दुराचारी हो जाते हैं। किन्तु, इस ओर कौन
ान देता है? स्त्रियों का व्यभिचार दूर करने के लिए तो उनके
ीघ्र-शीघ्र और पुनः पुनः विवाह की माँग की जाती है, परन्तु
रुष भले ही वेश्या-गमन करें। हाँ, उलटे उन्हें कुछ रोग इत्यादि
हो, इसके लिए वेश्याओं का क़ानून बनाया जाता है और पुरुषों
ा स्वास्थ्य सम्भाला जाता है। सच है, 'जिसकी लाठी उसकी
स' वाली उक्ति बहुत ठीक है। अपनी ही रोटी घी से चुपड़ने
ी सबको सूझती है!

पुरुषों को अद्वितीय पराक्रम करना पड़ता है, उन्हें
ा-पर्य्यटन करना पड़ता है, धर्म-सञ्चय करना पड़ता है, नवीन
ाविष्कार करने पड़ते हैं तथा और भी अनेक महत्वपूर्ण कार्य
रने पड़ते हैं, इसी से उनके अविवाहित रहने की सुविधा कर तथा

उनके कामान्धता के दिन सुख से व्यतीत करने के लिए वेश्याओं क
प्रबन्ध किया जाता है। स्त्रियों को तो महत्वाकांक्षा से कोई मतल
ही नहीं, अतः उनकी सुविधाओं की तो जरूरत ही क्या
व्यभिचार की कल्पनामात्र से ही स्त्री पतित हो जाती है। फि
सुधारक महाशय क्या चिल्लाते हैं, "भाई, विवाह कर, पुनः पुन
विवाह कर!" वाह वाह!

इस प्रकार स्त्रियों के दुख और उनकी दुरावस्था का अन्त नह
है। सारांश यही है कि सृष्टि-निर्मित क्रम के अनुसार स्त्री जो कुछ
कार्य करती है, उससे पुरुषों का ही लाभ होता है। दुख
दीनता, चिन्ता, व्याधि, पराधीनता आदि संसार की समस्त अनि
बातों को अनुभव करने के लिए ही स्त्रियों का जन्म हुआ दीख
पड़ता है। इसी प्रकार अनिष्ट परम्परा भोगने के लिए ही यदि
स्त्रियों का जन्म हुआ है तो उन्हें इतना सौन्दर्य, इतनी कोमलता
और ऐसे कोमल अन्तःकरण क्यों दिए थे? परन्तु, सृष्टि का तो
न्याय ही उलटा है! ऐसी विलक्षण रचना के अतिरिक्त उसकी
क्रूरता कैसे प्रकट होती? सृष्टि के अणु-अणु में दुष्ट भाव भरा है।
यह अन्याय स्त्रियाँ कब तक सहन करती रहेंगी? कब तक वे इस
अन्याय-पाश में बँधी रहेंगी? जन्म भर मान-हानि और कठोर ताप
सहन करने की अपेक्षा स्त्री-जाति संसार से नष्ट हो जाय, यही
अच्छा! इस रौरव-वास का एक बार अन्त ही हो जाय तो अच्छा!
भूगर्भ-शास्त्र को पढ़ने से प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में
जीवन-संग्राम में अनेक प्राणियों का नाश हो गया। अतः यदि इस

अबला-जाति का भी उसी प्रकार नाश हो जाय तो इसमें बुरा लगने की कौन सी बात है? स्त्रियों के—बेचारी दुखी अबलाओं के—हृदय से पूछिए। वे तो चाहती हैं कि जितनी जल्दी संसार से उनका अस्तित्व मिट जाय, उतना ही अच्छा; फिर उनके कारण अन्त में सारी पुरुष-जाति ही क्यों न नष्ट हो जाय? यदि नाहर का पेट भरने के लिए ही बकरे की उत्पत्ति हुई है तो उसके नाश हो जाने में या उसके न होने में भी कोई हानि नहीं है। फिर उसके कारण यदि नाहर भी भूखों मर जाय तो कौन सी चिन्ता की बात है? यही न्याय मनुष्य-जाति के लिए भी है। मनुष्य-संख्या का आधा अङ्ग अर्थात्, स्त्री-जाति तो निरन्तर दुख भोगा करे और शेष अर्धाङ्ग अर्थात्, पुरुष-जाति सुख का अनुभव किया करे। जहाँ सृष्टि का यही न्याय हो, वहाँ यह पशु-तुल्य जाति होनी ही क्यों चाहिए? स्त्रियाँ दुर्बल हैं, ईश्वर भी उनका हितैषी नहीं जान पड़ता; सृष्टि-क्रम उनके प्रतिकूल है, कोख से जन्मा हुआ बालक भी उनका नहीं होता, सब उनके जन्म के वैरी हैं—ऐसी अवस्था में स्त्रियाँ क्यों जीवित रहें, यह समझ में नहीं आता!

स्त्रियों का ह्रास

यों के प्रति किए गए अन्यायों और अत्याचारों का सम्मिलित परिणाम यह हुआ है कि आखिर स्त्रियों का ह्रास प्रारम्भ हो गया है। वङ्गला "प्रवासी" के सुयोग्य सम्पादक ने सन् १९१५ ई० की सरकारी रिपोर्ट से संख्याएँ देकर प्रकट किया है कि इस देश में आत्म-हत्याएँ अन्य देशों की अपेक्षा वहुत अधिक होती हैं और उनमें भी विशेषतः स्त्रियों में तो यह रोग और भी भयङ्कररूप से वढ़ रहा है। नीचे कुछ प्रदेशों के आत्म-घाती स्त्री-पुरुषों की संख्या देखिए :—

प्रान्त	कुल जन-संख्या	आत्मघाती पुरुष	आत्मघातिनी स्त्री
मध्यप्रदेश और वरार	१,३९,१६,३०८	४४१	५२३
विहार-उड़ीसा	३,४४,९०,०३४	६०५	१,१०५
संयुक्त-प्रान्त	४,६८,२०,५५६	६६४	१,७६९
वङ्गाल	५,५५,२९,२८७	१,४५२	२,०८१

सर्वत्र ही पुरुषों की अपेक्षा आत्म-घातिनी स्त्रियों की संख्या अधिक है। मध्यप्रदेश और बरार में वह लगभग सवाई, बिहार-उड़ीसा में लगभग दूनी, संयुक्त-प्रान्त में ढाई गुनी से अधिक और बङ्गाल में डेढ़ गुनी से कुछ कम है। मनुष्य को प्राण सबसे प्यारे हैं। बिना असह्य कष्ट के कोई सहज ही प्राण नहीं देना चाहता। देश की अधिक आत्म-हत्या इस बात का निश्चित प्रमाण है कि हमारे कष्ट अन्य देशों की अपेक्षा बहुत बढ़े हुए हैं और उसमें भी हमारी स्त्रियाँ बहुत ही अधिक दुखिनी हैं। यह निश्चय है कि हमारी सामाजिक व्यवस्थाएँ और रूढ़ियाँ स्त्री-जाति के लिए सबसे अधिक कष्ट-प्रद हैं और इसी कारण वे सबसे अधिक आत्म-हत्या करती हैं। उनके गुप्त और गूँगे कष्ट आत्म-रक्षा का इससे अच्छा और दूसरा कोई सरल उपाय नहीं बतला सकते। एक तो स्त्रियों की संख्या हमारे यहाँ यों ही कम है और फिर उनमें भी आत्म-हत्याओं की वृद्धि हो रही है!

मनुष्य-गणना की रिपोर्ट का सूक्ष्मावलोकन करने से जान पड़ेगा कि हिन्दू-समाज की तरुण-बालिकाओं की, विशेषतः १५ से २० वर्ष तक की बालाओं की स्थिति दिनोंदिन बिगड़ती जा रही है। इस समाज की कतिपय ऊँची जातियों की वस्तु-स्थिति पर विचार करने से यह विश्वास दृढ़ हो जाता है और मातृ-पद को पहुँचने वाली कुमारिकाओं का ह्रास होते देख मन उद्विग्न हो जाता है। यह ह्रास गत २५-३० वर्षों से बराबर हो रहा है। इस निकृष्टावस्था के किस समाज में कौन से कारण हैं, उनका साङ्गोपा-

विचार कर प्रत्येक समाज-सेवक का कर्त्तव्य होगा कि उनके निवारण का उपाय करे। आजकल का रहने का ख़र्च, शहर की वन्द हवा और निवास-स्थान का शरीर तथा मन पर होने वाला कुपरिणाम, रोगों की प्रवलता, परिवर्तित स्थिति की विवाह-मर्यादा से उत्पन्न हुई विषमता आदि वातें थोड़े वहुत प्रमाण में इस ह्रास के कारण जरूर हैं।

संक्षेप में ये तीन प्रकार के कारण हो सकते हैं—(१) दारिद्र-जनित अथवा साम्पत्तिक, (२) स्थानीय अथवा तद्देशीय और (३) सामाजिक। इन पंक्तियों के लेखक का यह अनुमान है कि प्रचलित वैवाहिक पद्धति में वधू-वर की अवस्था-भेद के कारण उत्पन्न हुई विषमता ही १५ से २० वर्ष तक की वालिकाओं के ह्रास का मूल कारण है। मुसलमान-समाज और हिन्दू-समाज की इसी श्रेणी की स्त्रियों से तुलना करने पर हमारा यह अनुमान असत्य न ठहरेगा। पहले समाज की कुमारिकाओं के विवाह प्रौढ़ अवस्था में होने के कारण, उनके शरीर का उचित विस्तार होता है। विवाह-विवेचना से उत्पन्न होने वाले मानसिक क्लेशों से इस वर्ग की वालिकाओं का संसर्ग नहीं होता। उपवर-कन्या के विवाह-सम्वन्धी रात-दिन घर-वाहर होने वाली चर्चा से उसके मन में वैवाहिक चिन्ता से उत्पन्न होने वाला परिणाम उलटा होता है। शरीर-शास्त्र की दृष्टि से इन दोनों समाजों में देखा जाने वाला यह भेद कुछ कम महत्व का नहीं है। एँग्लो-इण्डियन, पारसी, मुसलमान, और हिन्दू-समाजों की

१२ से १५ और १५ से २० वर्ष तक की कन्याओं की तुलना करने पर हिन्दू-समाज का नम्बर अन्त में आता है। यह भी विशेष विचारणीय है। हमारे अनेक बन्धुओं के मत से सामाजिक सुधार के पहिले राजकीय सुधार आवश्यक है। पर वे यह नहीं सोचते कि हमारा आधा अङ्ग किस प्रकार दिनोंदिन क्षीण-बल और क्षीणायु होता जा रहा है। पहिले उसकी दशा का सुधार करो, तब आगे पैर बढ़ाना। सुधार घर से आरम्भ होता है और जिसके कारण गृह, गृह कहलाता है, उस गृहिणी की यह दुरावस्था अवश्य ही शोचनीय है।

यहाँ हम सन् १८९१ ई० में प्रकाशित रिपोर्ट के आधार पर इँगलैण्ड और भारतवर्ष दोनों की सामाजिक परिस्थिति का सूक्ष्म विचार करेंगे। वहाँ १-४, ५-९, १०-१४ और ५५-५९ वर्ष तक के पुरुषों की संख्या आरम्भ से अन्त तक एक विविक्षित रूप से न्यून रहती है। ३०-३४ और ३५-३९ इन दो वर्गों की संख्या के अन्तर से कुछ अधिक और २४-२९ व ३०-३४ के अन्तर से कुछ कम परिमाण में, ६०-६४ वा इससे अधिक अवस्था के वर्ग में होता है। स्त्रियों की संख्या में आरम्भ से अन्त तक उपर्युक्त रूप से ही अन्तर होता है। पर, यहाँ इस प्रकार का कोई नियम लागू नहीं होता। इँगलैण्ड और वेल्स, फ्रान्स, जर्मनी में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ अधिक संख्या में होती हैं। सन् १८८१ ई० में प्रति सहस्र पुरुषों के पीछे १०५५, १००५, १०४३ स्त्रियाँ क्रम से थीं। इस देश में उनकी संख्या ९३१ थी और

आज ९०० से भी कम है। पञ्जाब, बम्बई, मद्रास, अवध आदि सब प्रान्तों में सन् १८८१ ई० में १०-१४ वर्ष की बालिकाओं की संख्या कम थी। इसके अतिरिक्त विगत दो साल की रिपोर्टों से जान पड़ता है कि गत ३० वर्षों में भी यह संख्या इन प्रान्तों में कम ही रही और १५-२० वर्ष की बालिकाओं की संख्या तो पहले से भी कम होगई।

तत्कालीन बम्बई-प्रान्त के सेन्सस-कमिश्नर मि० ड्यू का मत है कि यूरोप में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की संख्या-वृद्धि का कारण वहाँ परस्पर स्त्री-पुरुषों के उद्योग-धन्धों में पाया जाने वाला भेद-भाव तथा वहाँ की स्त्रियों में पुरुषों की अपेक्षा अधिक परिमाण में पाया जाने वाला जोर (Vitality) ही है। वहाँ पुरुषों की मृत्यु-संख्या, प्रत्येक वर्ष स्त्रियों की मृत्यु-संख्या से अधिक होती है। दस सहस्र पुरुषों और उतनी ही स्त्रियों की एक ही संख्या भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में क़ायम नहीं रहती। कारण यह है कि भिन्न अवस्था में उनकी आयु नष्ट हो जाती है अथवा अवस्था के क्रमानुसार प्रत्येक बार की मनुष्य-गणना में उनकी संख्या उतनी ही नहीं रह सकती। कारण यह है कि प्रजजन-परिमाण प्रतिवर्ष बदलता है और इसी से भिन्न-भिन्न वर्षों में उनकी संख्या न्यूनाधिक हो जाती है। परन्तु, आयु के प्रत्येक वर्ष में प्रत्येक मनुष्य-गणना के अवसर पर, कुछ विशेष कारण न होने पर साधारणतः स्त्री-पुरुषों की संख्या एक ही होनी चाहिए। किन्तु, यहाँ की वस्तु-स्थिति बिलकुल भिन्न है। यहाँ प्रति सहस्र

पुरुषों की मृत्यु पीछे स्त्रियों की मृत्यु-संख्या सन् १९११ के अङ्कों से ज्ञात होगी :—

आयु		मृत्यु-संख्या
०— १	वर्ष की	८६६
१— ५	,,	९८५
५—१०	,,	१,००२
१०—१५	,,	९३९
१५—२०	,,	१,०२५
२०—३०	,,	१,०६१
३०—४०	,,	८७५
४०—५०	,,	७६१
५०—६०	,,	७७२
६० और इसके आगे		१,०५५

उपरोक्त प्रमाण से यह दीख पड़ता है कि कन्या के जन्म से लेकर एक वर्ष तक उनकी मृत्यु की संख्या बालकों से कम होती है। फिर पाँच वर्ष में वह बालकों से अधिक हो जाती है। फिर १०-२० तक उतना ही अथवा उससे कुछ अधिक होता है। ३० से फिर कम हो जाती है। सन् १९०१ ई० की मनुष्य-गणना के अनुसार गत वर्षों में १०-२० वर्ष की बालिकाओं की संख्या घट गई है। विगत १९२१ ई० की गणना में भी स्त्रियों के ह्रास की अधिकता पाई जाती है। अनेक प्रान्तों में तो यह संख्या इतनी कम हो गई है कि आस-पास के प्रदेशों से स्त्रियों को वहाँ लाने के उदाहरण

जाते हैं। तुलना करने पर जान पड़ा है कि हिन्दू-समाज युवावस्था को प्राप्त होने वाली स्त्रियों की संख्या बहुत कम है रहीं १५ से ४० वर्ष तक की स्त्रियाँ, सो उनकी संख्या तो साधारणतया सन्तोषजनक है। किन्तु, यह सन्तोष केवल अन्य वर्ग की स्त्रियों के लिए है, हिन्दू-समाज के लिए नहीं। हिन्दू-समाज में तो इस अवस्था का स्त्री-वर्ग घट ही गया है। मुसलमान-समाज में इन स्त्रियों की स्थिति अत्यन्त सन्तोषजनक है। साथ ही हिन्दू-समाज की अपेक्षा वृद्धि-क्रम पर है। सन् १९११ ई० के सेन्सस-कमिश्नर मेक्गीगर साहब ने इस वृद्धि का कारण यह लिखा है :—

"Number of Potential mothers have increased most rapidly among the Musalmans than among the Hindus."

अर्थात्, मातृ-पद के योग्य बड़ी लड़कियों की संख्या हिन्दुओं की अपेक्षा मुसलमानों में बड़ी शीघ्रता से बढ़ी है। इन लोगों में कन्याओं का विवाह देर से होता है, अतः यह कथन ठीक है जान पड़ता है। अस्तु।

स्त्रियों के इस क्रमागत ह्रास के कारणों का मेक्गीगर साहब ने बहुत कुछ विचार किया है। उन्होंने अपनी रिपोर्ट में नीचे लिखे कारण बतलाए हैं:—

१—कन्याओं की बाल-हत्या (Female Infanticide) की चाल राजपूताने में थोड़ी बहुत शेष है।

२—छोटी बालिकाओं के विषय में अनावस्था।

३—बाल-विवाह और उसके कारण छोटी अवस्था में सन्तानोत्पत्ति।

४—प्रसूति के समय डॉक्टरनी की सहायता की आवश्यकता और परदानशीन रोगी स्त्रियों की औषधि-विषयक कठिनाइयाँ।

५—विधवाओं का गर्भ-पात (Abortions)।

६—प्रसूति के बाद स्त्रियों की दुर्दशा।

७—विधवाओं को मिलने वाला अपूर्ण अन्न-वस्त्र और उनकी सामाजिक दुरावस्था।

८—निम्न-वर्गों की शोचनीय सामाजिक, आर्थिक एवँ नैतिक अवस्था।

आगे वे लिखते हैं:—

प्रसूति के समय और उसके उपरान्त बहुत दिनों तक तरुण-माताओं को कुछ अस्वच्छ और काली कोठरियों में रक्खा जाता है। अनेक नीच-जाति की स्त्रियों को तो इन दिनों में भी बाहर और खेतों पर काम करने जाना पड़ता है। ऐसी दशा में उनकी मृत्यु का होना अथवा क्षय आदि रोगों से जकड़ जाना स्वाभाविक ही है। प्रत्येक ब्राह्मण-कुटुम्ब में तरुण-विधवाओं को वस्त्रादि धोने और रसोई करने में जी देना पड़ता है। पर, फिर भी उन्हें पुरुषों की तरह दोनों वक्त भोजन न मिलकर एक ही बार अन्न से भेंट होती है।

तात्पर्य यह है कि वर्तमान हिन्दू-समाज में स्त्रियों का ह्रास बड़ी शीघ्रता से हो रहा है। स्त्रियों की दुरावस्था ही पुरुषों की निर्बलता

जाते हैं। तुलना करने पर जान पड़ा है कि हिन्दू-समाज में युवावस्था को प्राप्त होने वाली स्त्रियों की संख्या बहुत कम है। रहीं १५ से ४० वर्ष तक की स्त्रियाँ, सो उनकी संख्या साधारणतया सन्तोषजनक है। किन्तु, यह सन्तोष केवल अ वर्ग की स्त्रियों के लिए है, हिन्दू-समाज के लिए नहीं हिन्दू-समाज में तो इस अवस्था का स्त्री-वर्ग घट ही गया है मुसलमान-समाज में इन स्त्रियों की स्थिति अत्यन्त सन्तोषजनक है साथ ही हिन्दू-समाज की अपेक्षा वृद्धि-क्रम पर है। सन् १९११ के सेन्सस-कमिश्नर मेक्रीगर साहब ने इस वृद्धि का कारण य लिखा है :—

"Number of Potential mothers have increase most rapidly among the Musalmans than among th Hindus."

अर्थात्, मातृ-पद के योग्य बड़ी लड़कियों की संख्या हिन्दुओं की अपेक्षा मुसलमानों में बड़ी शीघ्रता से बढ़ी है। इन लोगों कन्याओं का विवाह देर से होता है, अतः यह कथन ठीक ह जान पड़ता है। अस्तु।

स्त्रियों के इस क्रमागत ह्रास के कारणों का मेक्रीगर साहब बहुत कुछ विचार किया है। उन्होंने अपनी रिपोर्ट में नीचे लि कारण बतलाए हैं :—

१—कन्याओं की बाल-हत्या (Female Infanticide) क चाल राजपूताने में थोड़ी बहुत शेष है।

पुरुष स्त्रियों को क्या समझते हैं ?

पुरुष समझते हैं कि स्त्रियाँ हमारी क्रीत-दासियाँ हैं। उनके ऊपर हमारा मनमाना हक़ है। उनका जीवन और मरण हमारे ऊपर निर्भर है, वे जो कुछ काम करती हैं सब हमारे लिए और ऐसा ही उन्हें करना चाहिए ? सोचिए तो सही, स्त्रियों को इस प्रकार दासी ख़्याल करने का आपको क्या हक़ है ? विवाह-धर्म जैसा कि शास्त्रोक्त है, कदापि यह नहीं बतलाता कि स्त्रियाँ दासी के रूप में उन्हें समर्पित की जाती हैं। उससे तो यह नहीं साबित होता कि स्त्रियाँ पुरुषों की ग़ुलामी करें और पुरुष उन पर मनमानी हुकूमत करें। आप भारत की किसी भी स्त्री का जो समाज के अन्तर्गत जीवन व्यतीत कर रही हो ; जीवन-क्रम देखें। आप क्या पाएँगे ? आप देखेंगे कि उसका सारा जीवन उन कार्यों के करने में ही बीता है, जो शरीर के परिपोषण और सुख के लिए अनिवार्य हैं, उनके समय का प्रत्येकक्षण गृह-चिन्ता और पुरुष-प्रणय में ही व्यतीत होता है। न तो उन्हें इतना अवसर दिया जाता है कि वे कुछ स्वतन्त्र चिन्तन करें और न उन्हें इस योग्य ही बनाया जाता है कि वे इस ग़ुलामी से छूटने का प्रयत्न करें। आप ही विचार कर देखें, स्त्रियाँ

का कारण है। हमारा समाज उत्तरोत्तर निस्सत्व और निर्बल होता जा रहा है, तिसपर भी स्त्रियों की तो घोर दुर्दशा है। उनके सुधार की ओर लोगों का बहुत कम ध्यान है। हमारे यहाँ तो स्त्रियों को शायद लकड़ी-पत्थर समझा जाता है। हम जानते हैं कि स्त्रियाँ केवल कौतुक के लिए हैं, किन्तु यह नहीं समझते कि :—

"स्त्री-पुरुष प्रजा के समान मानव-जाति के अलग-अलग कर्त्तव्यों को पूरा करते हैं, और ये कर्त्तव्य समान रूप से पवित्र हैं। इसलिए स्त्री को आप अपने सुख-दुख की सङ्गिनी और भागी ही मत समझिए, परन्तु अपने विचारों का, अपनी आकांक्षाओं का, अपने सामाजिक मेल तथा सुधार के प्रयत्नों का भी भागी और साथी समझिए। स्त्री को आप राजनैतिक और सार्वजनिक कामों में अपनी बराबरी की समझिए। जिस विचार-शिखर तक जीव को पहुँचना है, उसकी ओर ले चलने वाले स्त्री और पुरुष ये दोनों मानवी पक्ष हैं। अतएव अपने जीवन-क्रम में इन दोनों पक्षों को समान समझ कर काम लीजिए और एक दूसरे के सहायक बनिए!"

क्या आप नहीं जानते कि एक पक्ष के नाश से आपका दूसरा पक्ष किसी काम का न रह जायगा? समाज-रथ के एक चक्र के टूटने से उसका चलना मुश्किल हो जायगा, क्या इसका आपको ज्ञान नहीं है? अतः जब इस शीघ्रता से स्त्रियों के ह्रास की वृद्धि हो रही है, तब भी आप सचेत नहीं होते तो कहना पड़ेगा कि मनुष्य-जाति का नाश निकट है।

पुरुष स्त्रियों को क्या समझते हैं ?
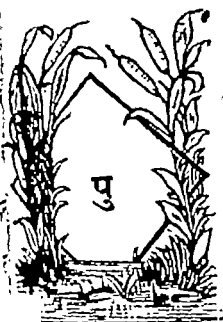
पुरुष समझते हैं कि स्त्रियाँ हमारी क्रीत-दासियाँ हैं। उनके ऊपर हमारा मनमाना हक़ है। उनका जीवन और मरण हमारे ऊपर निर्भर है, वे जो कुछ काम करती हैं सब हमारे लिए और ऐसा ही उन्हें करना चाहिए ? सोचिए तो सही, स्त्रियों को इस प्रकार सी खयाल करने का आपको क्या हक़ है ? विवाह-धर्म जैसा क शास्त्रोक्त है, कदापि यह नहीं बतलाता कि स्त्रियाँ दासी के रूप । उन्हें समर्पित की जाती हैं। उससे तो यह नहीं साबित होता कि स्त्रियाँ पुरुषों की ग़ुलामी करें और पुरुष उन पर मनमानी हुकूमत करें। आप भारत की किसी भी स्त्री का जो समाज के अन्तर्गत जीवन व्यतीत कर रही हो ; जीवन-क्रम देखें। आप क्या पाएँगे ? आप देखेंगे कि उसका सारा जीवन उन कार्यों के करने में ही बीता है, जो शरीर के परिपोषण और सुख के लिए अनिवार्य हैं, उनके समय का प्रत्येकक्षण गृह-चिन्ता और पुरुष-प्रणय में ही व्यतीत होता है। न तो उन्हें इतना अवसर दिया जाता है कि वे कुछ स्वतन्त्र चिन्तन करें और न उन्हें इस योग्य ही बनाया जाता है कि वे इस ग़ुलामी से छूटने का प्रयत्न करें। आप ही विचार कर देखें, स्त्रियाँ

घर का कितना अधिक कार्य करती हैं। नैतिक, शारीरिक अथवा स्वास्थ्य की दृष्टि से क्या उनसे उतना काम लिया जाना चाहिए? आपका आक्षेप हो सकता है कि यदि वे इतना काम न करें तो फिर घर कैसे चले? इस पर हमें कहना पड़ेगा कि पुरुष-जाति स्त्रियों के साथ न्याय करना ही नहीं चाहती। जब घर चलाने आवश्यकता है तो उसके साधनों को भी बढ़ाने और सुलभ बन की आवश्यकता है। आप कहने के लिए तो बड़े-बड़े लम्बे-चौ अवतरण देकर यह साबित कर देते हैं कि स्त्रियों और पुरुषों कार्य-क्रम बिलकुल भिन्न हैं, किन्तु यह नहीं सोचते कि वे कि प्रकार हैं। जिस प्रकार शरीर-धर्म और इन्द्रिय-कर्त्तव्यों का आ पालन करते हैं उसी प्रकार स्त्रियाँ भी पालन करती हैं, जिस प्रका इन्द्रिय तथा मनोविकारों से आपको प्रभावान्वित होना पड़ता है उसी प्रकार स्त्रियाँ भी उनसे दूर नहीं रह सकतीं। विद्या और बुद्धि का जैसा विकास आप कर सकते हैं, स्त्रियाँ भी वैसा ही; और अनेक बातों में आप से भी बढ़कर उन्नति कर सकती हैं। फिर कोई कारण नहीं पाया जाता कि स्त्रियों पर गृह-कार्य का सारा बोझ लाद दिया जाय और फिर भी उन्हें अपनी उन्नति का अवसर न दिया जाय। हम यह नहीं कहते कि स्त्रियाँ गृह-कार्य न करें, किन्तु हम यह भी तो नहीं चाहते कि उस कार्य की वजह से उन्हें अपनी जिन्दगी ही बरबाद कर देनी पड़े। आप उनसे गृह-कार्य कराइए, किन्तु उनकी स्थिति का भी तो ख़याल रखिए। क्या आप नहीं जानते कि स्त्रियाँ कितनी अधिक कार्य-दक्ष, कर्त्तव्य-तत्पर

ग्रौर समय पर कार्य करने वाली होती हैं। क्या आप उनके कामों की सफ़ाई को भी भूल जाते हैं ? जितने थोड़े समय में, जितना अधिक कार्य स्त्रियाँ कर सकती हैं, मैं तो कहता हूँ पुरुष उतना हर्गिज़ नहीं कर सकते। यदि करें भी तो नियमपूर्वक अधिक काल तक नहीं कर सकते। उन स्त्रियों के इस सद्गुण का आप घोर दुरुपयोग कर रहे हैं। आप इनसे गुलामी कराकर अपना स्वार्थ तो साध लेते हैं, किन्तु स्त्री का सर्वनाश कर देते हैं।

फिर पुरुष कहते हैं कि स्त्रियाँ नीच हैं। नीच का अर्थ यही है कि वे पुरुषों की समानता में नहीं आ सकतीं। अवश्य ही अनेक बातें ऐसी हैं जिन्हें स्त्रियाँ नहीं करतीं या करना चाहतीं। इसपर उन्हें अयोग्य ठहरा देना तो ठीक नहीं। स्त्रियों को बराबर नहीं समझना तो एक साधारण बात है, जब पुरुष स्वयँ पुरुष ही को समान नहीं समझते। अनेक ऐसे कार्य हैं, जिन्हें कुछ लोग कर सकते हैं और कुछ नहीं। फिर ऐसी अनेक बातें हैं जिन्हें कुछ स्त्रियाँ कर सकती हैं और कुछ नहीं, अतः इसी से स्त्रियों को नीच समझ लेना तो ठीक नहीं है। स्त्रियाँ नीच कैसे हैं ? यदि स्त्रियाँ नीच हैं तो उनसे उत्पन्न पुरुष उनसे भी नीच हुए। यदि स्त्रियाँ घृणित और क्षुद्र हैं तो उनकी सन्तान और भी अधिक घृणित और क्षुद्र होनी चाहिए। इस प्रकार यह तर्क स्थिर नहीं है। स्त्रियाँ नीच हर्गिज़ नहीं हैं। वे देवियाँ कहलाती हैं, उनमें सचमुच स्वर्गीय गुण होते हैं। दया, क्षमा, कोमलता, स्नेह, सहानुभूति आदि गुणों की यदि सच्ची परख करनी हो तो वह स्त्रियों में ही कीजिए। ये गुण

उत्कृष्ट-रूप में स्त्रियों में विराजमान हैं। स्त्रियाँ यदि चाहें तो गृ
को स्वर्ग से भी बढ़कर बना दें; वे चाहें तो मनुष्य का जीवन सचमु
सार्थक बना दें। किन्तु, यदि वे अपना अपमान होते देख लें, या
वे यह जान लें कि पुरुष उन्हें नीच और क्षुद्र समझते हैं तो अप
कोप और शाप से आसमान हिला दें। निर्मल, कोमल और स्निग
अन्तःकरण की प्रत्येक कामना शीघ्र ही फलीभूत होती है।

इसके बाद पुरुष कहते हैं कि स्त्रियाँ अनर्थकारिणी होती हैं
किन्तु कैसे, यह वे नहीं बतला सकते। हम तो कहते हैं कि पुरुष
के अनर्थों ने ही स्त्रियों को अनर्थकारिणी बना दिया है। क्या
सचमुच आप स्त्रियों में हितकारिणी स्त्रियाँ नहीं पाते? यदि पाते
हैं तो यह तो सिद्ध है कि सभी स्त्रियाँ अनर्थकारिणी नहीं होतीं।
अतएव जो स्त्रियाँ अनर्थकारिणी हैं उनके स्वभाव और जीवन-क्रम
की जाँच की जाय तो आप ९० प्रतिशत पुरुषों का ही दोष
पाएँगे। पुरुषों ने ही उन्हें गुलाम बनाकर जैसा चाहा, चलाया
और उन पर मनमाने अत्याचार किए। फिर प्रत्यक्ष अनर्थ
अनुभव करते-करते यदि कोई स्त्री अनर्थ के दो एक कार्य कर डाले
तो इसमें किसका दोष है?

प्राचीन उदाहरण दे-देकर पुरुष इस बात को पुष्ट करते हैं
कि स्त्रियाँ महा अनर्थकारिणी होती हैं। हम तो कहते हैं कि आप
प्राचीन काल की बात जाने दीजिए। आधुनिक समाज की ही दशा
क्यों नहीं देखते? आज यदि घरों में फूट पड़ती है तो उसका मुख्य
कारण स्त्रियाँ ही मानी जाती हैं। लोग कहते हैं कि अमुक स्त्री के

रखी ऐसा हुआ। इसीसे ने यह बात सच जान पड़ती है। ठीक है;
का; तो इसके बाद लोग क्या कहते हैं ? वे कहते हैं कि स्त्री का
। मजाल जो ऐसा कर सके, यह सब पुरुष की ही करतूत है।
। स्त्री के कहे में आ गया है और उसीने स्त्री को अपने सिर चढ़ा
गा है। अवश्य ही इस कथन के विरुद्ध स्त्रियों की परावलम्बित
ता का परिचय मिलता है, किन्तु इतना तो इससे समझ में
सकता है कि यदि स्त्रियाँ ऐसा अनर्थ करती हैं तो पुरुषों के
ए। यदि पुरुष उन पर अनर्थ न करें, यदि उन्हें पवित्र और
न्त्र वायु-मण्डल में वर्द्धित करें तो हम विश्वासपूर्वक कह
ते हैं कि स्त्रियों द्वारा कभी अनर्थ के कार्य नहीं हो सकते।
तः ऐसी परवश अनर्थकारिणी स्त्रियों की संख्या ही बहुत थोड़ी
ौर जहाँ कहीं अनर्थ होता भी है, वहाँ सच्चा कारण कुछ
ही होता है।

स्त्रियों को नासमझ बतलाना पुरुषों की नासमझी को खुद
त करता है। स्त्रियाँ नासमझ कैसे हैं ? क्या आपने प्रयोग
यह बात समझ ली है ? जब आप स्त्रियों को सुशिक्षित ही
करेंगे तो स्त्रियों की समझ कैसे बढ़ेगी। जब मूल में ही शिक्षा
अभाव है—जिससे समझ पैदा होती और बढ़ती है—तो
याँ बेचारी क्या कर सकती हैं ? शिक्षित स्त्रियों के उदाहरण
ए तो पता लगेगा कि स्त्रियाँ छोटे से लेकर बड़े से बड़ा
पकार और वीरता का काम कर सकती हैं। ि
। वही विचार-शक्ति है। वे भी शिक्षा की सहायता से

से उच्च कार्य कर सकती हैं। क्षुद्र से क्षुद्र गृह-कार्य से लेक
शासन जैसे महत्कार्य को वे आसानी से कर सकती हैं।

बहुधा पुरुष स्त्रियों को अशीलवान समझते हैं और अपनं
बड़ी नासमझी के कारण उनपर चरित्र-हीनता का दोषारोपण
करते हैं। इससे अधिक भयङ्कर भूल पुरुष-जाति की हो ही नह
सकती। यों तो कहना पड़ेगा कि पुरुष अपने चरित्र की सफाः
देना चाहता है, यह तो एक साधारण सी बात है, जिसे हम
प्रतिदिन अनुभव किया करते हैं। स्त्रियाँ जितना पवित्र है, उन्हें
अपने शील का जितना ध्यान है, अपने चरित्र की जितनी रक्षा वे क
सकती हैं, उतनी पुरुष-जाति कदापि नहीं कर सकती। जहाँ-जहाँ
स्त्रियाँ शीलभ्रष्ट हुई हैं, वहाँ-वहाँ पुरुषों को ही दोषी प्रमाणित किया
गया है और पुरुष ही इस अत्याचार के कारण माने गए हैं। लज्जा
और शील का जितना ध्यान स्त्रियों को है उतना पुरुषों को कदापि
नहीं। इसके अतिरिक्त भ्रष्ट से भ्रष्ट चरित्र वाली स्त्री को भी
आप देखेंगे तो भी वह अपनी ओर से कदापि चरित्र खोने के
लिए उद्यत न होगी। इस बात के एक नहीं, सैकड़ों उदाहरण दिए
जा सकते हैं। पुरुष ही स्त्रियों की कोमलता, उनकी सुकुमारता
और उनकी सुशीलता का अनुचित लाभ उठाकर, उन्हें प्रलोभन
देकर जाल में फँसाते हैं और तब उन्हें शीलहीन बना डालते हैं।
आदर, सम्मान, गृह-कर्त्तव्य, सुजनता, सद्व्यवहार पठन-
पाठन और अधार्मिकता आदि जितनी बातें शील या चरित्र से
सम्बन्ध रखती हैं, स्त्रियाँ उन सब में दृढ़ और नियमित रहती हैं।

स्त्रियों में आप कुचेष्टाएँ स्वभावतः ही न पाएँगे। वे अपने शील को सचमुच रत्न की तरह सुरक्षित रखती हैं। यदि ऐसा न होता तो स्त्री गृहिणी बनने योग्य ही न होती।

देखा आपने, पुरुष स्त्रियों को क्या समझते हैं ? किसी ने सत्य लिखा है :—

"In every part of the world one of the general characteristics of savages is to despise and disgrace the female sex."

सच है, स्त्रियों को इस प्रकार हीन समझ कर उनका अपमान करने वाले लोगों को हम असभ्य या जङ्गली न कहें तो क्या कहें ?

पुरुषों ने स्त्रियों के लिए क्या किया ?

हला काम तो उन्होंने यही किया कि स्त्रियों को अशिक्षित बना दिया। आज इस सभ्यता के नवीन युग में, जीवन-संग्राम की कठोर आवश्यकताओं के समय में भी ऐसे लोगों की संख्या कम नहीं है जो स्त्रियों को शिक्षित नहीं बनाना चाहते। आप कदाचित् आश्चर्य करेंगे और कहेंगे कि इससे सफ़ेद झूठ और हो ही नहीं सकता। पर, ज़रा विचार करते ही आपको हमारे कथन की सत्यता प्रतीत हो जायगी। यदि आप पढ़े-लिखे और शिक्षितों में अन्तर समझ लें तो विषय स्पष्ट हो जायगा। हाँ, अधिकांश जनता इस बात को मानने लगी है कि स्त्रियाँ पढ़-लिख जाएँ और वे घर का हिसाब-किताब या चिट्ठी-पत्री लिखने लगें। क्या आप इसी को शिक्षा समझते हैं? आप कह सकते हैं कि जो लोग अपनी लड़कियों को पढ़ाना चाहते हैं, वे उन्हें सुशिक्षित भी बनाना चाहते हैं। अवश्य ही ऐसे लोगों की संख्या बहुत कम है। स्त्री-शिक्षा की औसत देखिए तो कठिनता

से १॥ या २ प्रतिशत निकलेगी। मानलीजिए कि पढ़ने वाली स्त्रियों की संख्या २ सैकड़ा है तो उनमें सुशिक्षित स्त्रियों की संख्या प्रति सहस्र १ निकलेगी। पढ़ने-लिखने में और सुशिक्षित होने में बहुत अन्तर है। पुरुष-समाज में भी जहाँ ९ प्रति सैकड़ा शिक्षा की औसत है, वहाँ सुशिक्षित व्यक्ति १ प्रति सैकड़ा ही मिलेंगे। पुस्तकें पढ़ लेने और पत्र लिख लेने का नाम ही शिक्षा नहीं है। शिक्षा का पद अत्युच्च है और उसकी प्राप्ति भी वैसी ही कठिन है। सच तो यह है कि पढ़-लिख लेने के बाद शिक्षा का प्रारम्भ होता है। शिक्षित होने के लिए पढ़ना-लिखना एक साधनमात्र है। जो लोग पढ़े-लिखे होते हैं, वे सभी शिक्षित नहीं होते और यह भी आवश्यक नहीं कि सभी सुशिक्षित पढ़े-लिखे हों। अतः जब हम कहते हैं कि पुरुषों ने स्त्रियों को अशिक्षित बना दिया तो उससे हमारा अर्थ यही है कि प्रथमतः उन्होंने उनके पढ़ने-लिखने का विरोध किया, फिर पढ़-लिख जाने पर उन्हें अनुभव और बुद्धि के विकास द्वारा शिक्षित होने का अवसर नहीं दिया। आज की शिक्षा का क्रम क्या है ? कुछ काल तक लड़कियाँ स्कूल में पढ़ती हैं और फिर विवाह हो जाने पर अपने घर चली जाती हैं। वहाँ उनके पढ़ने-लिखने का क्या उपयोग होता है ? सच तो यह है कि विवाह हो जाने पर स्त्रियों की उन्नति एक प्रकार से रुक जाती है। अविवाहित अवस्था में तो वे माता-पिता के प्रेम और शिक्षा के कारण कुछ न कुछ सीखती रहती हैं, किन्तु विवाह हो जाने पर उनका किताबी ज्ञान घर की चहारदीवारी के ही आसपास टकराया करता है। उस

पुरुषों ने स्त्रियों के लिए क्या किया ?

हला काम तो उन्होंने यही किया कि स्त्रियों को अशिक्षित बना दिया। आज इस सभ्यता के नवीन युग में, जीवन-संग्राम की कठोर आवश्यकताओं के समय में भी ऐसे लोगों की संख्या कम नहीं है जो स्त्रियों को शिक्षित नहीं बनाना चाहते। आप कदाचित् आश्चर्य करेंगे और कहेंगे कि इससे सफ़ेद झूठ और हो ही नहीं सकता। पर, जरा विचार करते ही आपको हमारे कथन की सत्यता प्रतीत हो जायगी। यदि आप पढ़े-लिखे और शिक्षितों में अन्तर समझ लें तो विषय स्पष्ट हो जायगा। हाँ, अधिकांश जनता इस बात को मानने लगी है कि स्त्रियाँ पढ़-लिख जाएँ और वे घर का हिसाब-किताब या चिट्ठी-पत्री लिखने लगें। क्या आप इसी को शिक्षा समझते हैं ? आप कह सकते हैं कि जो लोग अपनी लड़कियों को पढ़ाना चाहते हैं, वे उन्हें सुशिक्षित भी बनाना चाहते हैं। अवश्य ही ऐसे लोगों की संख्या बहुत कम है। स्त्री-शिक्षा की औसत देखिए तो कठिनता

से १॥ या २ प्रतिशत निकलेगी। मानलीजिए कि पढ़ने वाली स्त्रियों की संख्या २ सैकड़ा है तो उनमें सुशिक्षित स्त्रियों की संख्या प्रति सहस्र १ निकलेगी। पढ़ने-लिखने में और सुशिक्षित होने में बहुत अन्तर है। पुरुष-समाज में भी जहाँ ९ प्रति सैकड़ा शिक्षा की औसत है, वहाँ सुशिक्षित व्यक्ति १ प्रति सैकड़ा ही मिलेंगे। पुस्तकें पढ़ लेने और पत्र लिख लेने का नाम ही शिक्षा नहीं है। शिक्षा का पद अत्युच्च है और उसकी प्राप्ति भी वैसी ही कठिन है। सच तो यह है कि पढ़-लिख लेने के बाद शिक्षा का प्रारम्भ होता है। शिक्षित होने के लिए पढ़ना-लिखना एक साधनमात्र है। जो लोग पढ़े-लिखे होते हैं, वे सभी शिक्षित नहीं होते और यह भी आवश्यक नहीं कि सभी सुशिक्षित पढ़े-लिखे हों। अतः जब हम कहते हैं कि पुरुषों ने स्त्रियों को अशिक्षित बना दिया तो उससे हमारा अर्थ यही है कि प्रथमतः उन्होंने उनके पढ़ने-लिखने का विरोध किया, फिर पढ़-लिख जाने पर उन्हें अनुभव और बुद्धि के विकास द्वारा शिक्षित होने का अवसर नहीं दिया। आज की शिक्षा का क्रम क्या है ? कुछ काल तक लड़कियाँ स्कूल में पढ़ती हैं और फिर विवाह हो जाने पर अपने घर चली जाती हैं। वहाँ उनके पढ़ने-लिखने का क्या उपयोग होता है ? सच तो यह है कि विवाह हो जाने पर स्त्रियों की उन्नति एक प्रकार से रुक जाती है। अविवाहित अवस्था में तो वे माता-पिता के प्रेम और शिक्षा के कारण कुछ न कुछ सीखती रहती हैं, किन्तु विवाह हो जाने पर उनका किताबी ज्ञान घर की चहारदीवारी के ही आसपास टकराया करता है। उस

पुरुषों ने स्त्रियों के लिए क्या किया ?

पहला काम तो उन्होंने यही किया कि स्त्रियों को अशिक्षित बना दिया। आज इस सभ्यता के नवीन युग में, जीवन-संग्राम की कठोर आवश्यकताओं के समय में भी ऐसे लोगों की संख्या कम नहीं है जो स्त्रियों को शिक्षित नहीं बनाना चाहते। आप कदाचित् आश्चर्य करेंगे और कहेंगे कि इससे सफ़ेद झूठ और हो ही नहीं सकता। पर, ज़रा विचार करते ही आपको हमारे कथन की सत्यता प्रतीत हो जायगी। यदि आप पढ़े-लिखे और शिक्षितों में अन्तर समझ लें तो विषय स्पष्ट हो जायगा। हाँ, अधिकांश जनता इस बात को मानने लगी है कि स्त्रियाँ पढ़-लिख जाएँ और वे घर का हिसाब-किताब या चिट्ठी-पत्री लिखने लगें। क्या आप इसी को शिक्षा समझते हैं ? आप कह सकते हैं कि जो लोग अपनी लड़कियों को पढ़ाना चाहते हैं, वे उन्हें सुशिक्षित भी बनाना चाहते हैं। अवश्य ही ऐसे लोगों की संख्या बहुत कम है। स्त्री-शिक्षा की औसत देखिए तो कठिनता

से १॥ या २ प्रतिशत निकलेगी। मानलीजिए कि पढ़ने वाली स्त्रियों की संख्या २ सैकड़ा है तो उनमें सुशिक्षित स्त्रियों की संख्या प्रति सहस्र १ निकलेगी। पढ़ने-लिखने में और सुशिक्षित होने में बहुत अन्तर है। पुरुष-समाज में भी जहाँ ९ प्रति सैकड़ा शिक्षा की औसत है, वहाँ सुशिक्षित व्यक्ति १ प्रति सैकड़ा ही मिलेंगे। पुस्तकें पढ़ लेने और पत्र लिख लेने का नाम ही शिक्षा नहीं है। शिक्षा का पद अत्युच्च है और उसकी प्राप्ति भी वैसी ही कठिन है। सच तो यह है कि पढ़-लिख लेने के बाद शिक्षा का प्रारम्भ होता है। शिक्षित होने के लिए पढ़ना-लिखना एक साधनमात्र है। जो लोग पढ़े-लिखे होते हैं, वे सभी शिक्षित नहीं होते और यह भी आवश्यक नहीं कि सभी सुशिक्षित पढ़े-लिखे हों। अतः जब हम कहते हैं कि पुरुषों ने स्त्रियों को अशिक्षित बना दिया तो उससे हमारा अर्थ यही है कि प्रथमतः उन्होंने उनके पढ़ने-लिखने का विरोध किया, फिर पढ़-लिख जाने पर उन्हें अनुभव और बुद्धि के विकास द्वारा शिक्षित होने का अवसर नहीं दिया। आज की शिक्षा का क्रम क्या है ? कुछ काल तक लड़कियाँ स्कूल में पढ़ती हैं और फिर विवाह हो जाने पर अपने घर चली जाती हैं। वहाँ उनके पढ़ने-लिखने का क्या उपयोग होता है ? सच तो यह है कि विवाह हो जाने पर स्त्रियों की उन्नति एक प्रकार से रुक जाती है। अविवाहित अवस्था में तो वे माता-पिता के प्रेम और शिक्षा के कारण कुछ न कुछ सीखती रहती हैं, किन्तु विवाह हो जाने पर उनका किताबी ज्ञान घर की चहारदीवारी के ही [illegible]

ज्ञान का कोई उपयोग नहीं होता । दिन-रात घर की नौकरी करते-करते स्त्रियाँ भी अल्हड़ हो जाती हैं, वे समझ लेती हैं कि हमारी ज़िन्दगी यों ही कट जायगी। हमें पढ़ने-लिखने और ज्ञानानुभव बढ़ाने से क्या काम ? इस प्रकार स्त्रियों के कर्त्तव्य-क्षेत्र को सङ्कुचित कर और उनकी ग़ुलामी की ज़ञ्जीर को और जकड़कर पुरुष-समाज ने स्त्री-जाति को निर्बल और निस्सहाय बना दिया है।

जब बड़ी धींगाधींगी से स्त्रियाँ कुछ पढ़-लिख चलीं तो पुरुषों को भय उत्पन्न हुआ कि कहीं ऐसा न हो कि स्त्रियाँ पुरुषों के स्वत्व छीन लें। यह ध्यान आते ही पुरुषों ने स्त्रियों के स्वत्व अपहरण कर लिए। मज़े से पढ़ो-लिखो। जब कर्त्तव्य-क्षेत्र ही तुम्हारे लिए न रखा, जब आगे बढ़ने तथा उन्नति और विकास के तुम्हारे अधिकार ही छीन लिए तो पढ़-लिखकर भी तुम क्या कर लोगी ? स्त्रियों के स्वत्वों का पुरुषों को यहाँ तक भय हुआ कि धर्मशास्त्र तक की शरण लेनी पड़ी। आख़िर धर्मशास्त्र किसका बनाया है ? उसके बनाने वाले भी तो पुरुष ही थे न ? कभी स्त्रियों ने भी पुरुषों के लिए कोई धर्म-बन्धन या क़ानून बनाया है ? स्त्रियों को पराश्रय रखने की प्रगति तो प्रारम्भ ही से है न ? पुरुष अपने सर्वस्व सुख को कैसे छोड़ सकते हैं ? जब स्त्रियाँ अपने स्वत्व प्राप्त कर लेंगी तो समाज में पुरुषों का क्या मान रह जायगा। जब राजनैतिक स्वत्वों के लिए स्त्रियाँ आगे बढ़ेंगी तो पुरुष-जाति को कितनी सुविधाएँ रह जाँयगी। अतः यही ठीक समझा गया कि स्त्रियों के धर्मभीरु और भोले स्वभाव का अनुचित लाभ उठाया जाय और

धर्मशास्त्रों की दुहाई देकर उनका कर्त्तव्य स्थिर कर दिया जाय।
ह कर्त्तव्य क्या है, उसे बार-बार लिखने की इच्छा नहीं होती।

इसके बाद पुरुषों ने बड़ी खूबसूरती से एक के बाद एक
न्धन रचे। कहीं प्रेम का बन्धन है तो कहीं कर्त्तव्य का बन्धन
है, कहीं लज्जा का बन्धन है तो कहीं धर्म का बन्धन है, कहीं
अधिकार का बन्धन है तो कहीं परदे का बन्धन है। इस प्रकार
न जाने कितने बन्धनों के माया-जाल और भूलभुलैयाँ में पुरुषों ने
स्त्रियों को फाँस रक्खा है। स्त्री यदि एक बन्धन से छूटना चाहती है
तो दूसरा बन्धन चट उसे आकर घेर लेता है। फिर भी पुरुष
कहते हैं कि स्त्रियाँ हमारी गृह-स्वामिनी हैं। मनु महाराज ने यह
तो लिख दिया कि पुरुष को चाहिए कि वह स्त्रियों को वस्त्राभूषण
से अलङ्कृत करता रहे। किन्तु, यह नहीं लिखा कि स्त्रियाँ भी अपने
जीवन का कुछ हक़ रखती हैं। वे लिखते हैं—जहाँ स्त्रियों की पूजा
नहीं होती वहाँ सब क्रियाएँ निष्फल होती हैं। ईश्वर जाने यह पूजा
कैसी है? यह पूजा है या दण्ड? गृह मन्दिर है या जेलख़ाना?
पत्थर की मूर्तियों की तरह स्त्रियों को भी खाने-पहिनने को दे दिया
जाय और पट बन्द कर दिया जाय, हमें तो स्मृतिकार की यही
शिक्षा मालूम होती है। लोगों ने उसका अक्षरशः पालन भी किया
है। यदि आप स्त्रियों को वस्त्र-भोजन भी देते हैं तो केवल इसलिए
कि आपने उन्हें असमर्थ बना रक्खा है, यदि आप उन्हें वस्त्राभूषण
से अलङ्कृत करते हैं तो केवल अपनी आँखों को सुख देने के लिए,
रूप की वृद्धि के द्वारा अपनी वासना की तृप्ति के लिए और

अधिकांश में समय पड़ने पर जीवन-निर्वाह में गहनों का उपयोग करने के लिए। कहाँ तक कहें, सब जगह पुरुषों ने अपने नीच स्वार्थ के लिए स्त्रियों को बन्धन में डाल रक्खा है। फिर भी दुहाई दी जाती है—"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।" क्या इन्हीं करतूतों से देवताओं का वास होता है?

स्त्रियों के प्रति पुरुषों के इन अन्यायों का फल यह हुआ है कि स्त्रियाँ असमर्थ हो गई हैं। अब वे पराधीनता की गोद में पल कर निःसत्व वायु-मण्डल में रहकर इतनी विवश हो गई हैं कि पुरुषों के चलाए ही चलना चाहती हैं, और जो स्त्रियाँ इसी प्रकार चलती हैं वे समाज की दृष्टि में बहुत श्रेष्ठ मानी जाती हैं। यदि पुरुषों की भूल से स्त्रियाँ इतनी विवश हो गई हैं तो इसका यह अर्थ तो कदापि नहीं हो सकता कि अब स्त्रियों की इस विवशता को दूर ही न करनी चाहिए। पर हो तो ऐसा ही रहा है। स्त्रियों की इस विवशता को लोग गुणकारी समझने लगे हैं और इसी को आदर्श मान कर अनुकरणीय बतलाते हैं। धन्य है पुरुष-जाति!

एक सलूक स्त्रियों के साथ पुरुषों ने और भी किया है। उन्हें सब प्रकार स्वत्वहीन तो पहले ही बना डाला था, अब शक्तिहीन भी बना दिया। यह बात सत्य है कि धनाभाव, अकाल आदि कारणों से यथेष्ट भोजन न मिल सकने के कारण भी स्त्रियाँ बहुत शक्तिहीन और रोगिणी हो गई हैं तथापि यह बात जिस प्रकार स्त्रियों के लिए लागू हो सकती है, उसी प्रकार पुरुषों के

लिए भी। किन्तु, शारीरिक स्वास्थ्य के बिगड़ने में जहाँ अन्यान्य कारण उपस्थित हैं, वहाँ पुरुष स्वयँ भी उसके कारण हो रहे हैं। निर्धनता या अन्नभाव तथा अकाल से जिन रोगों की उत्पत्ति होती है, उनका प्रभाव समस्त जनता पर पड़ता है। इसके अतिरिक्त गृह-जीवन की दुर्दशा के कारण स्त्रियों को सबसे अधिक मृत्यु और रोगों का सामना करना पड़ता है। पुरुषों को गृह-धर्म, गृह-सुख और गृह-कर्त्तव्य का कुछ ध्यान नहीं रहता, अपने दाम्पत्य-जीवन के दायित्व का भी कुछ ज्ञान नहीं रहता और सन्तान के भविष्य का भी कुछ अनुमान नहीं रहता। वह अपनी कामान्ध-दशा में काम बासना की लालसा से स्त्रियों का सर्वस्व नष्ट कर देता है। उन्हें रोगिणी तो बना ही देता है, साथ ही सन्तानों के बोझ से उनका जीवन और भी कठिन बना देता है। फल यह होता है कि स्त्रियाँ अपना रूप और सौन्दर्य खो बैठती हैं, गृह-सुख और शारीरिक स्वास्थ्य खो बैठती हैं और जीवन भर घर का टहल, बच्चों की देख-रेख, कुटुम्बियों की सेवा और पतिदेव की हाँ-हुजूरी करते-करते ही अपने दिन काट देती हैं।

कहिए, स्त्रियों के लिए पुरुषों ने कैसे अच्छे-अच्छे काम किए हैं ?
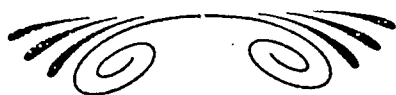
उत्तरदायित्व किस पर है?

पुरुष और स्त्री

त्याचारों का वर्णन हो चुका। यह भी बतला दिया गया कि वे अत्याचार किन-किन द्वारा और किस-किस प्रकार से किए जाते हैं। समयानुसार यह भी बतलाने का प्रयत्न किया गया है कि अत्याचारों के होने में किसका अधिक भाग है। विचारपूर्वक देखने से जान पड़ता है कि ये अत्याचार स्त्री और पुरुष दोनों ही की भूलों एवँ अयोग्यताओं से होते हैं अतः दोनों ही इसके जिम्मेदार हैं। यह बात अवश्य है कि पुरुष पर इसका दायित्व अधिक है; क्योंकि प्रत्येक कार्य में वही अग्रगामी है और प्रत्येक अवस्था में वही श्रेष्ठ होने का दावा करता है। पुरुष यदि चाहे तो स्त्री को प्रत्येक महत्वपूर्ण कार्य करने का अधिकार दे और यदि वह चाहे तो उसे प्रत्येक अधिकार से वञ्चित रक्खे। पुस्तक में प्रारम्भ से लेकर अब तक अत्याचारों का जो दिग्दर्शन हमने कराया है उससे भी यही प्रतीत होता है कि

पुरुष-जाति अपनी करतूतों के लिए सबसे अधिक जिम्मेदार है। यही नहीं, ऐसी विवश अवस्था में स्त्रियों द्वारा किए गए अनुचित व्यवहारों का दायित्व भी पुरुषों पर ही आ पड़ता है; क्योंकि उन्हीं के कारण स्त्रियों को यों दुख प्रदर्शित करने पर अपने असन्तोष का परिचय देने का अवसर प्राप्त होता है।

आत्म-रक्षा का सवाल बड़ा बिकट है और वह स्त्री और पुरुष दोनों के सम्मुख समान-रूप से उपस्थित होता है। पुरुषों को अपनी रक्षा की जिस प्रकार चिन्ता है, स्त्रियों को भी उसी प्रकार है। यही नहीं, स्त्रियों के प्रति व्यवहार को देखकर और उनकी निस्सहाय मूक और विवश अवस्था को अवलोकन कर हमारे मत में स्त्रियों को अपनी रक्षा की विशेष चिन्ता है। जिस वस्तु से सब प्रकार का सुख प्राप्त होता है, जो संसार के कल्याण के लिए है, उसकी कामना कौन न करेगा ? फिर स्त्रियों का माहात्म्य और उनकी उपयोगिता तो सर्वविदित है। अङ्गरेजी कवि स्कॉट (Scott) ने स्त्रियों के सम्बन्ध में लिखा है :—

O woman ! in our hours of ease
Uncertain Coy and hard to please
And variable as the shade
By the light quivering aspen made
When pain and anguish wring the brow
A ministering angel thou !

रमणी संसार का सार है, गृहस्थाश्रम का प्रधान अवलम्बन

है। स्त्रियों के बिना पुरुष पूर्णता को नहीं प्राप्त कर सकते। प्रत्ये
दशा में स्त्री-पुरुषों का सहयोग आवश्यक है। इसलिए दोनों व
आत्म-रक्षा का उपाय होना भी जरूरी है। यह ठीक है कि दो
एक दूसरे की रक्षा करें, किन्तु हमारे शास्त्रकारों ने स्त्रियों व
पुरुषों द्वारा ही रक्षित बतलाया है और इसी से हम प्रत्य
अनुभव भी करते हैं कि स्त्रियों ने अपनी रक्षा की शक्ति खो दी है
फिर भी ऐसे अनेक उदाहरण पाए जाते हैं, जिनसे स्त्रियों की
वीरता और कार्य-तत्परता भली-भाँति प्रकट होती है। सारांश यह
कि आत्म-रक्षा का दायित्व स्त्री और पुरुष दोनों पर समानरूप
से है। स्त्रियों को यह न समझ लेना चाहिए कि पुरुष ही केवल
उनकी रक्षा कर सकते हैं। आजकल ज़माना बड़ा खराब आ
रहा है। हम नित्यप्रति देख रहे हैं कि स्त्रियों की इज़्ज़त आजकल
बिलकुल तुच्छ मानी जा रही है। वे जब चाहे और जहाँ चाहे
अपमानित एवँ भ्रष्ट कर दी जाती हैं। पुरुषों ने उन्हें सत्वहीन
और निर्बल समझ कर उनपर मनमानी शुरू कर दी है। इसलिए
अब स्त्रियों के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि वे अपनी निर्बलता
एवँ भीरुता की भावना छोड़ दें, वे अपने शक्ति-स्वरूप को एक वार
फिर समझ लें और अपने धर्म तथा मान की रक्षा के लिए वे
मरने-मारने से न डरें। कोई भय उन्हें भीत और कम्पित न कर
सके, कोई दुराचरण उन्हें अपने पथ से न हटा सके। अत्याचार
से वचने के लिए यह स्त्रियों का दायित्व है।

गृहस्थाश्रम में यद्यपि सभी प्रकार के सुख-दुख भोगने पड़ते

और उनके लिए सब प्रकार की प्रकृति बनानी पड़ती है, किन्तु
नुष्य की सौम्य और गम्भीर वृत्ति की अनिवार्य आवश्यकता है।
ी और पुरुष दोनों को चाहिए कि वे अपनी प्रकृति सौम्य किन्तु
म्भीर रक्खें। सौम्य होने से समस्त दुर्गुण और दुर्व्यवहार दूर
होंगे। और गम्भीर रहने से समस्त आपदाएँ और कठोरताएँ
हज ही सहन की जा सकेंगी। फिर न तो बखेड़े का कारण ही
होगा और न बखेड़ा आने पर उसे तूल दिया जा सकेगा। जो
ार्य जिस प्रकार होना चाहिए वैसा ही होगा। स्मरण रहे, ये दो
ुण सचमुच सब गुणों के प्रतिनिधि-रूप हैं। इनके होने पर फिर
नुष्य को किसी बात का भय नहीं रह जाता। स्त्री और पुरुष
ोनों ही अपनी सौम्य प्रकृति के कारण परस्पर प्रीतिपूर्वक रह
सकेंगे; साथ ही कठिनाइयाँ उपस्थित होने पर गम्भीर प्रकृति के
ोने से वे गम्भीरतापूर्वक विचार कर सकेंगे और उन्हें दूर कर
सकेंगे। फिर परस्पर वैमनस्य एवँ विपमता उपस्थित होने का
अवसर ही न प्राप्त होगा तथा गृहस्थ-जीवन सुखमय व्यतीत हो
सकेगा।

गृह-शासन देश-शासन की पहली सीढ़ी है। एक बार चाहे
मनुष्य देश का शासन भले ही कर ले, किन्तु गृह का शासन करना
उसे फिर भी कठिन मालूम होगा। देश-शासन में तो वह क़ानून
द्वारा और अपने कर्मचारियों द्वारा लोगों को शासित होने के लिए
बाध्य कर सकता है, पर गृह-शासन में न तो ऐसा जबर्दस्त
क़ानून है और न वहाँ पुलीस या फ़ौज अथवा अदालत का प्रवेश

है। वहाँ तो धर्म और नीति पर शासन की नींव है—अपने मन की तरङ्ग पर सारी सत्ता निर्भर है। वहाँ नैतिकभाव ही लोगों को गृहशासन में योग देने के लिए विवश करते हैं। वहाँ बड़े-छोटे और कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य के अनुकूल शासन किया जाता है। एक प्रकार से यह शासन अस्थिर है। इसी से बहुत थोड़े लोग इसके योग्य होते हैं। हमारे सांसारिक जीवन में असन्तोष का प्रधान कारण हमारी गृह-शासन-सम्बन्धी अयोग्यता ही है। स्त्री और पुरुष दोनों ही इसके लिए दोषी हैं। कहीं पुरुषदेव घर की क़िल्लतों से भागते हैं तो कहीं देवी जी गृह-कार्य से मुँह मोड़ती हैं और कहीं लाचारी दर्जे पर उन्हें कुछ न कुछ करना पड़ता है। वह भी अधूरा होता है और दोनों ही उससे असन्तुष्ट रहते हैं। वे अपनी अयोग्यता को न समझ कर एक दूसरे पर दोषारोपण करते हैं और तब बात-बात में छिद्रान्वेषण कर घोर कष्ट एवँ कलह उत्पन्न कर देते हैं। आज हमारे यहाँ ७५ सैकड़ा के क़रीब गृहस्थियाँ इसी श्रेणी की हैं। पुरुष सब प्रकार शिक्षित होने पर भी, समः और सम्पन्न होने पर भी गृह-शासन की अयोग्यता के कारा सुखी नहीं हो सकता। कारण यह है कि नौकरों से काम नहीं चलत वे घर का सत्यानाश कर देते हैं। ऐसे घर कभी फूलते-फलते नह देखे गए। यहाँ तक कि ऐसे कुटुम्बों में ऐसी अघटित घटनाए घटित हो जाती हैं कि जिनका रहस्य बड़ा ही लज्जाजनक औ अपमान-कारक होता है। यह सब गह-शासन की अयोग्यता क वजह से होता है।

इसी से कलह की उत्पत्ति होती है। प्रायः घरों में कलह मची रहती है। हम लोग दूसरों को देखकर कह देते हैं कि देखो अमुक स्त्री या पुरुष कैसा गँवार है कि रात-दिन घर में कलह मचाए रहता है, किन्तु जब हम आजकल की उच्च शिक्षा प्राप्त होने पर भी बात-बात में चिढ़ जाते हैं, पद-पद पर नाक-भौं सिकोड़ते हैं और अनाप शनाप शब्द-जाल फैलाकर अपनी हृदय की तपन बुझाते हैं, तब हमें अपनी अयोग्यता का ख़्याल नहीं होता—तब हम नहीं देखते कि हमारे गृह में कलह क्यों होता है। कहीं-कहीं तो मूर्ख और अयोग्य पति, चाहे वह विश्वविद्यालय का ग्रेजुएट भले ही हो, अपनी मूढ़ा, अनुभवहीना और कुटिल कायरता प्रेयसी की दमपट्टियों में आकर अपने भाई-भौजाई और माँ-बाप तक को कोई चीज़ नहीं समझते और अपने पीछे ऐसा झगड़ा बढ़ा लेते हैं कि नैतिक और धार्मिक लज्जा तो उनसे भाग ही जाती है, साथ ही कर्त्तव्य का भी पतन हो जाता है और निर्लज्ज की भाँति वे कलह-काण्ड मचा देते हैं। कहीं मूर्खा स्त्रियाँ अपने गुरुजनों से लड़ती हैं, पड़ोसियों को गालियाँ देती हैं, कर्कशा की भाँति अपने पति व बच्चे को ही दुरुस्त कर देती हैं, घर का काम ठीक समय पर नहीं करतीं और गहने या ऐसी ही चीज़ों के लिए हरदम कान खाया करती हैं, ऐसी स्त्रियाँ सचमुच कलहकारिणी होती हैं। ये जान-बूझ कर अत्याचारों को निमन्त्रण करती हैं। ये घर-बाहर कहीं सुखी नहीं रह सकतीं। दुर्भाव इन्हें रात-दिन सताते रहते हैं। सीधे रास्ते को छोड़कर टेढ़े-मेढ़े रास्ते से चलती हैं और

आख़िर अपनी ही भूल से अवनति के गहरे गह्वर में जा गिरती हैं। उस निस्सहाय अवस्था में उनकी सहायता के लिए फिर कौन आता है? अत्याचार यों ही बुरे होते हैं, फिर अत्याचार को निमन्त्रण देने वाली स्त्रियाँ क्यों न बुरी समझी जाँय?

आधुनिक शिक्षा के कुफल सब पर विदित हैं। फिर भी जो थोड़े बहुत शिक्षित लोग हैं, वे अपनी शिक्षा का सदुपयोग करना नहीं जानते। बहुधा अधिक शिक्षित व्यक्ति, अपने गृह-प्रबन्ध की ओर से बे-परवाह बनकर सारा काम नौकरों पर छोड़ देते हैं। बहुतों को गृहस्थाश्रम भारवत् प्रतीत होता है। वे इसे घोर बन्धन समझते हैं—मुक्ति का मार्ग नहीं। हम तो उन्हें पूर्णशिक्षित होने पर भी कच्चा कहेंगे। वे अपनी शिक्षा का उपयोग यदि इस ओर नहीं करते, कर सकते या करना चाहते तो इससे यही अनुमान निकलता है कि वे अयोग्य हैं और कर्त्तव्य के मार्ग का अनुसरण नहीं करना चाहते। चाहे सच न हो, पर आजकल की शिक्षिता स्त्रियों पर भी कुछ-कुछ ऐसा ही दोषारोपण किया जाता है। स्त्री-शिक्षा के विरोधियों का एक ज़बर्दस्त आक्षेप यह भी है। यह त हम भी कह सकते हैं कि पुरुष की तरह स्त्रियों में भी आधुनि दूषित शिक्षा के कारण नज़ाकत ज़्यादा आ गई है, उन्हें गृहस्थी क्षुद्र काम हेय प्रतीत होते हैं और प्रायः थोथी सफ़ाई और दिखाव में उनका समय व्यतीत होता है। हमारा यह सामूहिक (Universal आक्षेप नहीं है और न यह सम्भव है। किन्तु, प्रायः देखने प कुछ-कुछ ऐसा ही नज़र आता है। यदि ऐसा होता है तो कहनाप ड़ेग

कि शिक्षा का अतिशय दुरुपयोग किया जा रहा है और उसका नाम नाहक़ ही बदनाम किया जा रहा है। शिक्षा से कर्त्तव्य का ज्ञान होना चाहिए या उससे घृणा ? शिक्षा से गुणों का विकास होना चाहिए या लोप ? शिक्षा से प्रेम और सहानुभूति की वृद्धि होनी चाहिए या असन्तोष और द्वेष की बढ़ती ? स्त्रियों ने (किसी किसी का कथन है) थोड़ी सी शिक्षा में हूल-फूल कर अपना रङ्ग छोड़ दिया । फलतः लोग उनकी शिक्षा का विरोध करते हैं तथा पढ़ी-लिखी होने के कारण वे स्त्रियों से अधिक द्वेष रखते हैं, अतः स्त्रियों को सावधान होना चाहिए।

जो मनुष्य परिस्थिति देख कर काम करना नहीं जानते वे जान-बूझ कर सिर पर आपत्ति उठाते हैं। आप ही कहिए, जो व्यक्ति परिस्थिति के अनुकूल रहना नहीं जानता वह कैसे जीवित रह सकता है ? यदि आप असमर्थ हैं तो सामर्थ्यों की भाँति आप कैसे काम कर सकते हैं और ऐसा न होने पर आप क्या पुरुपार्थ कर सकते हैं ? हम स्त्रियों से पूछते हैं कि वे यदि परिस्थिति के अनुकूल रहना नहीं जानतीं तो परिणाम-स्वरूप दुख और अत्याचार होने पर वे क्यों हाय-तोबा करती हैं ? फिर इस हाय-तोबा का फल भी क्या हुआ है ? स्त्रियाँ दिनों-दिन अपने पद से गिरती जा रही हैं और उनकी शक्ति घटती जा रही है। अत्याचारों का यह दायित्व स्त्रियों पर प्रधानरूप से है। स्त्रियाँ पढ़-लिख कर भी इतनी व्यवहार-कुशल नहीं हो जातीं कि परिस्थिति के अनुकूल अपने को भी बना लें। वे प्रत्येक अवस्था

में अपनी उसी निर्जीव तथा परमुखापेक्षी प्रकृति का परिचय देती हैं। उनमें वह जागती ज्योति नहीं होती जो उन्हें अन्धकार से हटा सके। उनमें वह साहस नहीं होता जो कठिन अवस्थाओं में भी धैर्य द्वारा अपने अनुकूल उन्हें बना ले। मनुष्य को दुख क्यों होता है ? इसीलिए कि वह नियम को नहीं जानता और अज्ञान के कारण असमर्थ होकर कष्ट भोगता है। इसी से प्रत्येक व्यक्ति को परिस्थिति का ज्ञान होना आवश्यक है। फिर केवल ज्ञान से ही कुछ लाभ नहीं होता, यदि उसका प्रयोग व्यावहारिक दृष्टि से न किया जाय। इस समय भारतवर्ष की अधिकांश स्त्रियाँ इतने अन्धकार में हैं कि उनके ही घर के बाहर क्या हो रहा है, इसका उन्हें पता नहीं। हाँ, लड़ाई-झगड़े और इधर-उधर की बातें तो वे अवश्य कुछ-कुछ जान लेती हैं, किन्तु अपनी पतित अवस्था का ज्ञान उन्हें कदापि नहीं होता। न तो वे यह जानती हैं कि हमारी कौटुम्बिक परिस्थिति इतनी हीन क्यों है और न वे यही जानती हैं कि उस हीनता में उनका कितना अधिक भाग है। सच तो यह है कि स्त्रियों की इस औंधी प्रवृत्ति ने ही उन्हें कष्ट के कारागार में पटक दिया है। ऐसी स्त्रियाँ न तो अपने कुटुम्बियों के और न अपने पतिदेव के ही मनोनुकूल कार्य कर सकती हैं। सबको उनसे निराश होना पड़ता है। तब लाचार उनसे ग़ुलामों की तरह काम लिया जाता है और इस प्रकार कार्य करने में यदि कष्ट का अनुभव हो तो इसका दोषी कौन है ?

सफल गृहस्थ होने के लिए और पूर्ण शान्त, सुखमय जीवन

व्यतीत करने के लिए स्त्री और पुरुष दोनों में ही व्यावहारिक योग्यता का होना अत्यन्त आवश्यक है। प्रथम तो अपनी शिक्षा का क्रम पूरा करना आवश्यक है, तदनुसार आश्रम के नियमों का आधुनिक परिस्थिति के अनुकूल पालन करे, तब कहीं गृहस्थ बनने का साहस करना चाहिए। आजकल के सांसारिक ज्ञानशून्य, व्यवहार-विहीन, कच्चे दम्पति बरसाती मेंडकों की तरह बढ़ते ही जा रहे हैं और लोग फिर भी चिल्लाते हैं कि गृहस्थी में सुख नहीं। न तो स्त्री को पुरुष का ध्यान रहता है और न पुरुष को स्त्री का। दोनों ही स्वार्थमय एवँ विषयी जीवन व्यतीत करते हैं। हम पहले भी कह आए हैं कि केवल किसी प्रकार भोजन बनाकर खिला देना या ज्यों-त्यों कर घर की टहल कर देना ही गृहस्थी का सच्चा कार्य नहीं है। गृहस्थ का दायित्व बहुत बड़ा है और उसके लिए स्त्री तथा पुरुष दोनों ही को सच्चा व्यवहारज्ञ होना चाहिए। क्या जिन कुटुम्बों में लड़ाई-झगड़े होते हैं, मार-पीट या अन्य अत्याचार होते हैं, वहाँ कोई भोजन नहीं करता ? अथवा क्या उनका घर फूटा पड़ा रहता है ? नहीं, सब कुछ होता है। वे भोजन भी करते हैं और साथ भी रहते हैं। परन्तु, फिर भी टण्टा लगा ही रहता है, कोई सुखी नहीं रहता, सच्ची शान्ति उनसे कोसों दूर रहती है। कारण क्या है ? बात यह है कि वे अपने कर्त्तव्य की श्रेष्ठता को नहीं समझते और तदनुसार अपने व्यवहार में उसे प्रयुक्त कर कर्त्तव्य-पूर्त्ति का प्रयास नहीं करते। फल यह होता है कि स्त्री और पुरुष दोनों ही की अनबन रहती है।

पुरुष बलवान होने पर स्त्री पर अपनी वीरता के हाथ साफ़ करता है, स्त्री कर्कशा होने पर पुरुष की अच्छी तरह ख़बर लेती है। दुर्बल अवस्था में दोनों मुँह फुलाए रहते हैं और हृदय खोलकर बात नहीं करते। इस प्रकार इस व्यावहारिक अज्ञान के कारण चारों ओर से क्लेश ही उठाना पड़ता है। जिस व्यवहार के लिए एक समूचे आश्रम की कल्पना हुई है, यदि उसी का अभाव हो तो सङ्कट न आने पर ही आश्चर्य होता।

कहीं कहीं स्त्री और पुरुष अपनी स्वतन्त्रता को घोर स्वच्छन्दता में परिणत कर उसका दुरुपयोग कर डालते हैं। इससे गृहस्थी सुधरने के स्थान पर बिगड़ने लगती है। बाबू साहब दफ़्तर जाना चाहते हैं, किन्तु श्रीमती जी को कुछ ख्याल नहीं है। वे नौकर-चाकरों पर हुकूमत चलाती हैं। बाबू जी यदि कुछ कहते हैं तो कोप-भवन का साज सजाया जाता है। हम तो इसे स्वतन्त्रता नहीं, किन्तु स्वेच्छाचारिता कहेंगे। यह प्रवृत्ति कहाँ तक भली हो सकती है ? या तो स्त्रियों को तनिक भी अधिकार न होगा और या फिर पुरुष अपने अधिकार भी स्त्रियों को दे बैठते हैं। स्त्रियाँ परतन्त्रता में तो दुखी रहती ही हैं, फिर जहाँ उन्हें स्वतन्त्रता की सन्धि प्राप्त हुई कि बस उनका दिमाग़ बिगड़ जाता है। उस समय उन्हें यह नहीं जान पड़ता है, कि इस स्वतन्त्रता का किस प्रकार सदुपयोग किया जाय। कौटुम्बिक असन्तोष को बढ़ाने के लिए इस प्रकार की विषम स्वतन्त्रता सचमुच विष का काम करती है। आजकल स्त्रियों में इस स्वेच्छाचारिता के भी लक्षण बढ़ते हुए

ए जाते हैं। जाँच करने से मालूम हुआ है कि स्त्रियों में यह तन्त्रता प्रतिहिंसा का काम कर रही है और वे उसके लिए कुला उठी हैं। तभी तो उनके जी में जो आता है वही कर ालती हैं। फिर न तो उन्हें अपने कुटुम्ब की मर्यादा का ख्याल हता है और न पति की आज्ञा का। वे उद्दण्ड और उन्मत्त लोगों की तरह एकदम झूमने लगती हैं और उस बेहोशी की हालत में वे अपनी सौम्य तथा गम्भीर प्रकृति को तिलाञ्जलि दे बैठती हैं। बस, दुनिया भर की आफ़तें वहाँ केन्द्रीभूत हो जाती हैं, फिर अपमान, अवहेलना, प्रतारणा, भ्रष्टता और अनाचार आदि सभी दुर्गुण वहाँ उपस्थित होकर ताण्डव-नृत्य करने लगते हैं, तब जो रङ्ग जमता है उसका वर्णन न करना ही अच्छा है। बड़े-बड़े घरों की इस स्वतन्त्रता के पोल-खाते खोलने का यह अवसर नहीं है, इसीलिए हम अपने विचार गुप्त रखना चाहते हैं; किन्तु इतना तो अवश्य कहेंगे कि एक बार परतन्त्रता के दुख भोग लेना अच्छा है, किन्तु स्वतन्त्रता का दुरुपयोग बड़ा ही भयङ्कर है।

यहाँ हम उस पत्र में से कुछ अंश उद्धृत करते हैं, जो एक पुरुष ने अपनी स्त्री को लिखा था। उस पत्र के पढ़ने से स्त्री और पुरुष दोनों को सच्चे कर्त्तव्य का ज्ञान होगा। वह पत्र इस प्रकार है :—

सौभाग्य प्रिये,

यहाँ से विदा होकर, ईश्वर-कृपा से तुम सकुशल घर पहुँच गई होगी। चलते समय तुमसे मिलने की मुझे बड़ी उत्कण्ठा थी, किन्तु दुष्ट रूढ़ियों तथा रिवाजों के कारण मुझे ऐसा अवसर ही नहीं मिल सका। अतः उस

समय तुम्हें अन्तिम आशीर्वाद देने का ही अवसर नहीं मिला; फिर दो चार बातें करने का तो अवकाश ही कहाँ था ? ऐसी ही रूढ़ियों के कारण, जुदा होते समय स्त्री-पुरुष एक दूसरे को देख भी नहीं सकते......!

मुझे मेरा कर्त्तव्य प्यारा है, धर्म प्रिय है, अतः उसी के अनुसार व्यवहार करने का मैं प्रयत्न करता रहता हूँ। संसार ने जो धर्म मान रक्खा है वही मेरा धर्म नहीं है। यह तो तुम भी जानती हो कि संसार-विदित धर्म में बहुत कुछ अधर्म है। इस प्रकार का धर्म मैं नहीं मानता। हाँ, उसमें से मेरे अन्तःकरण को तथा अन्य बुद्धिमान् लोगों को जो बातें सङ्गत और उचित प्रतीत हुई हैं, वही धर्म मेरा है—मैं उसी धर्म को मानता हूँ। संसार जिसे धर्म कहता है, उसमें मुझे जो अधर्म जान पड़ता है उसका मैं तिरस्कार करता हूँ। ऐसा करने में मेरी भले ही निन्दा हो, मैं उसकी चिन्ता नहीं करता। संसार भले ही मुझे दोषी कहे, किन्तु ईश्वर की दृष्टि में तो मैं निर्दोष हूँ, यह मुझे पूर्ण विश्वास है। इसी से जिस कार्य के करने में मैं ईश्वर के सम्मुख दोषी नहीं हूँ, उसके लिए संसार मुझे भले ही दोषी कहे, मैं उससे बिल्कुल नहीं डरता।

संसार कहता है कि स्त्री को अपने भाई-बन्धु तथा जन्मदाता माता-पिता से भी अधिक आदरणीय समझो। इधर स्त्री का अपने स्वामी के प्रति यही धर्म है और यही कुलीन स्त्रियों का धर्म है और इस धर्म के अनुसार चलने वाली स्त्री ही उत्तम कही जाने योग्य है। जब स्त्री का अपने पति के प्रति ऐसा अनन्य धर्म है तो पति का स्त्री के प्रति दूसरा धर्म कैसे हो सकता है ? पति अपनी स्त्री को क्यों न सर्व-श्रेष्ठ समझे ? किन्तु, ऐसे पति की तो संसार निन्दा करने लगता है और उसे स्त्री-भक्त की उपाधि दी जाती है। यह संसार का झूठा धर्म है या यों कहो कि धर्म के रूप में

अर्धाङ्गिनी की तरह रक्खे। देखा जाता है कि हमारे यहाँ कुलीन स्त्रियों की प्रायः बड़ी दुर्गति होती है। जो पुरुष अपनी विषय-वासना की तृप्ति के लिए या अति-विषय के लिए पर-स्त्री अथवा वेश्या-गमन करते हैं, उनसे ज़रा पूछो कि वे उन स्त्रियों के साथ कैसा व्यवहार करते हैं। सब प्रकार की खुशामदें और तोहफ़े हरदम उनके लिए तैयार रहते हैं और फिर भी स्त्रियों की फटकार उन्हें सहनी पड़ती है। किन्तु, वे ही पुरुष अपनी विवाहिता पत्नी को कैसा घोर कष्ट देते हैं! उसे खाने और पहिनने तक नहीं दिए जाते। उसके गहने-कपड़े छीन लिए जाते हैं और ऊपर से लात-घूँसे तथा गाली-गलौज तो उपहार में मिलते हैं। ये पुरुष यदि अपनी कुलीन स्त्रियों के साथ ऐसा बर्ताव न करें और उन्हें भली-भाँति सुखपूर्वक रक्खें तो घर में सच्चे आनन्द का उदय हो। अस्तु।

बहुतेरी स्त्रियाँ सदा अपने माँ-बाप के यहाँ की शेख़ी मारा करती हैं अथवा अपना ही घर भरा-पूरा होने और अपने रूप-रङ्ग, गहने-कपड़े तथा ऐसी ही बातों की तारीफ़ किया करती हैं। यह स्त्रियों में एक बड़ा दोष है। यह एक प्रकार से पुरुषों के ऊपर प्रकारान्तर से दोषारोपण है। अतः जो स्त्री चाहती हो कि उसका पति उससे प्रसन्न रहे वह अपने माँ-बाप के यहाँ की शेख़ियाँ भूल कर भी न मारे। इस एक अवगुण के कारण पति तो असन्तुष्ट रहता ही है, साथ ही स्त्री में अनेक दुर्गुण उत्पन्न हो जाते हैं; और तब कुटुम्ब में सच्चे प्रीति-भाव का लोप होकर चिरकालीन अशान्ति उत्पन्न हो जाती है। मैं तुम से कहूँगा कि यदि भूलसे भी तुम्हारे हृदय में ऐसे विचार आ जाएँ तो उन्हें परित्याग कर देना।

नम्रता एक भूषण है और स्त्री पुरुष सभी के लिए यह आवश्यक है। मैं ने देखा है कि पति ज्यों-ज्यों स्त्री पर अधिक प्यार कर उसे स्वतन्त्रता

देता जाता है; स्त्री त्यों-त्यों ऐंठती जाती है। चाहिए तो यह कि ग्राम के वृक्ष में ज्यों-ज्यों ग्राम बढ़ते जाते हैं, त्यों त्यों डालियाँ झुकती जाती हैं, उसी प्रकार स्त्री भी ज्यों-ज्यों स्वतन्त्रता और प्रेम-प्राप्त करती जाय, त्यों-त्यों अधिक नम्र होती जाय। पति को अपने अनुकूल बनाने का यह सबसे सुन्दर उपाय है, किन्तु पवित्र अन्तःकरण वाली स्त्रियों को ही यह उपाय सूझ सकता है। क्षुद्र हृदय वाली स्त्रियाँ पति को वश में करने के लिए झूठे वशीकरण मन्त्रों का प्रयोग करती हैं और न जाने क्या-क्या दुष्ट उपाय करती हैं। मैं ने देखा है कि इसी वशीकरण के भूत ने पति को स्त्री से और भी जुदा कर दिया है; साथ ही स्त्री पर भी अनेक ऐसे लज्जाजनक सङ्कट आ गए हैं कि जिनका वर्णन करने से भी पाप होता है। ऐसी स्त्रियाँ ईश्वर की दृष्टि में घोर पाप की भागिनी होती हैं। किसी कवि ने ठीक ही कहा है :—

'वशीकरण इक मन्त्र है, परिहरु वचन कठोर !'

इस प्रकार मैं ने तुम्हें अच्छी और बुरी, दोनों ही प्रकार की स्त्रियों के सम्बन्ध में कुछ-कुछ लिखा है। यदि तुम चाहती हो कि सुख से रहें, मैं तुम्हारे अनुकूल रहूँ, तुम्हारे कुटुम्ब में शान्ति रहे तो तुम अपने धर्म का पालन करो। इसी धर्म से तुम्हारी मुक्ति होगी। तुम्हारा मार्ग साफ़ है, कोई उसमें बाधक नहीं हो सकता। केवल तुम्हें अपने कर्त्तव्य का ज्ञान होना चाहिए। बस, सिद्धियाँ तुम्हारे साथ हैं। कोई ऐसी शक्ति नहीं है जो तुम्हारा नाश कर सके। दुःख और अत्याचार से बचने का बहुत कुछ उपाय तुम्हारे हाथ है। यदि तुम्हारा हृदय निर्मल तथा अन्तःकरण पवित्र है तो पति स्वयं ही तुम्हारी पवित्रता के प्रताप से तुम्हारे अनुकूल हो जायगा। सच्चे सांसारिक सुख की यही कुञ्जी है।

तुम्हारा—

स्त्री और पुरुष दोनों की भलाई बहुत कुछ दोनों की ईमानदारी पर निर्भर है। जितने दुख उत्पन्न होते हैं, उन सबका कारण अनुचित होता है। जहाँ अनुचित कार्य है वहीं भय और पाप है। ईमानदारी का न होना पाप की निशानी है। यदि स्त्री-पुरुष के हृदय पवित्र न हों, यदि उनमें मन-मुटाव हो या अन्तःकरण मैले हों तो साफ़ ज़ाहिर होता है कि वे अपने धर्म को नहीं समझते। ऐसे लोगों को यह हमेशा याद रखना चाहिए कि :—

बदकारों को इस दहर में इज़्ज़त नहीं मिलती।

सब मिलता है, ईमान सी दौलत नहीं मिलती॥

इसी से व्यवहार में ईमानदारी की ज़रूरत है। जब दो शक्तियाँ एक होकर या यों कहिए कि एक ही शक्ति दो रूप में गृहस्थाश्रम का दायित्व अपने ऊपर उठाती हैं तो उनमें विषमता होना, मैल और कमज़ोरी होना यही बतलाता है कि वे अयोग्य हैं और अपने कर्त्तव्य से गिर रही हैं। अतः उस समय यदि स्त्री को पुरुष द्वारा या पुरुष को स्त्री द्वारा कोई कष्ट पहुँचे तो यह उन दोनों की भूल से ही होता है।

थियोडोर पार्कर ने अपने विवाह के पूर्व १० नियम बनाए थे, उन्हें उचित समझ कर यहाँ लिखा जाता है :—

(१) योग्य और सबल कारणों के अतिरिक्त मैं कदापि अपनी स्त्री की इच्छा के विरुद्ध कार्य न करूँगा।

(२) सब काम उसके लिए खुले दिल से करूँगा।

(३) उसे कदापि कुवचन न कहूँगा ।

(४) उसकी ओर कदापि घृणा या उपेक्षा की दृष्टि से न देखूँगा ।

(५) लगातार आज्ञाएँ देकर उसे कदापि दुख न पहुँचाऊँगा ।

(६) उसके अन्तःकरण की धार्मिक वृत्ति के विकास का प्रयत्न करूँगा ।

(७) सदा उसके सुख-दुख का भागी बनूँगा ।

(८) उसके क्षुद्र व्यङ्गों की ओर ध्यान न दूँगा ।

(९) उस पर निरन्तर प्रीति करूँगा, उसकी मूर्ति हृदय में धारण करूँगा और सदैव उसकी रक्षा करूँगा ।

(१०) ईश्वर से प्रार्थना करते समय स्नेहयुक्त अन्तःकरण से उस पर कृपा करने की याचना करूँगा ।

चाहे ये नियम सर्वमान्य न हों, किन्तु इनसे इतना तो स्पष्ट है कि पुरुष यदि स्त्री को सचमुच अपनी सहधर्मिणी समझ कर उसके साथ योग्य वर्ताव करे; यही नहीं, उसकी उचित आवश्यकताओं की पूर्ति कर उसे सन्तुष्ट रक्खे तो निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि अत्याचार बहुत कम हो जाँय। बाल्यावस्था से लेकर विवाह होने तक माता-पिता का कर्त्तव्य है कि वे लड़की को सदाचार का महत्व बताएँ और उसे भावी जीवन के योग्य बनाएँ। उसे कोई ऐसी बात न सिखाएँ जो उसके गृह-जीवन या विवाहित जीवन में बाधक हो। फिर विवाह में भी लड़की का ध्यान रक्खें। छोटी अवस्था में विवाह न करना चाहिए और

कन्या का हाथ उस पुरुष के हाथ में देना चाहिए जो सब प्रकार से सुशील और योग्य हो। देखने में यह नियम बड़ा कड़ा जान पड़ता है, किन्तु व्यवहार में उतनी कठिनता नहीं पड़ती। एक बार समस्त पुरुष और समस्त स्त्रियाँ विमल अन्तःकरण से अपनी स्थिति का अनुमान कर लें और फिर प्रसन्नचित्त हो कर संसार के कार्य करें। फिर तो उनका व्यक्तिगत प्रेम, कुटुम्ब-प्रेम में सहज ही परिणत हो जायगा और ऐसा होते-होते जाति, देश और यहाँ तक कि विश्व-प्रेम की निर्मल तरङ्गे उनके हृदय-सागर में लहरा उठेगीं। उसी समय सच्चे सुख का अनुभव होगा। कुटुम्ब का दायित्व कितना बड़ा है, कुटुम्ब के नियम कैसे पवित्र हैं, कुटुम्ब की मर्यादा कैसी सुनिश्चित है और कुटुम्ब का महात्म कितना अधिक है। जब हम कहते हैं कि सारी वसुधा को कुटुम्ब के समान समझो :—

"वसुधैव कुटुम्बकम्"

कौटुम्बिक अत्याचार

हते हैं, और ठीक भी है कि यदि कुटुम्ब में कलह उत्पन्न न हो तो वह स्वर्ग से भी अधिक सुखकर है। अपने प्रेमियों, हितैषियों और सम्बन्धियों का समागम और उनका एकत्र जीवन-वहन कुटुम्ब के लिए सुख और आनन्द का स्रोत है। कुटुम्ब की एकत्र शक्ति, उनका सङ्गठित प्रेम और उनकी अभिन्न मर्यादा, ये सब मिलकर जीवन को श्रेयस्कर बनाने में सफल होते हैं। वह गृह कैसा भला मालूम पड़ता है, जिसे गृहिणी अपनी पवित्र शोभा से अलङ्कृत करती है, जहाँ उसका हास-विलास और स्नेह तथा वात्सल्य गृह में सुख-सरिता वहा देता है और जहाँ कुटुम्ब के सभी छोटे-बड़े अपूर्व आनन्द और अद्भुत शक्ति का उपभोग करते हैं।

किन्तु, जहाँ कुटुम्ब में कलह उत्पन्न हुई, जहाँ घर में अशान्ति और असन्तोष उत्पन्न हुआ, जहाँ क्षोभ, दुख और ताड़ना के कारण स्त्रियों ने आँखों से अश्रुधारा बहा दी, वहाँ सुख और आनन्द तो रहता ही नहीं; सर्वनाश होते भी देर नहीं लगती। घर श्मशान हो जाता है। वह पवित्र ज्योति, वह अपू

शोभा न जाने कहाँ विलीयमान हो जाती है। स्त्रियों के आँसू को आप आँसू न समझें—वे तो रक्त की बूँदें हैं। शरीर को जला-जला कर और रक्त को सुखा सुखा कर ये आँखें आँसू बहाती हैं। और उन आँसुओं से कौटुम्बिक सुख नष्ट हो जाता है।

सम्प्रति, कुटुम्ब की सुख-कल्पना एक आदर्श कल्पना है। कोई ऐसा कुटुम्ब न निकलेगा जहाँ अन्याय और अत्याचार की शक्ति ने अपना पैर न अड़ा रक्खा हो। कोई ऐसा गृह न मिलेगा जहाँ स्त्रियों की आँखें आँसू से तर न हों, कोई ऐसा स्थान न मिलेगा जहाँ बेचारी अबलाओं पर पाशविक अत्याचार न किए जा रहे हों। प्रत्येक कुटुम्ब में, किसी न किसी रूप में, तथा किसी न किसी कारण से कुछ न कुछ अन्याय किया जा रहा है। किसी न किसी प्रकार से स्त्रियों की शक्ति क्षीण की जा रही है उनके अन्तःकरण की स्वाधीन भावनाएँ दबाई जा रही हैं और सबसे बढ़कर उनकी आत्मा का दमन किया जा रहा है, गला घोंटा जा रहा है।

कौटुम्बिक अत्याचारों का स्वरूप इतना गम्भीर और विकृत हो गया है, वे इतने व्यापक और सुसाध्य हो गए हैं कि नित्य के व्यवहार में उनका उपयोग होने लगा है और हमारी शक्तियाँ निरन्तर सङ्घात से अपनी चेतना-शक्ति खोकर शराबी की भाँति उन्मत्त और मदान्ध होकर निश्चल हृदय और निस्सङ्कोच भाव से इन अन्यायों और अत्याचारों की अभिवृद्धि कर रही हैं; किन्तु हमें तो वे नित्य की आवश्यकता प्रतीत होते हैं, हम उनके बिना अपने दैनिक कार्य-क्रम को पूरा नहीं कर सकते।

इन अत्याचारों के अनेक कारण हैं। यदि आपने भारतीय कौटुम्बिक जीवन की अन्तरावस्था का यथार्थ अवलोकन किया होगा तो आप भली-भाँति समझ जाएँगे कि इन कौटुम्बिक अत्याचारों के एक दो नहीं, सैकड़ों कारण हैं। वे नित्य नए उत्पन्न होते हैं और प्रतिदिन उन्हें नया स्वरूप दिया जाता है। इसी से यदि हम इन अत्याचारों के कारणों को निश्चित रूप से लिखना चाहें तो नहीं लिख सकते। हाँ, साधारण-रूप से हमने जिन प्रधान कारणों का पता लगाया है, हम उन्हीं पर कुछ विचार करना चाहते हैं। हम विवेचन और उदाहरणों द्वारा इन कारणों की आलोचना करेंगे। जरा सम्भलकर आगे बढ़ें।

कुटुम्बियों का स्वभाव इन अत्याचारों में विशेष स्थान रखता है। यह एक व्यापक कारण है। प्रकृति-विभिन्नता के अनुसार व्यवहार तो बदलता ही है, साथ ही बेचारी स्त्री-जाति पर घोर सङ्कट आ जाता है। जिस समय नव-विवाहित वधू का घर में आगमन होता है, उसी समय ये कुटुम्बी अपने स्वभाव का परिचय दे देते हैं। कहीं-कहीं तो विवाह-काल में ही, लड़की के घर पर ही कुटुम्ब के लोग अपनी शूर-वीरता दिखला देते हैं। कोमल हृदया बालिका जो एक अज्ञात, अपरिचित और एकान्त स्थान में जा रही है, कुटुम्ब के व्यवहार को भली-भाँति नहीं जानती। उसका तो हृदय एक के पश्चात् दूसरी नवीनता देखते-देखते कुछ ऐसा उत्सुक, विचित्र और भयभीत सा हो जाता है कि कर्त्तव्याकर्त्तव्य का उसे कुछ ज्ञान नहीं रहता। किन्तु, उस अबोध बालिका की इस असहाय

शोभा न जाने कहाँ विलीयमान हो जाती है। स्त्रियों के आँसू को आप आँसू न समझें—वे तो रक्त की बूँदें हैं। शरीर को जला-जला कर और रक्त को सुखा सुखा कर ये आँखें आँसू बहाती हैं। और उन आँसुओं से कौटुम्बिक सुख नष्ट हो जाता है।

सम्प्रति, कुटुम्ब की सुख-कल्पना एक आदर्श कल्पना है। कोई ऐसा कुटुम्ब न निकलेगा जहाँ अन्याय और अत्याचार की शक्ति ने अपना पैर न अड़ा रक्खा हो। कोई ऐसा गृह न मिलेगा जहाँ स्त्रियों की आँखें आँसू से तर न हों, कोई ऐसा स्थान न मिलेगा जहाँ बेचारी अबलाओं पर पाशविक अत्याचार न किए जा रहे हों। प्रत्येक कुटुम्ब में, किसी न किसी रूप में, तथा किसी न किसी कारण से कुछ न कुछ अन्याय किया जा रहा है। किसी न किसी प्रकार से स्त्रियों की शक्ति क्षीण की जा रही है उनके अन्तःकरण की स्वाधीन भावनाएँ दबाई जा रही हैं और सबसे बढ़कर उनकी आत्मा का दमन किया जा रहा है, गला घोंटा जा रहा है।

कौटुम्बिक अत्याचारों का स्वरूप इतना गम्भीर और विकृत हो गया है, वे इतने व्यापक और सुसाध्य हो गए हैं कि नित्य के व्यवहार में उनका उपयोग होने लगा है और हमारी शक्तियाँ निरन्तर सङ्गत से अपनी चेतना-शक्ति खोकर शराबी की भाँति उन्मत्त और मदान्ध होकर निश्चल हृदय और निस्सङ्कोच भाव से इन अन्यायों और अत्याचारों की अभिवृद्धि कर रही हैं; किन्तु हमें तो वे नित्य की आवश्यकता प्रतीत होते हैं, हम उनके बिना अपने दैनिक कार्य-क्रम को पूरा नहीं कर सकते।

इन अत्याचारों के अनेक कारण हैं। यदि आपने भारतीय कौटुम्बिक जीवन की अन्तरावस्था का यथार्थ अवलोकन किया होगा तो आप भली-भाँति समझ जाएँगे कि इन कौटुम्बिक अत्याचारों के एक दो नहीं, सैकड़ों कारण हैं। वे नित्य नए उत्पन्न होते हैं और प्रतिदिन उन्हें नया स्वरूप दिया जाता है। इसी से यदि हम इन अत्याचारों के कारणों को निश्चित रूप से लिखना चाहें तो नहीं लिख सकते। हाँ, साधारण-रूप से हमने जिन प्रधान कारणों का पता लगाया है, हम उन्हीं पर कुछ विचार करना चाहते हैं। हम विवेचन और उदाहरणों द्वारा इन कारणों की आलोचना करेंगे। ज़रा सम्भलकर आगे बढ़ें।

कुटुम्बियों का स्वभाव इन अत्याचारों में विशेष स्थान रखता है। यह एक व्यापक कारण है। प्रकृति-विभिन्नता के अनुसार व्यवहार तो बदलता ही है, साथ ही बेचारी स्त्री-जाति पर घोर सङ्कट आ जाता है। जिस समय नव-विवाहित वधू का घर में आगमन होता है, उसी समय ये कुटुम्बी अपने स्वभाव का परिचय दे देते हैं। कहीं-कहीं तो विवाह-काल में ही, लड़की के घर पर ही कुटुम्ब के लोग अपनी शूर-वीरता दिखला देते हैं। कोमल हृदया बालिका जो एक अज्ञात, अपरिचित और एकान्त स्थान में जा रही है, कुटुम्ब के व्यवहार को भली-भाँति नहीं जानती। उसका तो हृदय एक के पश्चात् दूसरी नवीनता देखते-देखते कुछ ऐसा उत्सुक, विचित्र और भयभीत सा हो जाता है कि कर्त्तव्याकर्त्तव्य का उसे कुछ ज्ञान नहीं रहता। किन्तु, उस अबोध बालिका की इस असहाय

अवस्था का कुटुम्ब के लोग बड़ा दुरुपयोग करते हैं। ज्योंही लड़की का घर में आगमन होता है, त्योंही कानाफूसी प्रारम्भ हो जाती है। कहीं लड़की के माँ-बाप पर गालियों की बौछार की जाती है तो कहीं उसके कुल और मान पर लाञ्छन लगाया जाता है; कहीं उसके कुटुम्ब की निन्दा की जाती है तो कहीं साक्षात् बालिका पर ही दोषारोपण किया जाने लगता है। कुटुम्ब में दो एक अच्छे आदमी भी होते हैं, किन्तु भीषण प्रकृति के लोगों के आगे चँ नहीं कर सकते। इस प्रकार बेचारी अबला सचमुच ही अबला होकर ऐसी बला में फँसती है कि उसका ज़ीवन ही भाररूप हो जाता है। चाहिए तो यह कि जिस लड़की का गृह छूटा, माता-पिता, भाई और कुटुम्ब छूटे, बचपन की सहेलियाँ छूटीं, उसके साथ सहानुभूति प्रकट की जाय, उसे सान्त्वना और परितोष दिया जाय। यह तो कुछ होता नहीं, होता है यह कि सभी कुटुम्बी अपनी मर्ज़ी के अनुसार, अपने स्वभाव के अनुकूल उसे चलाना चाहते हैं। भला, यह कैसे हो सकता है ?

यही तो कारण है कि अनुभवहीन अबला, चाहे वह सुशिक्षिता ही क्यों न हो, घोर कष्ट का अनुभव करती है।

रूप की चाह एक ऐसी बात है जिसके कारण स्त्रियों को अनेक अत्याचार सहने पड़ते हैं। यदि स्त्री रूपवती हुई तो उसकी दृष्टि न जाने कितने लोगों को खटक जाती है। वह अपने रूप के कारण घोर सङ्कट में पड़ जाती है, किन्तु यह प्रश्न दूसरा है

यहाँ तो हमें यह बतलाना है कि कुटुम्ब में रूप की चाह का क्या परिणाम होता है और फल-स्वरूप स्त्री-जाति पर कैसा घोर अत्याचार किया जाता है।

स्त्री का रूपवती होना जितना सङ्कटपूर्ण है, उसका कुरूपा होना उतना ही कण्टकाकीर्ण है। रूपवती होने के कारण स्त्री पर बाहरी सङ्कट की सम्भावना रहती है, किन्तु कुरूपा होने से तो उसका जीवन ही नष्ट हो जाता है—उसका कौटुम्बिक जीवन ही सत्यानाश हो जाता है। चाहे जैसा कुरूप और बदशकल आदमी हो, किन्तु वह भी रूपवती स्त्री की लालसा करता है। वह नहीं चाहता कि कोई कृष्णवर्णा कामिनी उसके कुटुम्ब का कष्ट बढ़ाए। छिः यह कैसी नीच प्रवृत्ति है? इसके कारण स्त्रियों को कितने घोर सङ्कट में पड़ना पड़ता है! हम एक दो नहीं, अनेकों उदाहरण इस बात के बतला सकते हैं, जहाँ केवल रूपहीन होने के कारण स्त्री को घोर अत्याचारों का सहन करते-करते अपनी जीवन-नौका डुबानी पड़ती है। आइए, हम एक दो उदाहरणों द्वारा आपको इस अवस्था का परिचय कराएँ।

महाशय 'क' एक उच्चकुलोत्पन्न व्यक्ति हैं। उन्होंने अङ्गरेज़ी की उच्चकोटि की शिक्षा प्राप्त की है और वे इलाहाबाद विश्वविद्यालय के ग्रेजुएट भी हैं। आपका विवाह हुए १०-१२ वर्ष व्यतीत हो चुके। दुर्भाग्य से आपको स्त्री सुन्दर नहीं मिली। आप कभी उसके पास नहीं जाते। उससे घृणा करते हैं और इधर-उधर मारे-मारे फिरते हैं। बेचारी अबला अपने इसी दोष के कारण

अपने जीवन के सबसे सङ्कटपूर्ण और भयङ्कर अवसर को चुपचाप आँसू बहाकर काट रही है।

इसी रूप-दोष के कारण स्त्री पति-प्रेम ही नहीं, कुटुम्बियों का भी प्यार खो बैठती है। उसे किसी चीज़ के माँगने का हक़ नहीं रहता और न उसकी अभिलाषा कोई अभिलाषा समझी जाती है। आग लग जाय इस काली शक्ल पर, भाड़ में जाय ऐसी बदसूरत चुड़ैल, चूल्हे में जाय ऐसी विकराल देवी, ये ही सुमधुर विशेषण हैं, जो उनकी योग्यता और सम्मान को प्रकट कर सकते हैं। इतना ही नहीं, इस रूप की चाह के कारण लड़कियों को बड़ी ताड़ना दी गई और उन्हें तड़प-तड़प कर प्राण दे देने पड़े। इसी रूपके कारण ऐसी-ऐसी घटनाएँ घटित हो चुकी हैं, जिन्हें सुनकर रोमाञ्च हो आता है और शरीर काँप उठता है। ऐसी-ऐसी गुप्त घटनाएँ घटित हो जाती हैं, भीषण हत्याकाण्ड हो जाते हैं कि पता लगाने पर आज भारत के अनेक सम्भ्रान्त परिवार घोर सङ्कट में पड़ सकते हैं। यहाँ हम एक परिवार की ऐसी ही दुर्घटना का हाल सुनाते हैं, जहाँ सुन्दरी न होने के कारण एक नहीं, दो दो लड़कियाँ के प्राण तड़पा-तड़पा कर निकाल लिए गए, उन पर ऐसे-ऐसे पाशविक अत्याचार किए गए कि जिनकी कल्पनामात्र से ही शरीर काँप उठता है। उस परिवार में जब बालिका विवाहित होकर आई तो रूप की चर्चा प्रारम्भ हुई। विचारणीय बात तो यह है कि उक्त कुटुम्ब में न तो पति-देव ही सुन्दर थे और न उनकी माता या अन्य लोग ही।

किन्तु, वे तो रूप के उपासक थे। उन्हें वह साधारण-रूप वाली बालिका क्यों पसन्द आने लगी। बस, तय हुआ कि इससे पिण्ड छुड़ाना चाहिए। फिर क्या था, सरल हृदया बालिका पर अत्याचारों का प्रारम्भ हो गया। बेचारी स्त्री सीधी-सादी थी। वह अपने पतिदेव और सास-श्वसुर का कहना मानना चाहती थी, उनकी आज्ञा के विरुद्ध कुछ भी करना उसे इष्ट न था। फल यह हुआ कि उसे पद-पद पर सङ्कट का सामना करना पड़ा। दाने-दाने के लिए तरसना पड़ा; यहाँ तक कि कई दिन तक तो आज्ञा-विरुद्ध उसे शौच तक से न निपटने दिया। लड़की भूखों मरने लगी, उसे ताड़ना दी जाने लगी। जब कभी वह लड़की खाने बैठती तो बासी अन्न, और वह भी बहुत थोड़े अंश में उसे दिया जाता। हाँ, ज्योंही बाहर की स्त्रियाँ आ जातीं, त्योंही उसके आगे थाली में इतना अधिक भोजन रख दिया जाता कि जिसे देखकर बाहर की औरत उसे महान् फूहड़, भुखमरी और नीच समझतीं। वह बालिका यह सब देखा-सुना करती। किसी कुटुम्बी के विरुद्ध वह एक शब्द भी नहीं कहना चाहती थी। कभी उसने अपने दुख की शिकायत किसी से न की। वह मन ही मन अपने भाग्य पर विचार किया करती, किन्तु उसे इस राक्षसी अत्याचार से बचाने वाला कौन था? आह! जब कभी वह सोकर उठती तो कार्याधिक्य से उसे शौचादि में विलम्ब हो जाता और ज्योंही वह शौच के लिए जाना चाहती, त्योंही उसे झिड़कियाँ मिलतीं और आज्ञा न दी जाती। हाय हाय! वह लोटा वैसे ही रख देती और इस प्रकार एक दो दिन नहीं, कई दिन

अपने जीवन के सबसे सङ्कटपूर्ण और भयङ्कर अवसर को चुपचाप आँसू बहाकर काट रही है।

इसी रूप-दोष के कारण स्त्री पति-प्रेम ही नहीं, कुटुम्बियों का भी प्यार खो बैठती है। उसे किसी चीज़ के माँगने का हक़ नहीं रहता और न उसकी अभिलाषा कोई अभिलाषा समझी जाती है। आग लग जाय इस काली शक्ल पर, भाड़ में जाय ऐसी बदसूरत चुड़ैल, चूल्हे में जाय ऐसी विकराल देवी, ये ही सुमधुर विशेषण हैं, जो उनकी योग्यता और सम्मान को प्रकट कर सकते हैं। इतना ही नहीं, इस रूप की चाह के कारण लड़कियों को बड़ी ताड़ना दी गई और उन्हें तड़प-तड़प कर प्राण दे देने पड़े। इसी रूपके कारण ऐसी-ऐसी घटनाएँ घटित हो चुकी हैं, जिन्हें सुनकर रोमाञ्च हो आता है और शरीर काँप उठता है। ऐसी-ऐसी गुप्त घटनाएँ घटित हो जाती हैं, भीषण हत्याकाण्ड हो जाते हैं कि पता लगाने पर आज भारत के अनेक सम्भ्रान्त परिवार घोर सङ्कट में पड़ सकते हैं। यहाँ हम एक परिवार की ऐसी ही दुर्घटना का हाल सुनाते हैं, जहाँ सुन्दरी न होने के कारण एक नहीं, दो दो लड़कियों के प्राण तड़पा-तड़पा कर निकाल लिए गए, उन पर ऐसे-ऐसे पाशविक अत्याचार किए गए कि जिनकी कल्पनामात्र से ही शरीर काँप उठता है। उस परिवार में जब बालिका विवाहित होकर आई तो रूप की चर्चा प्रारम्भ हुई। विचारणीय बात तो यह है कि उक्त कुटुम्ब में न तो पति-देव ही सुन्दर थे और न उनकी माता या अन्य लोग ही।

किन्तु, वे तो रूप के उपासक थे। उन्हें वह साधारण-रूप वाली बालिका क्यों पसन्द आने लगी। बस, तय हुआ कि इससे पिण्ड छुड़ाना चाहिए। फिर क्या था, सरल हृदया बालिका पर अत्याचारों का प्रारम्भ हो गया। बेचारी स्त्री सीधी-सादी थी। वह अपने पतिदेव और सास-श्वसुर का कहना मानना चाहती थी, उनकी आज्ञा के विरुद्ध कुछ भी करना उसे इष्ट न था। फल यह हुआ कि उसे पद-पद पर सङ्कट का सामना करना पड़ा। दाने-दाने के लिए तरसना पड़ा; यहाँ तक कि कई दिन तक तो आज्ञा-विरुद्ध उसे शौच तक से न निपटने दिया। लड़की भूखों मरने लगी, उसे ताड़ना दी जाने लगी। जब कभी वह लड़की खाने बैठती तो बासी अन्न, और वह भी बहुत थोड़े अंश में उसे दिया जाता। हाँ, ज्योंही बाहर की स्त्रियाँ आ जातीं, त्योंही उसके आगे थाली में इतना अधिक भोजन रख दिया जाता कि जिसे देखकर बाहर की औरत उसे महान् फूहड़, भुखमरी और नीच समझतीं। वह बालिका यह सब देखा-सुना करती। किसी कुटुम्बी के विरुद्ध वह एक शब्द भी नहीं कहना चाहती थी। कभी उसने अपने दुख की शिकायत किसी से न की। वह मन ही मन अपने भाग्य पर विचार किया करती, किन्तु उसे इस राक्षसी अत्याचार से बचाने वाला कौन था? आह! जब कभी वह सोकर उठती तो कार्याधिक्य से उसे शौचादि में विलम्ब हो जाता और ज्योंही वह शौच के लिए जाना चाहती, त्योंही उसे झिड़कियाँ मिलतीं और आज्ञा न दी जाती। हाय हाय! वह लोटा वैसे ही रख देती और इस प्रकार एक दो दिन नहीं, कई दिन

योंही उसे घोर कष्ट में बिताने पड़े। आख़िर मल फूट पड़ा, पेट फूल गया, फिर क्या था और भी दुर्गति की गई। उसे असावधान, फूहड़ और दरिद्रा कह कर सताया जाने लगा। फिर क्या-क्या नहीं किया गया? ताड़ना दी गई, वातों से पीटा, डण्डों से मारा, शारीरिक बल काम में लाया गया, लोहा और अग्निका भी उपयोग किया गया और इस प्रकार उस निरीह बालिका का जीवन अपहरण कर लिया गया। कैसी पुरदर्द घटना है। क्या कोई रञ्जदिल भी इसे पढ़कर बिना पसीजे रह सकता है? पर नहीं, हमारे समाज में ऐसे-ऐसे एक दो नहीं, सैकड़ों, सहस्रों कठोर हृदय व्यक्ति विद्यमान हैं, जिनका हृदय मृत हो गया है और जो अत्याचार को केवल मनोरञ्जन समझते हैं। न जाने इस प्रकार कितनी अबलाएँ भारत में प्रतिदिन कष्ट भोग-भोग कर अपने जीवन की घड़ियाँ काट रही हैं।

गृहस्थी का ज्ञान साधारण ज्ञान नहीं है। यह एक पूरा शास्त्र है और इसको भली-भाँति समझ सकना और समझ कर उसी प्रकार आचरण कर सकना तो और भी कठिन है। स्त्रियाँ इसी गृहस्थी-ज्ञान के अभाव में कौटुम्बिक अत्याचार का शिकार होती हैं। कुटुम्ब में सब प्रकार के व्यक्ति होते हैं और प्रत्येक की रुचि, गति और मति, भिन्न प्रकार की होती है। किन्तु, समष्टि रूप में गृहस्थी का सञ्चालन इस प्रकार किया जा सकता है कि किसी को शिकायत का मौक़ा न मिले। पर, यह तभी हो सकता है, जब पुरुष भी गृह-सञ्चालन में दक्ष हों। प्रायः देखा जाता है कि

गृहस्थी की साधारण बातों में बड़ा बखेड़ा खड़ा हो जाता है। जो काम बड़ी सरलतापूर्वक किया जा सकता था, उसके लिए बड़ा तितम्बा रचा जाता है और जिस काम के करने में विशेष सावधानी की आवश्यकता होती है, उसे बड़ी लापरवाही से किया जाता है। फल यह होता है कि गृहस्थी सुचारु रूप से सञ्चालित नहीं होती और बात-बात में भयङ्कर उत्पात मच जाता है। पुरुषों के अज्ञान और अनुभवहीनता के कारण स्त्रियों का थोड़ा-बहुत ज्ञान कुछ काम नहीं करता। यदि वे कुछ करना भी चाहती हैं तो तत्काल रोक दी जाती हैं। गृहस्थी के इस अज्ञान के कारण भी स्त्रियों पर घोर अत्याचार हो जाते है। यही नहीं, इस ज्ञान के अभाव में व्यवहारों में भूल हो जाती है, जिससे न केवल कुटुम्ब में अपितु जाति और समाज में भी भयङ्कर विद्रोह मच जाता है, जिसके कारण कुटुम्ब को अनेक आपत्तियों का सामना करना पड़ता है। एक बार यदि स्त्री अपना कर्त्तव्य समझती भी है तो साहस-शून्यता के कारण वह कुटुम्बियों के प्रतिकूल कोई भला कार्य तक नहीं कर पाती।

अनुचित आज्ञा का पालन कराना भी स्त्रियों पर एक प्रकार का अत्याचार करना ही है। हम यह मानते हैं कि स्त्रियों में आज्ञा-पालन एक सद्गुण माना जाता है और जो स्त्रियाँ इसमें निपुण होती हैं, वे बहुधा कुटुम्बियों की प्रियपात्र हो जाती हैं, किन्तु हमारा आपसे यह प्रश्न है कि इस आज्ञापालन के अन्तर्गत रहस्य को भी आपने कभी समझने की चेष्टा की है। आज्ञा देते

समय आपने उसके उचित-अनुचित परिणाम का भी कभी विचार किया है? क्या कभी यह भी सोचा गया है कि अमुक आज्ञा पालन करने योग्य है या नहीं? यदि मान भी लिया जाय कि पति की सभी उचित-अनुचित आज्ञा पालन करना स्त्री का परम कर्त्तव्य है तो भी इस रूढ़िगत विश्वास को एक ओर हटाकर क्यों सत्य और न्याय की दृष्टि से आप इस सिद्धान्त का समर्थन कर सकते हैं—विशेष कर उस अवस्था में जब कि स्त्री और पुरुष दोनों ही मनुष्य-श्रेणी के अन्तर्गत हैं और दोनों ही मानवी अधिकारों से युक्त समाज-सञ्चालन में समानरूप से भाग लेते हैं।

आज्ञा की अवहेलना पाप अवश्य है, किन्तु अनुचित आज्ञा देना एक प्रकार का अत्याचार है, जिसका विरोध करना प्रत्येक ज्ञानवान स्त्री और पुरुष का कर्त्तव्य है। अन्तःकरण की आवाज़ सबसे श्रेष्ठ है और उसकी वाणी के विरुद्ध प्रत्येक आज्ञा अपना कोई आन्तरिक महत्त्व नहीं रखती। देखा गया है कि इन अनुचित आज्ञाओं के पालन ने सैकड़ों स्त्रियों के प्राण ले लिए हैं। यह तो घोर स्वेच्छाचारिता और निरङ्कुशता है; यह तो मानवी अधिकार के विरुद्ध कार्य है। आज्ञा दे देना, आज्ञा पालन करने से कहीं कठिन है। परन्तु, पुरुष-जाति तो इसका विचार नहीं करती। वह तो धर्मशास्त्र के प्रमाणों द्वारा, मुक्ति-मार्ग के समर्थन द्वारा, इस बात को सिद्ध कर सकती है कि चाहे जैसी आज्ञा हो, उसे मानना स्त्रियों का परम धर्म है। यही तो कारण

है कि हमारे कुटुम्ब में घोर विषमता उत्पन्न हो गई है। एक ओर की शक्ति जाग्रत हो रही है और दूसरी ओर उसका ह्रास हो रहा है। जीवन में न तो कोई नवीनता आती है और न उसके साथ सहयोग-शक्ति का ही अनुभव होता है। बस, आज्ञा देना और आज्ञा पालन, यही पुरुष और स्त्री का धर्म रह गया है। हम तो इसे मानसिक अत्याचार समझते हैं।

इस प्रकार का अत्याचार कदापि न हो, यदि पति-पत्नी का सम्बन्ध भली-भाँति समझ लिया जाय। आश्चर्य तो यह है कि पति-पत्नी अपने सम्बन्ध की उपयोगिता नहीं समझते। इसका मुख्य सम्बन्ध विवाह से है, आगे चलकर हम इसका वर्णन करेंगे। यहाँ तो वसुन्धरा के लेखानुसार हम इतना ही कहना चाहते हैं कि स्त्री-समाज की समुन्नत दशा होने से ही पुरुष गौरवान्वित हो सकते हैं। जब तक स्त्री-जाति पर अत्याचार होते रहेंगे, तब तक वह अधोगति की ओर ही अग्रसर होती रहेगी। जब तक स्त्री-जाति का इस अधोगति से उद्धार न होगा, तब तक हमारी अवस्था नहीं सुधर सकती। विवाह में पुरुष प्रतिज्ञा करता है कि मैं प्रत्येक कार्य में तुमसे पूछकर हाथ डालूँगा। परदेश में तुमसे पूछ कर जाऊँगा और तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध कोई काम न करूँगा। यहाँ तक कि पति और पत्नी दोनों मिलकर ही यज्ञादि कार्य सम्पादन कर सकते हैं। पत्नी के बिना पति कोई कार्य नहीं कर सकता। यह सब कुछ होने पर भी, शास्त्रकारों के इतना आदर देने पर भी पुरुष स्त्रियों को पाँवों की जूती

समझते हैं। स्वयँ कष्ट उठाकर—सर्दी सह कर भी—स्त्री बच्चे को सूखे में सुला कर स्वयँ गीली जगह पर सोती है। स्वयँ पसीने में तरबतर होने पर भी गर्मी में बच्चे को पङ्खा झलती है—यहाँ तक कि एक बार मृत्यु-शय्या पर होने पर भी वह साहस कर पुरुषों की सेवा करना चाहती है—उनकी कृपा और आशीर्वाद प्राप्त करना चाहती है।

किन्तु, पुरुष तो उनके इस कार्य को एकदम साधारण समझते हैं। वे स्त्रियों के इस उच्च आत्म-त्याग को बिलकुल तुच्छ दृष्टि से देखते हैं, यहाँ तक कि उसका कुछ महत्व ही नहीं समझते। बच्चा उत्पन्न करते समय स्त्रियों को जो यन्त्रणाएँ सहनी पड़ती हैं, उन्हें उनके सिवा और कौन अनुभव कर सकता है। २५ सैकड़ा स्त्रियों की मृत्यु प्रसूति-काल में होती है। बच्चे को सुखी, निरोग और हृष्ट-पुष्ट रखने के लिए माता को खटाई मिर्च आदि समस्त खाद्य वस्तुओं का परित्याग करना पड़ता है, इतने पर भी पुरुषों को यह घमण्ड है कि हम ही स्त्रियों को जिलाने वाले और हम ही उनके कर्त्ता-धर्त्ता हैं। पुरुषों को संयमी होने का पूरा घमण्ड है। वे स्त्रियों को यह भी दोष देते हैं कि उनमें काम आठ गुना है। 'आहारो द्विगुणस्तासां कामाश्चाष्ट गुणः स्मृतः' अर्थात्, स्त्रियों का आहार दुगुना और काम आठ गुना है। इन्हीं सब बातों को दोहराते हुए स्त्रियों के निवास के लिए ऐसी काल-कोठरी तलाश करते हैं कि जहाँ पक्षी भी पर न मारने पावे। अन्त में यह दशा होती है कि शहरों के दूषित जल-वायु से कोई न कोई ऐसी

भयानक बीमारी उन्हें घेर लेती है कि जिससे वे काल के गाल में गए बिना बच नहीं सकतीं। यदि सच पूछा जाय तो स्त्रियों के दूषित होने या न होने के हेतु पुरुष ही हैं। स्त्रियाँ अपनी जबान से भला-बुरा कुछ भी नहीं कह सकतीं। हम अन्यत्र हिन्दू-स्त्रियों की उत्तरोत्तर ह्रासजनक अवस्था का वर्णन करेंगे। यहाँ तो केवल यह लिखना चाहते हैं कि पति-पत्नी का सम्बन्ध न समझ कर स्त्रियों पर ही सारा दोष डाला जा रहा है, जिसके कारण वे अन्याय और अत्याचार की पात्री हो रही हैं। कहाँ तो यह कथन कि—

गृहिणी सचिवः सखी मित्रः,
प्रिय शिष्या ललिते कलाविधौ।
करुणा विमुखेन मृत्युना,
हरता त्वां वदकिन मेहतम् ॥

और कहाँ आज स्त्रियों की यह घोर अवहेलना?

अत्याचारों को बढ़ाने में गृह-कलह ने और भी सहायता दी है। सम्प्रति, जब कि जीवन-सङ्ग्राम का प्रश्न बड़ा कठिन हो रहा है, कौटुम्बिक जीवन भी अतिशय नीरस और आपत्तियुक्त बन गया है। एक तो अशिक्षा और दूसरे व्यावहारिक अज्ञान के कारण हमारे कुटुम्बों में से प्रेम-सम्बन्ध उठता जा रहा है और इसका विशेष दोष और उस दोष का सारा फल स्त्रियों के ही मत्थे मढ़ा जा रहा है। यह ठीक है कि अज्ञानवश स्त्रियों में

परस्पर कलह उत्पन्न होती है और वे मूर्खता के आवेश में बड़े
से बड़ा अनर्थ तक कर डालती हैं, किन्तु विचारणीय बात तो
यह है कि उसका परिणाम आपत्तिजनक किस प्रकार होता है
और स्त्रियाँ उसे कहाँ तक भोगती हैं। कुछ स्वार्थ, कुछ लोभ और
कुछ झूठी जलन के कारण स्त्रियाँ प्रायः कुटुम्ब में कलह उत्पन्न
करा देती हैं। जो पुरुष विचारशील और समझदार होते हैं, वे
तो इन बातों की उपेक्षा कर जाते हैं; हाँ, जो क्षण-क्रोधी और
क्षण-आनन्दी जीव होते हैं, वे तुरन्त ही स्त्रियों के कहने में आकर
एक दूसरे की स्त्रियों पर घोर अत्याचार कर डालते हैं। यहाँ तक
कि ऐसे कलह के कारण अनेकों स्त्रियों ने आत्म-हत्या कर
डाली। बहुतेरी स्त्रियों के कलेजे छुरियों से भोंक दिए गए।
अनेकों के सिर काट डाले गए और बहुतेरी तरसा-तरसा कर
मार डाली गईं। इस बात के एक नहीं, अनेकों उदाहरण मिलते
हैं। केवल सूक्ष्म दृष्टि से देखने भर की देर है। हमारे सामने
हाईकोर्ट से फैसला किए गए बीसों ऐसे मुकदमें हैं, जिनमें केवल
गृह-कलह के कारण ही पुरुषों ने मनमाने अनाचार कर डाले।
खेद है कि पुरुष-जाति भी इतनी दुर्बल और स्वार्थ-प्रिय है कि
वह क्षुद्र गृह-कलह के भुलावे में पड़कर अपने सुखी कुटुम्ब का
सत्यानाश कर बैठती है। यह नहीं कि स्त्रियों का अपराध न हो
किन्तु जो कुछ होता है वह पुरुषों की ग़लती से ही होता है।
स्त्रियों का विचार स्वाधीनता प्रदान करने, उन्हें मानवी अधिकारों
को दिलाने और उनकी बुद्धि विकसित करने के लिए तो पुरुषों

क पास समय नहीं रहता, किन्तु साधारण और कभी कभी गम्भीर परिणाम वाली गृह की थोथी बातों का प्रकाण्ड-काण्ड रचकर वे स्त्रियों पर ज़ोर और ज़्यादती कर डालते हैं। उस समय वे अपनी स्त्री की झूठी बातों को एकदम स्वीकार कर अन्य स्त्रियों यहाँ तक कि अपनी माँ-बहिन और ऐसी ही स्त्रियों के प्रति बड़ा क्रूर व्यवहार करते हैं और अपनी करनी न करनी सभी कुछ कर डालते हैं, कोई कसर नहीं रखते। इस गृह-कलह ने स्त्रियों का सुख-भोग हराम कर दिया है। पुरुषों को भी इसने चैन से सोने नहीं दिया है। क्या समाज के पवित्र जीवन के नाम पर यह अत्याचार नहीं ?

ज्यों-ज्यों हम समाज की अन्तर्गत अवस्था का दर्शन करते हैं, त्यों-त्यों हमें दुख और क्षोभ से थकित हो जाना पड़ता है। एक तो वैसे ही हमारे यहाँ शिक्षा का अभाव है, दूसरे जो कुछ एकाध प्रति सैकड़ा शिक्षा दी भी जाती है, उसके परिणाम बड़े भयङ्कर निकलते हैं। प्रथम तो शिक्षा ही इतनी भद्दी और गन्दी दी जाती है कि स्त्रियाँ पढ़-लिख कर बहुधा अपने कर्त्तव्य से च्युत हो जाती हैं। हमारे विचार से, शिक्षा के नाम से स्त्रियों पर यह भी एक अत्याचार है। दूसरे जो थोड़ी-बहुत लड़कियाँ पढ़ती भी हैं, वे अशिक्षित और गँवार कुटुम्ब में फँसकर अपनी दुर्दशा करा बैठती हैं। कुछ तो हमारा अपना अनुभव है और कुछ दूसरों का अनुभव है कि लड़कियों का पढ़ना-लिखना पाप समझा जाता है। वाशेष कर उनका यही पढ़ना-लिखना उन्हें घोर सङ्कट में डा।

देता है। पढ़ी-लिखी लड़की जब ससुराल पहुँचती है तो अशिक्षि
कुटुम्ब में उसका कोई अच्छा सम्मान नहीं होता। वह लड़क
कुटुम्ब का सब काम करने पर भी, जब कभी अवकाश पाक
कोई पुस्तक पढ़ने बैठती है तो फिर ताने बाजियों के मारे उसक
नाकों दम हो जाती है। पास-पड़ोस और टोले-मुहल्ले की गँवा
औरतें इकट्ठी होती हैं और तरह-तरह की जली-भुनी सुनाक
उसे कायल और लज्जित कर देती हैं। काम में ज़रा-सी भी त्रुटि
होने पर उसकी ऐसी ख़बर ली जाती है कि सिवा रोने के उसे कोई
दूसरा उपाय ही नहीं सूझता। हमने तो यहाँ तक देखा है कि जह
अशिक्षित घर में शिक्षित लड़की आई कि उसे बदनाम करना शुरू
कर दिया गया—उसके चरित्र और आचरण को लाञ्छित करना
प्रारम्भ कर दिया गया। घर में जब वह लड़की कुछ लिखती है तो
बेशर्म औरतें और बेहया लड़के कानाफूसी करते हैं। यह भी कह
दिया जाता है कि अमुक अवसर पर वह घर की खिड़की से झाँक
रही थी। उसने अमुक आदमी को पत्र दिया और न जाने
क्या-क्या कहा। वह तो अपने मायके यहाँ की सब बुराई लिख कर
भेजती है और हम सबको बेवक़ूफ़ समझती है। पतिदेव से कहा
जाता है कि लड़की बड़ी बेहया है। उसे पढ़े-लिखे होने का बड़ा
घमण्ड है, वह बड़े-बूढ़ों का सम्मान नहीं करती। इतना सुनते ही
पठित, किन्तु मूर्ख पतिदेव आग-बबूला हो जाते हैं। उसे ख़ूब
मारते-पीटते और गालियाँ सुनाते हैं। उसे नाना प्रकार के कष्ट
दिए जाते हैं। इस प्रकार वह शिक्षिता रमणी केवल अपनी शिक्षा

के कारण इतना कष्ट भोगती है। एक नहीं, पचासों ऐसे उदाहरण मौजूद हैं, जहाँ इसी शिक्षा की बदौलत या तो स्त्रियाँ ज़हर खाकर मर गई हैं या वे कष्ट सह-सहकर, बीमार होकर मृत्यु को प्राप्त होगई हैं अथवा वे तड़प-तड़पकर अपना शेष जीवन व्यतीत करती हैं। कहिए, क्या किया जाय? सभी तरह से तो आफ़त है।

कहीं कहीं स्त्रियाँ अपने आचरण की उपयुक्त स्वतन्त्रता के कारण भी घोर अत्याचार सहती हैं। हमारे समाज में ऐसे कुटुम्बों की संख्या थोड़ी नहीं, जहाँ स्त्रियों के आचरण की परिमित स्वतन्त्रता भी उनके जीवन को भयङ्कर बना देती है—भयङ्कर इसलिए कि उसके कारण उन्हें भयङ्कर अत्याचारों का सामना करना पड़ता है। आचरण की स्वतन्त्रता और स्वच्छन्दता में बहुत अन्तर है। बहुधा लोग स्वतन्त्रता का अर्थ स्वच्छन्दता के रूप में लेने की भूल करते हैं। स्त्रियाँ भी मनुष्य हैं और वे भी सुख-दुख का अनुभव करती हैं। जब वे गृह-स्वामिनी कहलाती हैं तो कुटुम्ब के लाभ के लिए उन्हें स्वाधीनतापूर्वक गृहस्थी का प्रबन्ध करने और अपने व्यवहारों की योजना करने का पूरा-पूरा अधिकार है। उनके इस अधिकार में बाधा डालना क्या उनका अपमान या अत्याचार करना नहीं है? आप स्त्रियों से क्या चाहते हैं? आप यह भी चाहते हैं कि आपकी सेवा भी ठीक हो; गृहस्थी भी सुधरे; कुटुम्ब वाले भी सुखी रहें? यह सब ठीक है; किन्तु, आप कभी यह भी चाहते हैं कि स्त्रियाँ भी सुखी रहें? वे भी अपनी उन्नति और विकास करें? वे भी परमात्मा की दी हुई प्रकृत-शक्ति का उपयोग

करें ? न्याय के अनुकूल वे भी अपने धर्म और आचरण की योजना करें ? यदि आप यह नहीं चाहते—और परिस्थिति बतला रही है कि आप नहीं चाहते—तो कहना पड़ेगा कि आप सृष्टि का नाश चाहते हैं, प्रकृति को पलटना चाहते हैं और प्रकृत-स्वाधीनता में बाधा पहुँचाते हैं। इसी से जब स्त्रियों में हम कुछ आचरण की स्वाधीनता देखते हैं तो चट हमें खटका पैदा हो जाता है। हम कहने लगते हैं, वह तो स्वेच्छाचारिणी है, वह स्वच्छन्द है, किसी के वश की नहीं। फिर क्या होता है ? वही साधारण उपाय, चट बदनाम करना प्रारम्भ कर दिया। इधर-उधर की शिकायतें शुरू कीं। बात-बात में खोट निकालना आरम्भ किया। फल यह होता है कि स्त्री का हृदय गिर जाता है। कुटुम्ब को सुधारने और उसे आदर्श बनाने की उसकी समस्त आशाओं पर पानी फिर जाता है। फिर वही विषमता और अनियमितता उत्पन्न हो जाती है। न वह सुख रहता है और न सौभाग्य ही। हाय ! अबला-जाति, तुम्हारा जन्म क्या इतना महत्वहीन है कि उसका कुछ भी मूल्य नहीं ? तुम्हारी कोख से बड़े राष्ट्र और समाज के उद्धारक उत्पन्न होते हैं। फिर भी तुम्हारी बुद्धि कुछ भी नहीं, तुम्हारा ज्ञान कुछ भी नहीं। तुम्हें अपने आचरण तक का अधिकार नहीं। इस क्रूरता का भी कहीं ठिकाना है ?

सन्देह करना एक बड़ी बुराई है। कहते हैं कि शक की दवा लुकमान हकीम के पास भी नहीं। इसका यही अर्थ है कि सन्देह-कर्ता कभी सन्तुष्ट नहीं हो सकता। हमारे समाज में इस सन्देह

ने खूब गहरी जड़ जमाई है। हम बात-बात में सन्देह करते और फूँक-फूँक कर पैर रखते हैं। यदि किसी अच्छाई के लिए यह सन्देह होता, यदि किसी उच्चभाव से प्रेरित होकर यह सन्देह किया जाता तो ग़नीमत थी। परन्तु, हमारे समाज में सन्देह का मुख्य सम्बन्ध चरित्र से हो गया है। इसी सन्देह के कारण हम प्रत्येक स्थान में खिन्न-मन रहते हैं। हमें किसी की बात भली नहीं प्रतीत होती, विशेषकर स्त्रियों के सम्बन्ध में तो हमारे इस सन्देह ने बड़ा ग़ज़ब ढाया है। हमें तो लिखते लज्जा प्रतीत होती है; पर घटनाओं को देखकर लिखना ही पड़ता है। हमारे पुरुष स्त्रियों पर अब घोर सन्देह करने लगे हैं। सन्देह किस बात पर? चरित्र पर? हा! हन्त! क्या हमारी गृह-देवियाँ इतनी पतित हो गईं कि अब उनके पतिदेव स्वयँ ही उनके चरित्र पर सन्देह करने लगें? हम यह नहीं कहते कि यह सन्देह सर्वांश में झूठा है, किन्तु यह तो कह सकते हैं कि इसका अधिकांश भ्रमपूर्ण है। मनुष्य अपने ही अनुभव से सब बातें सीखता है। इन दिनों जब कि पुरुष-समाज में चरित्रहीनता बढ़ती जा रही है, हमारे विचार उत्तरोत्तर भ्रष्ट और दूषित हो रहे हैं तो कोई आश्चर्य नहीं कि हमें अपनी स्त्रियों के सम्बन्ध में इस प्रकार का सन्देह हो। परन्तु, हम पूछते हैं कि क्या यह सरासर अत्याचार नहीं है? भला आप ही बतलाएँ कि आपने स्त्रियों को किस योग्य रक्खा है? आपने उन्हें कोई भी तो अधिकार ऐसा नहीं दिया है, जिसके कारण वे इतना स्वच्छन्द हो जाँय कि पतियों की परवाह न करें। दो चार कुलटाओं की

बात जाने दीजिए। उन सती स्त्रियों का ज़िक्र लीजिए जिनके चरित्र पर वृथा सन्देह कर आपने उन्हें किसी काम का न रक्खा और अन्त में उन्हें प्राण दे देने के लिए विवश किया। हमने इस प्रकार के पचासों उदाहरण एकत्र किए हैं जिनमें सती स्त्रियों के चरित्र पर झूठा सन्देह किया गया है और अन्त में उन ललनाओं को अपने सत्य-धर्म की रक्षा के लिए इस अत्याचार के प्रतिरोध में प्राण खोने पड़े हैं। हम तो पुरुषों से पूछते हैं कि कृपया यह बतलाइए कि आप अपनी स्त्रियों के सम्मुख कहाँ तक सच्चे और विश्वासपात्र साबित हुए हैं? क्या आपकी दृष्टि निरन्तर इधर-उधर नहीं घूमा करती? क्या आप में से अधिकांश रूप और सौन्दर्य के जाल में फँसकर स्त्रियों का धर्म नहीं नष्ट कर देते इन कटु किन्तु, सत्य शब्दों के लिए क्षमा कीजिए। पहिले आप अप आचरण सुधारिए, तब दूसरों के चरित्र पर लाञ्छन लगाइए। ह स्त्रियों की प्रकृति का अध्ययन कर आपको विश्वास दिलाते हैं ि कोई स्त्री इतनी निर्लज्ज नहीं हो सकती कि स्वयँ पथ-भ्रष्ट ह जाय। उसे तो नष्ट-भ्रष्ट करने वाले आप ही हैं। आप क्य अपनी स्त्री को सन्तुष्ट नहीं रखते? आप सन्देह को अवसर ह क्यों देते हैं? स्त्रियों में अब भी धर्म है—ईमान है, ईश्वर क भय है और अपने कर्त्तव्य का ध्यान है। उनकी सरलता, भोलाप और शुद्ध स्वभाव का अनुचित लाभ उठाकर आप उन्हें बदनाम करते हैं, यह कुछ अच्छा नहीं करते। यह भी समाज और स्त्रिय के नाम पर घोर अत्याचार है।

पुरुष की अयोग्यता के कारण ही बहुधा स्त्री अत्याचार का शिकार बनती है। अनेक पुरुष कर्तव्य से दूर भागते हैं; वे पौरुष और साहस से किनारा काटते हैं और उसका बुरा असर होता है स्त्रियों पर। वे अपनी अयोग्यता को तो प्रकट नहीं करते, उलटे स्त्रियों को घोर कष्ट देते हैं। अनेक ऐसे निकम्मे आदमी हमने देखे हैं जो अपनी असमर्थता को छिपाते हैं और स्त्रियों को व्यर्थ ही धमकाते, डराते और तङ्ग करते हैं। उनसे अपने तो कुछ करते नहीं बन पड़ता, लोक-लज्जा और समाज-भय के कारण वे स्त्रियों पर ही अत्याचार कर अपनी मर्दानगी का परिचय देते हैं। अयोग्यता से हमारा अर्थ केवल शारीरिक अयोग्यता से ही नहीं है, अपितु उन सब प्रकार की त्रुटियों से है जिनके कारण कोई व्यक्ति योग्य नहीं कहा जा सकता और जो पुरुष के जीवन को भार-स्वरूप बना देती हैं।

यदि हमारे कुटुम्बों में प्रेम का अभाव न हो तो अत्याचार बहुत कम हो जाय और त्रुटियों तथा शिकायतों का मौक़ा ही न मिले। इस प्रेम के सम्बन्ध में ज़रा हम विशेष रूप से लिखना चाहते हैं। कारण कि सारे अत्याचारों की जड़ प्रेम का अभाव ही है। यदि स्त्री और पुरुष में सच्चा प्रेम हो तो कभी बुराइयों को मौक़ा न मिले, कभी अन्याय या ज़्यादती की शिकायत न हो। जहाँ सच्चा प्रेम होगा, वहाँ दोष ढूँढ़े भी न मिलेंगे। हमारे कौटुम्बिक जीवन में प्रेम का अभाव बड़ा खटकने वाला है। जहाँ प्रेम का कुछ सञ्चार होता भी है, वहाँ स्वार्थ की भावना तत्काल प्रकट होने लगती है। एक तो प्रेम ही नहीं, यदि हुआ भी तो

स्वार्थ के लिए। ऐसी अवस्था में बालू की दीवार कब तक ठहर संकती है। एक न एक दिन भड़भड़ाकर गिर ही पड़ेगी। पुरुषों ने प्रेम के नाम पर भी स्त्रियों पर अनेक अत्याचार किए हैं। देहली के श्रीयुत अमरनाथ अत्र ने एक बार लिखा था कि पुरुषों के क़ौलोक़रार अण्डे के समान कभी-कभी ही पूरे उतरते हैं। ऐसे पुरुष जो अपने क़ौलोक़रार को, चाहे वे विवाह-सम्बन्धी हों या अन्य विषयक, निबाहते हों, रेडियम धातु के समान कम हैं। कभी यह कहा जाता है कि देव अंश यदि कुछ है तो वह पुरुष ही में है। तो क्या इससे यह समझना चाहिए कि पुरुष यदि पूरे नहीं तो अधूरे देवता अवश्य हैं। हमारी समझ में तो यह बात बिल्कुल नहीं आती। हमारे विचार में तो एक सुन्दर स्त्री स्वयँ ही देवी है और उसके दर्शनों की अभिलाषा पुरुषमात्र के हृदय में सदैव ही बनी रहती है और शायद इसी कारण स्त्रियों को देवी शब्द से सम्बोधन भी किया जाता है।

संसार को धोखे की टट्टी बतलाया गया है और यहाँ की प्रत्येक वस्तु को 'मायावी' कहा गया है और सब मायावी वस्तुओं की चोटी पर स्त्री को रक्खा गया है। अर्थात्, स्त्री 'धोके की टट्टी' तथा ऐसी मायावी वस्तु है जो पुरुष के आराम के लिए तो अवश्य बनाई गई है, किन्तु साथ ही साथ भोले-भाले मनुष्य को स्त्री से सावधान रहने के लिए भी कहा है, जिससे ऐसा न हो कि वेचारा 'मायावी' के जाल में फँसकर दीन-दुनिया कहीं का भी न रहे। धन्य है!

किन्तु, ऐसी-ऐसी बातों के लेखक—यदि कुछ सन्तोषजनक बात है तो यही है—देव-तुल्य, परमपूज्य पुरुष महाशय ही हैं, जिन्होंने अपने भाइयों पर तरस खाकर स्त्री-जाति के छल-छिद्र उन्हें खूब ही दिल खोल कर बताए हैं। यहाँ प्रश्न उठता है कि क्या पुरुष-जाति सचमुच ही दोषरहित है ? या पुरुष स्त्री-जाति के सिर सब प्रकार के दोष मढ़कर अपने दोषों को छिपाना चाहते हैं।

शैक्सपियर, जिसका पुरुष तथा स्त्री-सम्बन्धी ज्ञान बराबर है, सौभाग्यवश स्त्रियों ही की ओर अपनी सम्मति देता है। उसका कहना है कि प्रेम-सम्बन्ध में स्त्री ही सराहनीय है। उसके नाटकों में ऑफेलिया, डैसडियोना, जुलियट प्रभृति स्त्रियाँ हैं जो मृत्यु के सामने भी प्रेम-पथ से मुँह नहीं मोड़तीं और ख़ुशी-ख़ुशी अपने प्रेम-देव की मूर्ति अपने हृदय में अङ्कित किए सत्य प्रेम पर न्योछावर हो जाती हैं। डिकेन्स भी, पुरुष होने पर भी सत्य को नहीं छिपाना चाहता। ऑलिवर ट्विस्ट नामक उपन्यास में नैनसी की हृदय-विदारक दशा इस बात का पूरा प्रमाण है कि डिकेन्स का स्त्रियों की प्रेम-दृढ़ता में पूर्ण विश्वास था।

यह कहा जाता है कि स्त्री अपना प्रेम हर समय जताती रहती है और इसी से उसका प्रेम दृढ़ प्रेम नहीं होता; बल्कि वह दिखावे मात्र का प्रेम होता है। इसके अतिरिक्त पुरुष अपना प्रेम कम जताता है, स्त्री से रुष्ट भी होता रहता है। और कभी-कभी उसे मार भी बैठता है। तो भी उसका प्रेम एक दृढ़ प्रेम है, क्यों?

क्योंकि वह दिखावे का प्रेम नहीं है! पुरुष तर्क करने में खूब पटु होते हैं, किन्तु निस्पक्ष भाव से तर्क करने पर भी उनकी जीत नहीं हो सकती। यह बात सुगमतया प्रमाणित की जा सकती है कि बचपन में स्त्री अपने पिता से प्रेम करती है। बड़ी होकर अपने कठोर हृदय प्रेमी के वियोग में आँसू बहाती है। विवाह हो जाने पर तन-मन से अपने पति की सेवा करती है और दिन-रात उसके प्रेम में रँगी रहती है। सन्तान होने पर उसका मोह पुत्र में रहता है, चाहे वह चोर या डाकू ही क्यों न हो। वह लेखक अवश्य ही ठोकर खाकर सत्य से गिर चुका है जो लिखता है कि पुरुष अधिक प्रेम करता है। पुरुष स्वयँ अपने ही को प्यार करता है। उसकी ममता अपने ही लिए है। बचपन से मृत्युपर्यन्त वह अपनी ही चिन्ता में लीन रहता है। कुछ पुरुष अवश्य ऐसे हुए हैं जिन्होंने प्रेम-पथ में दृढ़ता दिखाई है, किन्तु ऐसे पुरुषों की संख्या बहुत थोड़ी है। इस कारण हमारे सिद्धान्त की और भी अधिक पुष्टि होती है।

इस बात से इन्कार ही नहीं किया जा सकता कि पुरुष का प्रेम स्वार्थ से भरा होता है। वह प्रेम ही इस कारण करता है कि प्रेम करने में उसे लाभ ही लाभ दिखाई देता है। उसके विरुद्ध स्त्री प्रेम इसलिए करती है कि प्रेम ही उसका जीवन है, प्रेम के कण्टकमय मार्ग में वह आनन्द से पग रख देती है और इस कष्ट को बड़े हर्ष से सहन कर लेती है। जरा विचारिए तो सही, क्या स्त्री का प्रेम दुख से भरा नहीं है? सच तो यह है

कि उसके प्रेम, सुख तथा दुख-सागर में अधिक अन्तर नहीं है। स्त्री का जीवन एक अनन्त रोदन की क्रमबद्ध साधना है, जिसका प्रत्येक निश्वास जीवन की आकुल लालसाओं के सामने उपहास का व्यङ्ग चित्र उपस्थित कर देता है, इस प्रकार हम देखते हैं कि पुरुष अपने स्वार्थ के आगे, अपनी लालसा के आगे प्रेम की परवाह नहीं करता। जहाँ कहीं उसे स्वार्थ-साधन का अवसर प्राप्त होता है, वहीं वह अपने के प्रेम को तिलाञ्जलि दे देता है। हमारे कुटुम्बों में प्यार का यह अत्याचार दिनोंदिन बढ़ता ही जाता है। भोली-भाली स्त्रियाँ पुरुषों के प्रेम में फँसकर अपना सर्वस्व खो देती हैं, किन्तु पुरुष तो इतना निठुर है कि वह समय पाकर लातों से उसे ठुकरा देता है। स्त्री का हृदय सामने टुकड़े-टुकड़े होकर गिर पड़ता है। तभी तो हमारी इतनी दुरावस्था हो गई है कि हमारे कुटुम्ब सच्चे प्रेम से शून्य हैं। उनमें विषय-भोग और स्वार्थ-साधन के अतिरिक्त कुछ शेष नहीं है। बेचारी अबला-जाति पर प्रेम के नाम पर यह कैसा अत्याचार किया जा रहा है?

मूढ़विश्वास ने अलग ही अन्धेर मचा रक्खा है। इस मूढ़विश्वास के कारण स्त्रियों को अनेक शारीरिक और मानसिक कष्ट सहने पड़ते हैं। इसी विश्वास की लहर में स्त्रियाँ चाण्डालिनी, डाकिनी, राक्षसी और शैतान की नानी समझी जाती हैं। समाचार-पत्रों में हम प्रायः मूढ़विश्वास द्वारा होने वाले अत्याचारों का वर्णन पढ़ा करते हैं। स्त्रियों के विवाहित होकर आने पर यदि

कुटुम्ब में कोई दुखद घटना हो गई तो इसका सारा दोष उसी नव-विवाहिता के सिर मढ़ा जाता है। विवाह के पहिले या पश्चात् किसी अप्रिय घटना का आचरण हो गया तो फिर स्त्रियाँ इस भाँति सताई जाती हैं कि उनके प्राणों की वन आती है। हमने अनेक ऐसे उदाहरण पढ़े हैं जहाँ मूढ़विश्वास के कारण स्त्रियाँ डाकिनी और पिशाचिनी समझी गईं और उन्हें दुनिया से मिटाने के लिए अथवा घोर कष्ट पहुँचाने के लिए कोठरी में बन्द रक्खा गया, उन्हें भूखों मारा गया और प्यास से तड़पाया गया। लोहे की गरम छड़ों से जलाया गया और उनके गुप्त अङ्गों पर गहरी चोट पहुँचाई गई। यह कैसे दुर्भाग्य का विषय है कि हमारे कुटुम्बों में निरन्तर ऐसे या इस प्रकार के अत्याचार होते रहें और हमारे कानों पर जूँ तक न रेंगे। सभ्यता का दावा करने वाले लोग कहाँ हैं ? वे देखें कि शिक्षा और जाग्रति के इस नवीन युग में भी भारतीय समाज कितना अशिक्षित और बर्बर है।

अन्त में कुटुम्ब में होने वाले स्त्रियों के प्रति दुर्व्यवहार का वर्णन कर हम यह प्रकरण समाप्त कर देंगे। हम एकाध उदाहरण द्वारा इस विषय पर प्रकाश डालना चाहते हैं। घटना सत्य है, केवल लेखन शैली का फेरफार है। ज़रा ध्यानपूर्वक पढ़िए।

सुशीला का विवाह नटवर के साथ हुआ था। सुशीला की सास का स्वभाव ज़रा कुटिल होने के कारण घर में दिन-रात अशान्ति फैली रहती थी। बेचारी सुशीला समस्त दुर्व्यवहारों को सहन कर पति के चरणों में चित्त दे अपना जीवन व्यतीत

करती थी। एक दिन की वात है। दोपहर का समय था, नटवर वाहर चला गया था। सुशीला की छोटी ननद अपनी गुड़ियों से खेल रही थी। सुशीला का बच्चा अभी नींद से जाग उठा था, अतः सुशीला उसे दूध पिलाने में लगी थी। इसी समय सास का हुक्म पानी लाने का हुआ। सुशीला ने कहीं इतना कह दिया—जरा ठहर जाओ, मैं दूध पिला लूँ; यदि जल्दी ही है तो छोटी ननद से मँगवालो। इस आज्ञा-भङ्ग से तो सास की देह में आग लग गई। इधर उस लड़की ने आकर एक लकड़ी से सुशीला को मारना शुरू किया और एक लकड़ी ऐसी फेंकी कि बच्चे को जा लगी। बच्चा रो उठा। सास विगड़ कर वोली—"जान-बूझ कर और नोचकर बच्चे को रुला रही है—पानी क्यों नहीं लाती?" इधर वह वालिका झूठ-मूठ रोती हुई माँ के पास पहुँची और पीटे जाने का वहाना किया। भला, अब सास के गुस्से का क्या ठिकाना था! उसने तुरन्त ही लकड़ी उठाकर वेचारी सुशीला की ख़ूब मरम्मत की; साथ ही गालियों की तो वौछार ही कर दी। सुशीला के कष्ट का क्या ठिकाना था! उसने हृदय मसोस कर सब मार सह ली। लड़की ने भी ख़ूब घूँसे-थप्पड़ लगाए और अनाप-शनाप गालियाँ सुनाईं। यदि वात यहीं तक रह जाती तब तो ठीक था, पर अभी तो नटवर नहीं आया था। अभी तो उसके प्राणेश्वर नटवर की ओर से दण्ड मिलना था। सुशीला तो वैसे ही अधमरी हो रही थी। नटवर का आना था कि सास ने दरवाज़े ही से हल्ला शुरू

किया। बोली—"नटवर ! नटवर ! तेरी बहू का सिर बहुत चढ़ गया है। जान-बूझ कर बच्चे को सताया, छोटी को मारा और ज़रा सा काम पानी पिलाने का था, उसके लिए साफ़ जवाब दे दिया। आज तो छोटी को मारा है, कल मुझ पर हाथ उठाएगी। मैं तो बाज़ आई, सम्भाल अपना घर !" यह सुनते ही नटवर का मिज़ाज बिगड़ गया। उसने अन्दर घुसते ही सुशीला को पकड़ लिया और इतनी ज़बरदस्त मार लगाई कि अधमरी सुशीला घायल और बेहोश होकर ज़मीन पर गिर पड़ी। उसके मुँह से ख़ून निकलने लगा, परन्तु पतिदेव का क्रोध फिर भी शान्त न हुआ।

* * *

आधीरात का समय था। सर्वत्र गम्भीर शान्ति छा रही थी। केवल कहीं-कहीं रात्रि के जीवों की चहल-पहल और हवा के सन्नाटे से शान्ति भङ्ग हो जाती थी। ऐसे समय में बेचारी सुशीला कष्ट की ज्वाला से भस्म हो रही थी। आंधीरात होने पर भी नटवर बाहर से न आया था। उसी समय सुशीला अपने जीवन को समाप्त कर देने का उपाय सोच रही थी। उसने पास की खूँटी में डोरी बाँध कर गले में फाँसी लगाया और स्टूल पर चढ़कर खूँटी से नीचे लटक पड़ी। देखते देखते उसके जीवन का अन्त हो गया। सूक्ष्म प्राण स्थूल शरीर को त्याग कर उड़ गया। हाय !

कैसे दुख का विषय है। इन कुसुम-कलियों की जिन्दगी यों नष्ट हो जाय ? उनकी उमङ्गों को यों नष्ट कर दिया जाय ? कहाँ हैं

समाज के सुधारक ? कहाँ हैं सच्चा प्रेम करने वाले पुरुष ? वह रमणी तो यह कहती हुई चली गई :—

तुझसे वेज़ार हूँ जाती हूँ रूये मुल्के अदम ।
मुँह न दिखलाए .खुदा फिर मुझे दुनिया तेरा ॥

वह तो चली गई और कहती गई कि भारत-माता ! मैं तो जाती हूँ और सदा के लिए जाती हूँ, पर दुनियाँ को यह दिखाए जाती हूँ कि—Resistance to try any is an obedience to God.

अभी एक वर्ष पहिले की ही बात है, जब पति और सास-ननद पर एक सङ्गीन अभियोग चल चुका है । उस अभियोग का विस्तृत विवरण पढ़ कर तो हृदय काँप उठता है। यह विश्वास करने को जी नहीं चाहता कि इस सभ्यता के युग में भी स्त्रियों पर ऐसे घोर अत्याचार किए जा सकते हैं। घटना कलकत्ते की है। जो समाचार-पत्रों में इस प्रकार छपी थी :—

एक साल पूर्व नगेन्द्र का विवाह हुआ । उसकी स्त्री का नाम है—आनन्दमयी देवी । उम्र १६ साल की है । हाल ही में गौना हुआ । कहते हैं, जब से लड़की ने ससुराल में पैर रक्खा तभी से पति उसे अक्सर मारता-पीटता रहा । लड़की बराबर चुपचाप यह अत्याचार सहती रही । उसने अपने पिता को भी इसकी कुछ सूचना न दी । हाल में अत्याचार की मात्रा और बढ़ गई । नगेन्द्र ने उसे पाख़ाने में बन्द कर दिया । उसे नित्य एक मुट्ठी

चावल खाने को दिए जाते। जब वह भूख से तड़पती और रोती तो आग में लोहा लाल करके उसका शरीर दाग़ दिया जाता। गत दो महीने से यह काण्ड हो रहा था। इस बीच में लड़की का बाप कई बार अपनी पुत्री को देखने आया, पर यह कह कर कि वह रिश्तेदारी में गई हुई है, उसे हर दफ़े टाल दिया।

पर, इधर कुछ समय से पड़ोसियों पर यह अत्याचार प्रकट हो गया। उन्होंने लड़की के बाप को ख़बर दी। बाप थाने में गया। पुलीस उसके साथ नगेन्द्र के घर में घुस गई और आनन्दमयी के सम्बन्ध में पूछने लगी। पति ने कहा—मैं नहीं जानता। मुहल्ले की भारी भीड़ ने घर घेर लिया। नगेन्द्र की माँ ने भीड़ पर पानी फेंका। इससे बड़ा जोश फैला। अन्त में पुलीस ने छत पर जाकर उस कमरे को ज़बरदस्ती खोला। द्वार खुलते ही क्या देखा कि आनन्दमयी बेसुध पड़ी है और उसका शरीर जले हुए दाग़ों से भरा है। वह तत्काल अस्पताल पहुँचाई गई। पतिदेव पकड़ लिए गए।

इसके बाद मामला चला और बहुत कुछ हुआ। परन्तु, यह घटना कितनी रोमाञ्चकारी है। स्त्रियों के प्रति दुर्व्यवहार का यह कैसा खासा उदाहरण है। यह नहीं कि ऐसी घटनाएँ बहुत ही असाधारण रूप में पाई जाती हैं। नहीं नहीं, प्रायः बहुत घरों में इस प्रकार के अत्याचार होते दिखलाई पड़ेंगे। पीटना तो दैनिक कार्य-क्रम है। उन्हें भूखों मारना और आग से जलाना या लोहे से दाग़ना कोई नई बात नहीं है।

हमारे समाज में निरन्तर ही स्त्रियों पर ऐसे-ऐसे पैशाचिक अत्याचार होते रहते हैं आप ही न्यायपूर्वक कहें कि हमारी स्त्रियों का जीवन कितना दुखपूर्ण और शोचनीय है। जहाँ स्त्रियों पर ऐसे कठोर अत्याचार होते हों वहाँ सुख-समृद्धि की आशा दुराशामात्र है। उलटे स्त्रियोंके शाप से हमारा उत्तरोत्तर ह्रास ही हो रहा है।

वैवाहिक अत्याचार

वाह एक धार्मिक बन्धन है। जीवन की सफलता या असफलता बहुत कुछ विवाह से सम्बन्ध रखती है। विवाह गृहस्थाश्रम का प्रवेश-द्वार है और इसी के अन्तर्गत जगत की जाग्रत अवस्था विराजमान है। सारी योग्यता और समस्त बुद्धिमत्ता उसी आश्रम की पूर्णता में है। जीवन-सङ्ग्राम में विजय प्राप्त कर सुख का साम्राज्य बढ़ाने के लिए, अपनी समस्त शक्ति और योग्यता का पूर्ण विकास कर लेने के लिए और पवित्र एवँ उच्च धार्मिक जीवन का आदर्श प्रकट करने के लिए विवाह ही एक उपयुक्त साधन है। विवाह यह सिखलाता है कि हे मनुष्य! अब तुम सब भाँति सुसज्जित हो, अतः रण-क्षेत्र में प्रवेश करो। यह रण-क्षेत्र ऐसा साधारण रण-क्षेत्र नहीं है, वरन् यह है जीवन का रण-क्षेत्र। यहाँ जीवित रहने के लिए लड़ना पड़ता है। अपनी शक्ति और सामर्थ्य भर ईश्वरीय सत्ता के विकास में सहायता प्रदान करना पड़ता है। किन्तु, हम देखते हैं कि लोगों ने इस संस्कार की पवित्रता पर धूल फेंक दी। इसकी भव्यता तथा दिव्यता नष्ट कर दी और आज तो हम देखते हैं

कि समाज में विवाह के नाम पर ऐसा घोर अत्याचार हो रहा है जिसे देखकर यही कहना पड़ता है कि अभी देश की दुर्गति का अन्त नहीं हुआ।

स्त्रियों पर तो वैवाहिक अत्याचारों की इतनी अधिकता हो गई है कि अब वे प्रतिदिन के कार्य-क्रम में सम्मिलित कर लिए गए हैं अथवा यों कहिए कि अब विवाह-संस्कार केवल स्त्रियों पर अत्याचार करने के ही लिए शेष रह गया है। हमारे पास इतना अवसर और स्थान नहीं है कि विस्तारपूर्वक विवाह-सम्बन्ध में कुछ लिख सकें। हमें तो अतिशय संक्षेप में विवाह से होने वाले अत्याचारों का दिग्दर्शन कराना है। अच्छा, तो पहले बाल-विवाह को ही लीजिए। इस विषय पर बहुत कुछ विवाद हो चुका है। कहीं लोग कह बैठते हैं कि बाल-विवाह सर्वोत्तम है और कहीं यह कह देते हैं कि यह निकृष्टतम है। हमने दोनों पक्षों के तर्क और युक्तियों को देखा है। जो लोग बाल-विवाह के पक्ष में हैं उनकी युक्तियाँ किञ्चित् कृत्रिम और केवल सिद्धान्त-समर्थन के लिए हैं। प्रेम का विकास, चरित्र की स्थिरता एवँ गुण-परिवर्तन आदि प्रबल युक्तियों में से हैं तथापि यह जान लेना चाहिए कि पूर्णता एवँ परिपक्वता प्रत्येक कार्य में आवश्यक है। विज्ञान-वेत्ताओं, मनोविज्ञानियों एवँ आयुवद के ज्ञाताओं ने भली-भाँति निर्णय कर बाल-विवाह के प्रतिकूल अपनी सम्मति दी है। उनका कथन है कि प्रेम का विकास बाल-विवाह से हो नहीं सकता। वे कहते हैं कि चरित्र की स्थिरता के लिए बाल-विवाह हानिकारक है।

कारण इसका यही है कि जहाँ प्रेम का अनुमान ही नहीं वहाँ विकास कहाँ सम्भव है ? जहाँ यह माना जा सकता है कि बाल-दम्पति के निरन्तर सहवास से उनमें सच्चे प्रेम का विकास होता है वहीं यह भी माना जा सकता है कि उस प्रेम से शीघ्र ही हानि की सम्भावना भी रहती है। यह हो सकता है कि बाल पति-पत्नी में परस्पर विरोध-भाव न बढ़े, यद्यपि यह भी सर्वथा माननीय नहीं है, तथापि स्वास्थ्य, भोजन, चरित्र एवँ परिस्थिति के परिवर्तन के अनुकूल उनमें परस्पर सम्भोग-लालसा का शीघ्र ही विकास हो जाता है। फल यह होता है कि सन्तानोत्पत्ति शीघ्र होने लगती है और रुग्णता, दुर्बलता एवँ अपरिपक्वता के कारण स्त्री-पुरुष और सन्तान सभी को हानि उठानी पड़ती है अर्थात् मौत का सामना करना पड़ता है। सबसे मुख्य बात तो यही है कि हम लोग जीवन का सबसे अधिक दायित्वपूर्ण भार उन कन्धों पर रखना चाहते हैं जो उसे उठाने के योग्य नहीं हैं। फल यह होता है कि असमर्थ बालक-बालिकाएँ निस्सहाय छोड़ दी जाती हैं। बाल-विवाह के कारण स्त्रियों की शारीरिक अवनति अधिक हो रही है, और उनका स्वास्थ्य बिगड़ रहा है। गृहस्थाश्रम का कठिन भार उनके माथे मढ़ दिया जाने के कारण न तो उन्हें जीवन का सच्चा सुख प्राप्त होता है और न वे सांसारिक सुख का महत्व ही समझती हैं। कलह और अन्याय, रोग और मृत्यु, कष्ट और शोक इन्हीं में स्त्रियों का जीवन व्यतीत होता है। बाल-विवाह की अधिकता ने

अन्यायों को उत्तेजना दी है। गुड़ियों के खेल की तरह स्त्रियों का भी जीवन हो गया है। आज भारतवर्ष में बाल-विवाहों की संख्या बहुत अधिक है। यही कारण है कि हमारे घरों में रोगों ने डेरा जमा रक्खा है। स्त्रियों का स्वास्थ्य तो बिलकुल ही नष्ट हो गया है। बाल-दम्पति की यह दुर्दशा शोचनीय है।

बाल-विवाह से अधिक अत्याचार वृद्ध-विवाह ने स्त्रियों पर किए हैं। वृद्ध-विवाह के कारण स्त्रियों की जो दुर्गति हुई वह हमारे समाज के लिए बड़ी लज्जा का विषय है। बेचारी सुकुमार कोमलाङ्गी बालिकाओं का जीवन नष्ट कर दिया जाता है। विधवाओं की जितनी अभिवृद्धि वृद्ध-विवाह के कारण हुई है, उतनी किसी से नहीं हुई। व्यभिचार का बाज़ार भी इसी से गर्म हुआ है। जहाँ पुरुषों ने स्त्रियों के प्रति पातिव्रत-धर्म का कठोर बन्धन रच रक्खा है, वहीं उन्होंने अपने लिए इस बात का ध्यान ही न रक्खा कि इस बुढ़ापे में अब विवाह करने की आवश्यकता नहीं। उस समय तो वे एक दो क्या, चार-चार, छः छः विवाह कर डालते हैं और अन्त में किसी दिन मुँह बाए इस संसार से चल बसते हैं। तब बेचारी अबला की जो अवस्था होती है वह बड़ी ही करुणाजनक है। यदि पास में धन हुआ; सुख, चैन और आराम का आयोजन हुआ तो काम-वासना जाग्रत होते देर नहीं लगती; यदि घर दरिद्र हुआ तो रोटी के टुकड़ों के लिए तरसना पड़ता है और इस पापी जीवन के निर्वाह के लिए न जाने क्या-क्या कुकर्म करने पड़ते हैं। यह सब अपराध किसका है? स्त्रियों का? हरगिज़ नहीं। दोष

सरासर पुरुषों का है। यह बेमेल विवाह का अत्याचार है? स्त्री-समाज की अधोगति विशेषतः वैवाहिक कारणों से ही हुई है। पुरुष यह नहीं सोचते कि पचास-साठ और कभी-कभी तो ७०-८० वर्ष की उम्र में विवाह कर वे कोमलाङ्गी या तरुणी बाला का जीवन नष्ट कर रहे हैं और समाज के नाम पर कलङ्क का टीका लगा रहे हैं। यह तो विवाह की ओट में घोर अत्याचार है। सामाजिक पाप का यह अत्यन्त भयङ्कर दृश्य है। उधर बाल-विवाह से बाल-पत्नियों और माताओं की जहाँ अभिवृद्धि हुई है वहीं वृद्ध-विवाह से बाल तथा प्रौढ़-विधवाओं की संख्या बेतरह बढ़ी है। बहुधा लोग दो-एक सन्तान होने पर भी विवाह की योजना करते हैं। वे कहते हैं कि विवाह न होने से इन सन्तानों का पालन कैसे होगा। उनका यह आक्षेप सबल नहीं है। इससे तो बहुधा वे न केवल अपना सुख, चैन और आराम ही छोड़ बैठते हैं, प्रत्युत् अधिकांश में पूर्व पत्नी की सन्तानों का जीवन नष्ट कर देते हैं। प्रायः यही देखा जाता है कि नव-विवाहिता पत्नी पूर्व-पत्नी के बाल-बच्चों की देख-रेख जी-जान से नहीं करती। तिस पर भी यदि कहीं उसकी सन्तान उत्पन्न हो जाए तब तो बेचारे पहले बच्चों की जो कुछ दुर्गति होती है वह अवर्णनीय है। हमने ऐसे अनेक लोगों को देखा है जिन्होंने अपनी आखिरी उम्र में विवाह कर कुटुम्ब के माथे एक बला लाद दी है।

बाल और वृद्ध-विवाह के अतिरिक्त हम और भी अनेक प्रकार के अयोग्य विवाह देखते हैं, जो हमारे समाज में प्रायः होते रहते

हैं। इन अयोग्य विवाहों में अनेक प्रकार हैं। विवाह का सम्बन्ध एक समानता का सम्बन्ध है और वह समान ही में किया जाता है। समानता से यह ही अर्थ नहीं है कि कुल समान हो; नहीं, प्रत्युत् कुल समान होने के साथ ही विवाह-योग्य बालक-बालिकाओं में भी समानता हो। प्रायः देखा जाता है कि प्रौढ़ तरुणी का विवाह छोटे से बालक के साथ कर दिया जाता है, कहीं छोटी बालिका प्रौढ़-व्यक्ति के हाथ सौंप दी जाती है। कहीं इच्छा-विरुद्ध विवाह-सम्बन्ध स्थिर कर दिया जाता है। माता-पिता अपने स्वार्थ-साधन के लिए बहुधा ऐसे अयोग्य विवाह कर डालते हैं। वे नहीं देखते कि इन विवाहों के द्वारा वे स्त्री-जाति पर कितना घोर अत्याचार कर रहे हैं। विवाह में रुचि न होने और इच्छा-विरुद्ध विवाह कर डालने से युवकगण स्त्रियों के प्रति कभी अच्छा व्यवहार करते नहीं देखे गए। उनमें सच्चे प्रेम की कभी जाग्रति नहीं हुई। वे स्त्रियों को घृणा और उपेक्षा की दृष्टि से देखते रहे। उन्हें दासी से भी नीच समझा। अपनी उन्नति और विकास में उन्हें बाधक माना। उन्हें केवल काम-पूर्त्ति का घृणित साधन बनाया और इस साधन में दाम्पत्य भावों के मधुर सम्बन्धों को पैरों तले कुचल दिया। उन्होंने कभी अपनी अभागिनी पत्नियों को श्रद्धा और सम्मान की दृष्टि से न देखा और न उनके दुख-सुख का कुछ ख़याल रक्खा। यद्यपि समाज को इसका अनुभव न हुआ हो। तथापि हम कह सकते हैं कि इन अयोग्य विवाहों की संख्या भी प्रति दिन बहुत बढ़ रही है। आप एक बार नवयुवकों की मण्डली में प्रवेश

कीजिए, उनके अनन्यतम मित्र बनकर उनका हृदय-प
देखिए, तब आपको अयोग्य विवाहों की भीपणता का परिच
मिलेगा। न तो पुरुष स्त्री से सन्तुष्ट है और न स्त्री पुरुष से सन्तुष्ट
यही कारण नहीं कि रूप की शिकायत हो, सौन्दर्य की कमी हो,
नहीं, कारण वही है—वैवाहिक अयोग्यता।

विवाह के अयोग्य पुरुषों में पहिला स्थान रुग्ण लोगों का है। कुछ तो परम्परागत रोगों, कुछ दारिद्र-जनित बीमारियों और विशेषकर चरित्रहीनता से उत्पन्न रोगों के कारण हमारे नवयुवकों का स्वास्थ्य नष्टप्राय हो गया है, उनमें निरीक्षण प्रमाद के कारण ऐसी-ऐसी बुरी आदतें आ गई हैं कि जिन्होंने शरीर को नाश कर दिया है। कौमारावस्था से ही उनमें कामेच्छा-तृप्ति की भावना उत्पन्न हो जाती है और वे उसके साधन प्राप्त न होने पर प्रकृति-विरुद्ध व्यभिचार करने लगते हैं और कृत्रिम साधनों से अपने वीर्य और वल का नाश कर देते हैं। उस समय एक तो वल का सञ्चार रहता है, दूसरे युवावस्था की सन्धि रहती है, मालूम नहीं होता कि क्या हो रहा है। धीरे-धीरे शरीर में घुन बैठ जाता है, इन्द्रियों का सामर्थ्य नष्ट हो जाता है, छोटी सी अवस्था से ही वीर्यजन्य रोगों की भरमार हो जाती है। खिलती हुई कली मुरझा जाती है, वढ़ता हुआ पौधा सूख जाता है और उठती हुई नौजवानी धूल में मिल जाती है। यहाँ हमें न तो नवयुवकों की इस अवस्था के कारणों पर विशेष प्रकाश डालना है और न उनकी इस दुरावस्था का विशेप वर्णन करना है, हमें तो केवल यह वतलाना है कि ये पुरुष अपनी अयोग्यता

से स्त्री-जाति को क्या हानि पहुँचाते हैं। ये लोग अपनी इच्छा-तृप्ति के लिए विवाह के पूर्व ही विषय-सम्भोग पटु हो जाते हैं, समस्त आनन्द और उत्साह पूर्व ही नष्ट कर डालते हैं। फिर जब विवाह का नम्बर आता है तो बड़ी विकट समस्या उपस्थित होती है। विवाह के पूर्व तो वे विहार में मग्न रहते हैं, उन्हें दूर-दूर की बातें सूझती हैं। शारीरिक अयोग्यता होने पर भी वे कृत्रिम सरल साधकों से कामोद्वेग को सन्तुष्ट कर लेते हैं, किन्तु विवाह होने पर उनके सम्मुख एक दायित्वपूर्ण कार्य उपस्थित होता है। उस समय उन्हें अपनी अयोग्यता का ध्यान होता है, उस समय शिथिलता उन्हें विषवत् प्रतीत होती है और बन्धन (क्योंकि विवाह को वे बन्धन ही कहते हैं) में फँस जाने से उनकी स्वेच्छाचारिता में बाधा पड़ती है। फल यह होता है कि अपना दोष दूसरों पर लादा जाता है। अपनी अयोग्यता स्त्रियों पर अत्याचार के रूप में प्रकट होती है। कहीं तो रूपहीनता की ओट में स्त्रियों की उपेक्षा की जाती है, कहीं गुणहीनता के परदे में उनकी भर्त्सना की जाती है; और कहीं कपट-संयम के आडम्बर में उनका त्याग किया जाता है। वे आठ-आठ आँसू रोती हैं, किन्तु उनका दुर्बल हृदय नहीं पसीजता। पसीजे कैसे, कुछ हो भी तभी तो? रोग तो शरीर में व्याप्त है। महीने में २२ दिन खाट पर लेटे बीतते हैं, सुख और स्वास्थ्य कैसे प्राप्त हो? आनन्द और लालसा कहाँ से उत्पन्न हो? इसी से स्त्रियाँ रात-दिन रोती हैं, अपने कर्मों का दोष देती हैं। सौभाग्य की खैर मनाया करती हैं। कभी-कभी

तो पुरुषों के रोगी होने और उनके सहवास से सन्तान भी रुग्ण होती है। स्त्री भी दुर्बल और रुग्ण हो जाती है और कुटुम्ब में स्वास्थ्य तो नाम को नहीं रह जाता।

ऐसे अयोग्य पति केवल रोगी ही होते हों; यह बात नहीं है। हमने ऐसे एक दो नहीं, कम से कम बीस-बाईस दृश्य अपनी आँखों से देखे हैं जहाँ लड़का पुरुषत्वहीन होने पर भी कुटुम्ब की लाज के लिए उसका विवाह किया जाता है। होता क्या है? गुण्डे और रसिया लोगों की बन पड़ती है, यार लोग मज़े उड़ाते हैं; व्यभिचार का बाज़ार गर्म होता है और कहीं तो आत्म-हत्या की नौबत आती है। कहीं गर्भपात की आवश्यकता होती है और कही भ्रूण-हत्याएँ की जाती हैं। क्या यह स्त्रियों पर अत्याचार नहीं है? इसके अतिरिक्त पतियों की यह अयोग्यता केवल शरीर से ही हो, सो बात नहीं। अनेक ऐसे व्यक्ति देखे गए हैं जो प्रमाद एवँ आलस्य के कारण, कुछ विकृत बुद्धि और भ्रमात्मक ज्ञान के कारण गृहस्थी का भार उठाने में असमर्थ होते हैं। न तो वे कुछ कार्य करना चाहते हैं और न जीवन-निर्वाह के साधनों को प्राप्त करना चाहते हैं। वे स्वयँ दरिद्र रहना चाहते हैं और उसके परिणाम से स्त्रियों को असंख्य कष्ट देना चाहते हैं। ऐसी अवस्था के लोगों की संख्या कुछ कम नहीं है और आज समाज में ऐसे सहस्रों नहीं, लाखों स्त्रियाँ ऐसी मिलेंगी जिनका एक दिन भी निश्चिन्तता से नहीं बीतता। उनके जीवन का प्रत्येक क्षण दुख, चिन्ता और शोक में [illegible] कोई सुख उन्हें उपलब्ध नहीं

होता दूसरे पुरुषों का कठोर व्यवहार उस जलती हुई अग्नि में आहुति का काम करता है।

कामी पुरुषों को भी हम अयोग्य लोगों में गणना करते हैं। इन कामी पतियों ने घर-बाहर सभी ओर स्त्रियों पर अत्याचार मचा रक्खा है। इस स्थान पर हमें केवल इसका उल्लेख मात्र करना है। अगले प्रकरण में हम ऐसे लोगों के अत्याचारों का विस्तृत वर्णन करेंगे। हाँ, तो ये कामी व्यक्ति अपनी कामोत्तेजना के प्रवाह में स्त्रियों को बरबाद कर देते हैं। स्वयँ तो किसी काम के रहते ही नहीं है, स्त्रियाँ भी जीवन भर के लिए रोगों के जाल में ग्रस्त हो जाती हैं। ये कभी अपनी स्त्रियों को सुख नहीं देते, रात-दिन किसी और हा धुन में मस्त रहते हैं। वाह्य सौन्दर्य के ये भक्त होते हैं और उसी की खोज में अपना समय नष्ट कर देते हैं। सच्चा प्रेम करना तो ये जानते ही नहीं। झूठी प्रतिज्ञा और मिथ्या प्रशंसा द्वारा ये भोली-भाली स्त्रियों का सर्वस्व लूट लेते हैं। इनका चित्त स्थिर नहीं रहता, अतः गृह-शान्ति इनसे कोसों दूर रहती है। गृह-शान्ति न रहने से स्त्रियाँ स्वभावतः ही दुखित रहती हैं। ये अपने कामी पति के कुकर्मों से कठोर कष्ट सहा करती हैं। धन, वैभव, सुख और सम्भोग सभी से इन्हें विलग रहना पड़ता है। मद्यपान कामी लोगों के प्रधान लक्षणों में एक है। आप ही विचार कर देखें, जिस घर में ऐसे लोगों का निवास हो, क्या वहाँ शान्ति एक क्षण भी रह सकती है? शान्ति की अधिष्ठात्री स्त्रियाँ क्या कभी सुख से रह सकती हैं? वहाँ तो वे अपने कर्मों को दोष

दे-देकर जीवन के दिन काटती हैं। एकान्त में जी भर कर रो लेने के सिवा वे क्या कर सकती हैं। आज भारतवर्ष में ऐसे अत्याचारों की कुछ कमी नहीं है। आगे चलकर हम बतलाएँगे कि भारतवर्ष का पवित्र जीवन इन अत्याचारों से किस प्रकार भ्रष्ट हो रहा है और स्त्रियाँ इस भ्रष्टता के कारण कितनी पतित हो गई हैं।

विवाह के अयोग्य लोगों में हम उनकी भी गणना करते हैं जो परावलम्बी हैं। ऐसे लोग न जाने किस साहस पर विवाह करना चाहते हैं। परावलम्बी होकर जो स्वयँ ही अपने जीवन के दिन काटता है, दूसरों के आश्रित बनकर जो स्वयँ ही प्रत्येक चीज़ के लिए मुँह ताकता है, वह गृहस्थाश्रम का दायित्व कैसे उठा सकता है और ऐसी अवस्था में वह स्त्रियों के सुख का ख्याल कहाँ तक रख सकता है? उनके मान-मर्यादा की रक्षा कहाँ तक कर सकता है? सम्प्रति, भारतवर्ष में इस परावलम्बिता का रोग बहुत बढ़ गया है। श्रम से जी चुराने वाले लोगों की संख्या कुछ कम नहीं है। मज़ा तो यह है कि तिस [illegible] धि[illegible] विवाहित होते हैं। फल यह होता है कि पु[illegible] को भी दाने-दाने के लिए दर-दर भटकना प[illegible] हैं कि ऐसे प[illegible] ों को विवाह कर [illegible] नहीं है। वि[illegible] जिसे [illegible] पाप है। [illegible] ही [illegible] अबला को भी [illegible]

मूर्ख लोगों [illegible]

मूर्खता के आवेश में कुछ भला-बुरा तो सूझता ही नहीं, चट जी में आया सो कर बैठे और जो चाहा सो कह दिया। ऐसे लोग स्त्रियों की अत्यन्त प्रतारणा करते हैं, उन्हें बड़े-बड़े कठोर दण्ड देते हैं, ज़रा-ज़रा सी बात के लिए उन्हें घोर ताड़ना दी जाती है। यदि देखा जाय तो अत्याचारों की अधिकता लोगों की मूर्खता से अधिक सम्बद्ध है। कुछ तो रूढ़ियों, कुछ अन्धविश्वास और कुछ मूढ़बुद्धि के कारण लोग स्त्रियों को विचित्र ढङ्ग की दासता में रखते हैं। इनकी दृष्टि में स्त्रियाँ जन्म से ही दासता के लिए उत्पन्न हुई हैं और पुरुषों के प्रत्येक अक्षर का पालन करना उनका धर्म है। हमारे सामने पचासों ऐसे उदाहरण मौजूद हैं जिनमें पति की मूर्खता के कारण स्त्री को अपने प्राणों से हाथ धोने पड़े हैं। ध्यानपूर्वक देखने से प्रतीत होता है कि मूर्ख लोगों की गृहस्थी एक भीषण नरक है और उसके सदस्य उस नरक के जीव हैं। सच तो यह है कि भारतवर्ष में जब से इस प्रकार अयोग्य विवाहों का प्राबल्य हुआ तभी से हमारा सामाजिक जीवन अधमावस्था को प्राप्त हो गया।

ऐसे ही अयोग्य विवाहों के कारण दहेज़-प्रथा की उत्तमता नष्ट होकर अब वह अनिवार्य आवश्यकता बन गई। यही नहीं, बढ़ते-बढ़ते कन्या-विक्रय के रूप में उसका परिवर्त्तन हो गया। दहेज़ की उत्पत्ति अच्छे विचारों के नींव पर हुई थी। अधिकार और प्रेम के व्यवहार में उसकी उत्तमता मानी जाती थी। किन्तु, हमारा तो सामाजिक जीवन क्रमशः अवनत होता गया और एक उत्तम

दे-देकर जीवन के दिन काटती हैं। एकान्त में जी भर कर रो लेने के सिवा वे क्या कर सकती हैं। आज भारतवर्ष में ऐसे अत्याचारों की कुछ कमी नहीं है। आगे चलकर हम वतलाएँगे कि भारतवर्ष का पवित्र जीवन इन अत्याचारों से किस प्रकार भ्रष्ट हो रहा है और स्त्रियाँ इस भ्रष्टता के कारण कितनी पतित हो गई हैं।

विवाह के अयोग्य लोगों में हम उनकी भी गणना करते हैं जो परावलम्बी हैं। ऐसे लोग न जाने किस साहस पर विवाह करना चाहते हैं। परावलम्बी होकर जो स्वयँ ही अपने जीवन के दिन काटता है, दूसरों के आश्रित वनकर जो स्वयँ ही प्रत्येक चीज़ के लिए मुँह ताकता है, वह गृहस्थाश्रम का दायित्व कैसे उठा सकता है और ऐसी अवस्था में वह स्त्रियों के सुख का ख्याल कहाँ तक रख सकता है? उनके मान-मर्यादा की रक्षा कहाँ तक कर सकता है? सम्प्रति, भारतवर्ष में इस परावलम्बिता का रोग वहुत वढ़ गया है। श्रम से जी चुराने वाले लोगों की संख्या कुछ कम नहीं है। मजा तो यह है कि तिस पर भी ये अधिकांश विवाहित होते हैं। फल यह होता है कि पुरुषों के साथ स्त्रियों को भी दाने-दाने के लिए दर-दर भटकना पड़ता है। हम तो कहते हैं कि ऐसे परावलम्बी लोगों को विवाह करने का कोई अधिकार नहीं है। विवाह एक दायित्व है जिसे पूरा न करना एक गहन पाप है। इस दशा में यों स्वयँ ही पराश्रित होकर एक अवला को भी सङ्कट में डालना क्या अन्याय नहीं है?

मूर्ख लोगों के कारण भी स्त्रियों को वहुत कष्ट मिलता है।

मूर्खता के आवेश में कुछ भला-बुरा तो सूझता ही नहीं, चट जी में आया सो कर बैठे और जो चाहा सो कह दिया। ऐसे लोग स्त्रियों की अत्यन्त प्रतारणा करते हैं, उन्हें बड़े-बड़े कठोर दण्ड देते हैं, ज़रा-ज़रा सी बात के लिए उन्हें घोर ताड़ना दी जाती है। यदि देखा जाय तो अत्याचारों की अधिकता लोगों की मूर्खता से अधिक सम्बद्ध है। कुछ तो रूढ़ियों, कुछ अन्धविश्वास और कुछ मूढ़बुद्धि के कारण लोग स्त्रियों को विचित्र ढङ्ग की दासता में रखते हैं। इनकी दृष्टि में स्त्रियाँ जन्म से ही दासता के लिए उत्पन्न हुई हैं और पुरुषों के प्रत्येक अक्षर का पालन करना उनका धर्म है। हमारे सामने पचासों ऐसे उदाहरण मौजूद हैं जिनमें पति की मूर्खता के कारण स्त्री को अपने प्राणों से हाथ धोने पड़े हैं। ध्यानपूर्वक देखने से प्रतीत होता है कि मूर्ख लोगों की गृहस्थी एक भीषण नरक है और उसके सदस्य उस नरक के जीव हैं। सच तो यह है कि भारतवर्ष में जब से इस प्रकार अयोग्य विवाहों का प्राबल्य हुआ तभी से हमारा सामाजिक जीवन अधमावस्था को प्राप्त हो गया।

ऐसे ही अयोग्य विवाहों के कारण दहेज़-प्रथा की उत्तमता नष्ट होकर अब वह अनिवार्य आवश्यकता बन गई। यही नहीं, बढ़ते-बढ़ते कन्या-विक्रय के रूप में उसका परिवर्त्तन हो गया। दहेज़ की उत्पत्ति अच्छे विचारों के नींव पर हुई थी। अधिकार और प्रेम के व्यवहार में उसकी उत्तमता मानी जाती थी। किन्तु, हमारा तो सामाजिक जीवन क्रमशः अवनत होता गया और एक उत्तम

प्रणाली को हमने अनिवार्य आवश्यकता मान कर उसे नियम बना दिया। खैर, यदि इस नियम की मर्यादा स्थिर रहती तब भी ठीक था, किन्तु स्वार्थ तो इसके भी आगे बढ़ा। दायज ने हाहाकार मचा दिया। लोगों की नीयतें पलट गईं। युक्ति पेश की गई कि कन्या का ऋण है उसे तो हम ले लेंगे, उसका भी कुछ अधिकार है वह तो पूरा करना ही पड़ेगा। ठीक है। किन्तु, जरा हृदय पर हाथ रख कर तो पूछिए कि आज हमारे सामाजिक जीवन की स्थिति कैसी हो रही है। जिस आर्थिक कठिनाइयों में आप फँसे हैं, क्या उसमें कन्या-पक्ष के लोग नहीं हैं? फिर जो कुछ आप माँगते हैं, क्या उसके प्रति आप की भावना शुद्ध रहती है? हम तो कहेंगे, हर्गिज़ नहीं। उसमें भी आपका स्वार्थ रहता है। दायज की ओट में आप वर-कन्या-विक्रय करते हैं। इस दायज ने तो शतशः बालिकाओं को जीवन भर अविवाहित रक्खा, बीसों ने आत्म-हत्या कर ली और लाखों बालिकाएँ इस कुप्रथा के कारण कुटुम्ब में शत्रुवत् समझी जाने लगीं। यह तो था ही, उधर से बूढ़े लोगों ने धूम मचाई और हज़ारों रुपये दे कन्याओं को मोल लेकर विवाह करना चाहा। माता-पिता को भी थैली की लालच में अपनी आत्मजा का जीवन नष्ट कर देने में तनिक सङ्कोच न हुआ। दलालों की बन आई। वे सैकड़ों-हज़ारों रुपये लेकर बूढ़े लोगों को कन्याएँ भेंट करने लगे और वे बूढ़े रुपया बरबाद कर क्षणिक सुख की कल्पना में ही फूल कर बालिका का भविष्य जीवन बिगाड़ बैठे। इस प्रकार इस कन्या-विक्रय से प्रथमतः बालिकाओं का सुख-सौभाग्य तो नष्ट हो ही जाता है,

पर अन्त में जब उन्हें जवानी की लहरों के थपेड़े खाने पड़ते हैं तब वे कुल, मान और गौरव को डुबा कर वह पाप की कालिमा से समाज का अन्तरङ्ग कलुषित कर देती हैं। इस प्रकार अनाचार फैल जाता है और स्त्रियों का जीवन घोर सङ्कटपूर्ण हो जाता है। कहिए, यह कैसा अत्याचार है, विवाह होता है या अधर्म ? विवाह का उद्देश्य क्या था, यह तो लोग भुला बैठे और केवल इन्द्रिय-लालसा की तृप्ति के लिए वे अन्यायपूर्वक स्त्रियों का सर्वस्व लूटने लगे। देखें, कब तक यह भयङ्कर सामाजिक पाप जीवित रहेगा।

अयोग्य विवाहों से जहाँ अन्य हानियाँ हुई हैं वहाँ सबसे बड़ी हानि यह हुई है कि स्त्रियों की मृत्यु-संख्या बढ़ गई है। अस्वास्थ्य, दुर्व्यवहार, बाल-मातृत्व, व्यवहार-अनभिज्ञता, दरिद्रता, असन्तोष आदि बातें वैवाहिक परिणाम ही हैं। इन सब ने मिलकर स्त्रियों पर घोर अत्याचार तो किए ही हैं, साथ ही अब तो उन्हें जीवन से भी हाथ धोने पड़ रहे हैं। अयोग्य विवाह से ही रोगों की वृद्धि होती है और कौटुम्बिक अत्याचारों का आरम्भ होता है। इसी से स्त्रियों को अकाल ही काल के मुँह में जाना पड़ता है। आजकल स्त्रियों की मृत्यु का एक बड़ा कारण विवाह से सम्बद्ध है। उनका वैवाहिक जीवन इतना पशु-तुल्य और जघन्य होता है कि उस अवस्था में हम कदापि इस बात का अनुभव नहीं कर सकते कि कभी उनका जीवन सुखी होता होगा। हमारा यह अनुमान मिथ्या नहीं है। पुरुष तो एक बार अपनी उमङ्ग की तरङ्ग में विवाह कर डालते हैं, किन्तु दूसरे ही क्षण स्त्रियाँ रौरव नरक में

फेंक दी जाती हैं और वहाँ उनका जीवन कष्ट में ही समाप्त हो जाता है।

अनेक महापुरुष ऐसे भी मिलेंगे जो उद्देश्यहीन विवाह कर डालते हैं। वे ऐसा कर केवल सामाजिक नियम को पूरा करना चाहते हैं, पर यह नहीं सोचते कि उनकी इस निरुद्देश्यता का स्त्रियों के जीवन पर क्या परिणाम होगा? केवल गृह-भार वहन कर, मजदूरिनी की तरह परिश्रम कर दोनों समय भोजन प्राप्त कर लेने के लिए ही उस स्त्री का सम्बन्ध आप से नहीं हुआ है। अपना पेट तो वह हर तरह से भर सकती थी। फिर इस अपमानपूर्ण, उद्देश्यविहीन विवाह से क्या लाभ था? विवाह कर आप उनसे अलग नहीं हो सकते और न उनके अधिकारों को छीन सकते हैं। स्मरण रहे, ऐसे उद्देश्यविहीन विवाह भी अधिक परिमाण में पाए जाते हैं। किन्तु, प्रत्यक्ष इन्हें कोई नहीं जानता। हमने विशेष रूप से समाज में विवाह के इस रूप का निरीक्षण किया है और उससे हम इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि यह उद्देश्यविहीन विवाह और कुछ नहीं, केवल अप्रत्यक्ष रूप से स्त्रियों की गुलामी का व्यापार है। बड़ी सफ़ाई से यह व्यापार किया जा रहा है और इस अमान्य व्यवहार को धर्म का समर्थन दिया गया है।

कहीं-कहीं विवाह-सम्बन्ध केवल धन के लिए ही किया जाता है। चाहे उपयुक्त हो या नहीं, यदि अमुक व्यक्ति बड़ा धनी है तो उसकी बालिका से विवाह अवश्य कर लिया जाता है। क्यों? धन के लिए। धन तो खूब मिलता है, पर यह भी कभी विचार किया जाता है कि

ऐसे विवाहों से क्या परिणाम होता है ? इससे दो मुख्य हानियाँ होती हैं। प्रथमतः ऐसी बहुत सी बालिकाएँ अविवाहित रह जाती हैं जो निर्धन की कन्याएँ हैं। दूसरे जो धनिकों की कन्याएँ होती हैं वे भा अपने जीवन में सच्चा सुख नहीं पा सकतीं। जब तक किसी प्रकार धन-प्राप्ति की आशा रहती है तब तक तो पति दिखाने के लिए उससे सम्बन्ध रखता है और रुचि न होने पर भी उससे प्रेम प्रदर्शित करता है। पर, ज्योंही उसकी वह आशा नष्ट हो जाती है, त्योंही वह पत्नी से यह भी नहीं पूछता कि आज तुम्हारा स्वास्थ्य कैसा है। क्या ऐसे विवाहों से दोनों और स्त्रियों पर अन्याय नहीं होता ? हमने तो देखा है कि इन विवाहों से कुटुम्ब में कभी सच्चे सुख का उदय नहीं हुआ और न स्त्रियों ने ही दाम्पत्य प्रेम का उपभोग कर पाया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हमारा वैवाहिक जीवन कैसा विषम हो रहा है। शास्त्रों के वे कथन अब सब भुला दिए गए हैं, विवाह की समस्त प्रतिज्ञाएँ अब उच्चारण मात्र में रह गई हैं और प्रेम का सच्चा तत्व अब कल्पना का विषय हो गया है। इस विषमता के अनेक कारण हैं। प्रथमतः हमारी साम्पत्तिक अवस्था ऐसी है जो इस सम्बन्ध में बहुत कुछ बाधा डाल रही है। दरिद्रता का प्रभाव हमारे कुटुम्ब पर बहुत अधिक पड़ता है। हमारी आवश्यकताएँ पूरी नहीं हो पातीं और हमें निरन्तर कष्टमय जीवन व्यतीत करना पड़ता है। विशेष कर भारत के उन समाजों में जहाँ स्त्रियाँ परदे में रहती हैं, और बाहर निकलकर कोई कार्य नहीं कर

सकतीं, यह दरिद्रता बहुत खटकती है। पुरुष अपनी अयोग्यता के कारण स्त्रियों का पेट नहीं भर सकते और स्त्रियाँ भी कुल-लज्जा के कारण भूखे रह कर ही जीवन दे डालती हैं। वे कभी प्रसन्न नहीं देखी गईं। प्रत्येक वस्तु के लिए वे उत्सुक पाई गईं, किन्तु दुर्भाग्य और दरिद्रता ने उन्हें नष्ट कर दिया।

स्त्रियों का यह सङ्कट उस समय और भी बढ़ जाता है, जब हम देखते हैं कि इस घोरतम दरिद्रता में भी उनमें सन्तानोत्पत्ति की संख्या बढ़ रही है। कैसा आश्चर्य है? इसमें स्त्रियों का अधिक दोष नहीं है। भारतवर्ष के सामाजिक नियमों के अनुकूल स्त्रियों के अपने अधिकार तो शेष रह ही नहीं गए हैं, जो कुछ बात बाक़ी रही है वह यही है कि दरिद्रता के साथ हमारी विषय-वासना बढ़ गई है, और दुर्बल विचार एवँ चरित्रहीनता ने अपना प्रभुत्व जमा लिया है। पुरुष-जाति तो सन्तान उत्पन्न कर दूर हो जाती है, लेकिन उस सन्तान की रक्षा और शिक्षा के लिए स्त्री को कितना घोर कष्ट सहना पड़ता है, इसका विचार बहुत कम किया जाता है। शारीरिक दुर्बलता, आर्थिक कठिनाइयों और विषय-जन्य रुग्णता के कारण स्त्रियाँ प्रथम ही शक्तिहीन हो जाती हैं, तिसपर भी सन्तानोत्पत्ति से उनका अवशिष्ट स्वास्थ्य भी बिगड़ जाता है। देखा गया है कि इस विषमावस्था में कहीं तो बच्चों की हत्या कर डाली गई है, कहीं वे बेच दिए गए हैं, कहीं वे निराधार छोड़ दिए गए हैं और कहीं वे भीख माँगते पाए गए हैं। आह! यह कैसी दारुण अवस्था है!

विवाहित स्त्रियों का स्वास्थ्य फिर ठीक रहे तो किस प्रकार ? कच्ची उम्र में माता बन बैठना रोग का बढ़िया प्रमाण है। ऐसे-ऐसे विकट रोगों से सामना पड़ जाता है कि आखिर जीवन ही दे देना पड़ता है। फिर अत्यन्त निकृष्ट अवस्था में भी सन्तानोत्पत्ति और सन्तान-परिपालन का भार आ पड़ता है जिससे रहा-सहा स्वास्थ्य भी नष्ट हो जाता है। आज ऐसे बहुत कम घर निकलेंगे जहाँ स्त्रियाँ स्वस्थ दशा में हों। एक तो पीड़ा के कारण वे यों ही दुखी रहता हैं, फिर बाहरी आपत्तियाँ जले पर नमक का काम करती हैं। उनकी कातरावस्था देखकर हृदय विह्वल हो जाता है। हे भगवन् ! कहाँ तो विवाह इसलिए किया जाता था कि संसार-रथ सुचारु-रूप से चलने लगे, कहाँ अब काँटों और दलदलों में फँसकर प्राण तक दे देने पड़ते हैं। आप जरा मेडिकल रिपोर्ट उठाकर पढ़िए। आप देखेंगे कि स्त्रियों के रोगों की संख्या बहुत बढ़ गई है। ये रोग, जैसा कि ऊपर कहा गया है, वैवाहिक जीवन की विषमता से ही उत्पन्न होते हैं।

चरित्र-बल के अभाव अथवा उसकी दुर्बलता के कारण वैवाहिक जीवन में और भी विषमता उत्पन्न हो गई है, और जैसा कि प्रकट है, पुरुषों के इस अनौचित्य का सारा परिणाम स्त्रियों को ही भोगना पड़ता है। चरित्र-बल से हमारा तात्पर्य केवल विषय-संयम एवं इन्द्रिय-निग्रह आदि से ही नहीं है, चरित्र-बल इससे भी आगे की बात है। चरित्र-बल के द्वारा हम अपना जीवन निर्माण करते हैं। सद्गुणों की उत्पत्ति चरित्र-बल के साधन

अवश्य हैं, किन्तु साध्य नहीं। चरित्र-बल द्वारा हम गृहस्थी के कर्त्तव्यों का ही नहीं, वरन् मनुष्यता के महदुद्देश्य का भी पालन कर सकते हैं। दुख है कि सम्प्रति, हम लोगों में चरित्र-बल घटता जारहा है। फल यह होता है कि हम जीवन में कोई कार्य सफलता-पूर्वक नहीं कर सकते। हम दृढ़ता की कसौटी पर नहीं ठहर सकते और दुख, निराशा, क्षोभ, आपत्ति और भय से भीत होकर अपना लक्ष्य गँवा वैठते हैं। हमारी इस चरित्र-दुर्वलता का स्त्रियों पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। हम स्त्रियों को सुखी नहीं रख सकते, कारण कि हमारे चरित्र में उतना वल नहीं रहता जिसकी सहायता से हम वीर की भाँति गृहस्थी का सञ्चालन कर सकें। अपनी इस दुर्वलता के कारण, अपनी इस असफलता के कारण हम व्यर्थ ही स्त्रियों पर कोप किया करते हैं, और उन्हें वाधक समझ कर सदैव तिरस्कार और अपमान द्वारा ही उनका स्मरण करते हैं। गृहस्थी के निर्माण में चरित्र-वल की अत्यन्त आवश्यकता है।

अनेक जातियों तथा समाजों में वैवाहिक कुरीतियों के कारण भी स्त्रियों को असीम कष्ट सहने पड़ते हैं। भारतवर्ष में जव से वर-कन्या-निर्णय की स्वतन्त्र अभिरुचि की प्रथा का तिरोभाव हो गया है, तव से स्त्रियों का भविष्य घोर अन्धकार में विलीन हो गया है। हम यह नहीं कहते कि स्त्रियाँ स्वयं ही वर चुन लें और न यही चाहते हैं कि माता-पिता विचार-शून्य होकर किसी वर से कन्या का पाणिग्रहण करा दें। हमारी समझ में यदि स्वयं-वर प्रथा जारी नहीं हो सकती तो इतना तो अवश्य ही किया जा सकता

है कि वर-कन्या दोनों की अभिरुचि का ठीक-ठीक पता लगा लिया जाय। इस प्रथा के प्रचार के लिए प्रौढ़ विवाह ही सहायक हो सकता है। अबोध एवं ज्ञानानुभव-विहीन बालक-बालिका न तो विवाह-धर्म समझते हैं और न उन्हें उस महत्वपूर्ण कार्य के सम्बन्ध में अपने दायित्व का ज्ञान होता है। हमने बहुत से समाजों में विवाह की इस परावलिम्बनी प्रकृति के कुपरिणाम देखे हैं। हमें एक ऐसी ही घटना का स्मरण हो आता है जहाँ कन्या का विवाह-भार जाति के पञ्चों पर निर्भर था, और वे एक ऐसे व्यक्ति के साथ में विवाह कराना चाहते थे जो कन्या को कदापि पसन्द न था। स्मरण रहे, भला-बुरा समझने की शक्ति आ जाने पर ही कन्या किसी ऐसे सम्बन्ध का विरोध कर सकती है। अतः इस विवाह के प्रतिकूल सम्मति प्रदान करते हुए उस कन्या ने जो कुछ कहा था वह विचारणीय है। उसका कथन है—" मैं वयस्का हूँ, और मुझे अपने समस्त जीवन के भागीदार के गुण-दोषों की जाँच करने का पूरा-पूरा अधिकार है। यह अधिकार कोई अन्यायी से भी अन्यायी व्यक्ति मुझसे नहीं छीन सकता। जिस व्यक्ति के साथ विवाह कराना मेरी जाति कर्त्तव्य समझती है उस व्यक्ति के प्रति मेरा उचित मत नहीं है, विशेषकर उस अवस्था में जब कि उसने यहाँ तक कह दिया है कि वह जैसे चाहे विवाह करेगा, और जी चाहे जिस प्रकार रखेगा या मुझे खेल की तरह रख कर जीवन का व्यय देगा, और इस प्रकार मेरी जिन्दगी बरबाद कर देगा। जिसको मैं चाहती नहीं, और जो मुझे नष्ट करने का निश्चय कर बैठा है

उसके साथ विवाह करने की आज्ञा दे देना कैसा घोर अन्याय है? मेरा यही तो अपराध है कि मैं अबला हूँ? तभी तो ऐसा घोर अत्याचार मुझ पर किया जा रहा है इत्यादि।" स्मरण रहे, भारतवर्ष की ऐसी-ऐसी सैकड़ों जातियों में अबलाओं पर यों छुरी चलाई जाती है। दुख तो इस बात का है कि हमारे समाज में जो लोग शिक्षित कहलाते हैं वे भी इतने पिछड़े हुए विचारों के हैं कि प्रत्येक कार्य में शास्त्र और धर्म की दुहाई दे देना ही अपना कर्त्तव्य समझते हैं। जहाँ सरासर अन्याय हो रहा है, जहाँ सैकड़ों बालक-बालिकाओं का जीवन नष्ट हो रहा है वहाँ शास्त्र के शाब्दिक प्रमाण द्वारा उसे असत्य सिद्ध करना अथवा उसे विधि-अनुकूल बताना कहाँ की न्यायपरता तथा बुद्धिमत्ता है? क्या आप नहीं जानते कि नियम परिस्थिति के अनुसार परिवर्तित हुआ करते हैं। सैकड़ों वर्ष पूर्व देश और समाज की जो अवस्था थी इस समय तो वह नहीं है। फिर आजकल की दशा को देखते हुए भी 'तातस्य कूपोयं' वाली उक्ति पर डटे रहना क्या न्यायसङ्गत कहा जा सकता है? हम नहीं चाहते कि शास्त्र का अपमान किया जाय किन्तु यदि वे मनुष्य-कृत हैं, और समाज के जीवन से उनका सम्बन्ध है तो हम बड़े ज़ोर से कह सकते हैं कि उनमें परिवर्तन हो सकता है, और होना चाहिए।

अतिशय संक्षेप में हमने वैवाहिक अत्याचारों के भिन्न-भिन्न स्वरूपों का उल्लेखमात्र कर दिया है। यदि विस्तारपूर्वक इन कारणों पर विचार किया जाय और सप्रमाण अवस्था का चित्रण

किया जाय तो एक पुस्तक अलग ही बन जाय। यहाँ तो हमें यही दिखलाना था कि किस प्रकार विवाह के शुभनाम की ओट में स्त्रियों पर अत्याचार किया जाता है। आप विश्वास कीजिए और सच मानिए कि सम्प्रति विवाह का पवित्र उद्देश प्रायः नष्ट हो गया है। अब विवाह एक सौदा हो गया है। लोगों ने खाना-पीना आवश्यक समझ कर विवाह कर डालना भी अनिवार्य समझ लिया है। यद्यपि विवाह करने और न करने का प्रश्न केवल सामाजिक ही नहीं, अपितु राजनीति से भी इसका सम्बन्ध है तथापि इतना तो निस्सन्देह कहा जा सकता है कि विवाह की पवित्रता नष्ट हो गई है और इस अवस्था में विवाह का महत्व बहुत घट गया है। अतः हम ऐसे विवाहों से जो कर्त्तव्य-ज्ञान-शून्य अवस्था में किए जाते हैं, जो केवल आवश्यकता मान कर किए जाते हैं, जो केवल कुटुम्बियों, विशेषकर माता-पिता को, प्रसन्न करने के लिए किए जाते हैं, जो केवल स्वार्थ-साधन के लिए किए जाते हैं, जो केवल विषय-लालसा के लिए किए जाते हैं, हम कदापि सन्तुष्ट नहीं हैं। हम ऐसे विवाहों को समाज के लिए अत्यन्त हानिकारक समझते हैं। ये विवाह न केवल स्त्री-जाति की पवित्रता को नष्ट करते हैं, न केवल उनके दुख और क्षोभ को बढ़ाते हैं, बल्कि उनसे समाज की आत्मा कलुषित होती है और धर्म और सदाचार का स्वरूप नष्ट होता है।

अधिकांश में आधुनिक विवाह एक सामाजिक पाप है। आदि से अन्त तक उसका स्वरूप गन्दा है और उसकी नीति भ्रष्ट

है। यदि ऐसा न होता तो यह शिकायत कभी न की जाती कि सम्प्रति, वैवाहिक जीवन में सुख नहीं है। सुख कहाँ से हो? विवाह तो तुमने जवानी की उमङ्गों की बाढ़ में आकर किया था न? विवाह करने से तुम्हारा मतलब यही था न, कि अब चार दिन चैन से कटेंगे? वह चार दिन की चाँदनी चली गई। न तो आपने विवाह के उद्देश को समझा था न उसके दायित्व को। बस, शक्ति शिथिल होते ही मौज चली गई। ऊपर से एक प्राणी के विवाह का भार लदा, चिन्ता ने आ घेरा और चतुर पुरुष ने अपनी कुटिलता से भार-स्वरूप स्त्री को येन-केन नष्ट कर देना ही ठीक समझा। इसी से अत्यचारों की वृद्धि हुई और इसी से सामाजिक कुरीतियाँ बढ़ गईं।

विवाह की इस दुर्गति ने हमारे नैतिक पतन में बहुत सहायता दी है, और अब तो वह ज्यादती को पहुँच चुका है। आदि से अन्त तक विवाह एक नाटक है और स्त्री-जाति उसकी नायिका है। यह नायिका नायक के वश में है और वह जिस तरह चाहे उसे नचा सकता है। यदि ऐसा न होता तो आज स्त्री-जाति की और उसके साथ ही पुरुप-जाति की यह दुर्गति क्यों होती? यदि विवाह एक पवित्र कर्त्तव्य समझा जाता और स्त्री उस कर्त्तव्य की अधिष्टात्री देवी मानी जाती तो वह इतना विचार-शून्य कैसे बन जाता? आप भले यह प्रश्न करें कि सारा दोप पुरुप-जाति के मत्थे मढ़ना ठीक नहीं स्त्रियाँ भी इस दोप की भागिनी हैं। अवश्य हैं, परन्तु उन्हें इस ओर लाया कौन? पुरुप ही न? यदि स्त्रियों में आज

अनेक कुलटा हैं, कठोर-हृदया हैं, गँवार और फूहड़ हैं, दुष्ट और पिशाचिनी हैं, अशिक्षिता और अनुभवहीना हैं तो इसका दायित्व किस पर है? उसी पर न, जो उन्हें अपने वश में मानता है? जो यह कहता है कि स्त्रियों का हृदय उनका हृदय नहीं, स्त्रियों के विचार उनके विचार नहीं और स्त्रियों की बुद्धि उनकी बुद्धि नहीं? वही पुरुष-जाति स्त्रियों की अधोगति की उत्तरदायिनी है न, जो यह समझती है कि स्त्रियाँ एक मिठाई की तरह हैं और वे केवल पुरुषों को प्रसन्न करने ही के लिए हैं। वे तो समझते हैं कि पुरुष ही सब कुछ है, प्रकृति कुछ नहीं। पर, स्मरण रहे अब इस धींगा-धींगी से काम न चलेगा। स्त्रियों के उदय के बिना किसी देश या जाति का उदय नहीं हो सकता। स्त्रियों को इस प्रकार बेड़ियाँ पहनाने से—उन्हें क़साइयों के हाथ बेंच देने से, उन्हें जलती हुई आग के झपके मारने से—उनकी उन्नति कदापि न होगी। उलटे इससे तो उनका दहन होकर आत्मा के साथ ही हमारा अपकर्ष और हमारा जीवन भी भस्म हुआ जाता है। स्मरण-रक्खो, स्त्रियों के शाप से प्रतिक्षण हमारा सुख और वैभव नष्ट हो रहा है। हमारी कौटुम्बिक उन्नति न होने का भी यही कारण है। स्त्रियों के अभ्युदय से हमारा अभ्युदय है और उनके सुख के साथ हमारा भी सुख है।

विद्याविनोद-ग्रन्थमाला की विख्यात पुस्तकें

जीवन के सारे सुखों की आहुति कर सकता है, ये बातें इस पुस्तक में एक अत्यन्त रोचक और चित्ताकर्षक रूप से वर्णन की गई हैं। जीवन-संग्राम की जटिल समस्याओं में मानवी उत्कण्ठाएं किस प्रकार विधि के कठोर विधान से एक अनन्त अन्धकार में अन्तर्हित हो जाती हैं एवं चित्त की सारी सञ्चित आशाएं किस प्रकार निराशा के भयानक गह्वर में पतित हो जाती हैं—इनका जो हृदय-विदारक वर्णन इस पुस्तक में किया गया है, वह सर्वथा मौलिक एवं नवीन है। आशा, निराशा, सुख-दुख, साधन, उत्सर्ग एवं उच्चतम आराधना का सात्विक चित्र पुस्तक पढ़ते ही कल्पना की सजीव प्रतिमा में चारों ओर दीख पड़ने लगता है। फिर भी यह पुस्तक मौलिक और हिन्दी-संसार के लिए नवीन उपहार है। यह एक अनन्त रोदन का अनन्त सङ्गीत है, जो प्रायः प्रत्येक भावुक हृदय में व्यक्त अथवा अव्यक्त रूप से एक बार उत्थित होकर या तो आजीवन बजता रहता है अथवा कुछ काल पर्यन्त बजकर पुनः विस्मृति के विशाल साम्राज्य में अन्तरिक्ष हो जाता है। इस पुस्तक में व्यक्त वाणी की अनुपम विलीनता एवं अव्यक्त स्वरों के उच्चतम सङ्गीत का एक हृदयग्राही मिश्रण है। पुस्तक हाथ में लेते ही आप इसे बिना पढ़े नहीं छोड़ सकते। हिन्दी-संसार में यह पुस्तक एक क्रान्ति उपस्थित कर देगी। पुस्तक छप रही है। मूल्य लगभग ३) होगा।